श्रीमतेरामानुजायनमः

श्रीमत्पराङ्कुशगुरवेनमः

श्रीशं श्रीसैन्यनाथं वकुलधरमुनिं नाथपङ्केरूहाक्षौ श्रीरामं यामुनेयं
वरमति च महापूर्णरामानुजार्यौ गोविन्दभट्टवेदान्त्यथ वरकलिजित
वंशदासांश्च कृष्णं लोकार्य शैलनाथं वरवरमुनिम् अत्यन्वहम् चिन्तयामि।

श्रीपराङ्कुशाचार्य स्वामी जी महाराज उपर्युक्त श्रृंखला की एक दिव्य कड़ी हैं। प्रस्तुत 'दिव्यचरितामृत' 'लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् । अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरूपरम्पराम' की उत्तरोत्तर श्रृंखला में विरचित है। श्रीवरवरमुनि के बाद गोवर्द्धनपीठ श्रीवृन्दावन श्रीगोदारङ्गमन्नार मन्दिर के प्रवलतम स्तंभ श्रीरंगदेशिक स्वामी अनन्तर उनके शिष्य श्रीराजेन्द्रसूरि परमहंस जी एवं तत्पश्चात् उनके शिष्य श्रीपराङ्कुशाचार्य के विशद दिव्यगाथा के अवगाहन से पाठक अवश्य आनन्दित होंगे।

संक्षेप में श्री पराङ्कुशाचार्य के शिष्य प्रशिष्य की झॉकी के साथ प्रस्तुत है श्रीस्वामीजी महाराज की सुन्दरतम कृति 'अर्चागुणगान' जो उनकी भगवदसंवाद की अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

आळवार एम्पेरुमानार जीयर तिरुवडिगळे चरणम्।

श्रीनम्माळवार श्रीरामानुज एवं श्रीवरवरमुनि के चरणारविन्द में कोटिशः साष्टांग प्रणाम।

ISBN 93-5174-131-2

9789351741312

दिव्यचरितामृत

श्रीमते रामानुजाय नमः

दिव्यचरितामृत

श्रीमते रामानुजाय नमः

दिव्यचरितामृत

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

Divya Charitamruta

First Edition : 2014

Author :
Srikrishna Prapnnachari , Ph. D.
SF-4 Muthusamy Avenue, Salai / Melur Road, Srirangam,
Trichy, Tmail Nadu, Pin 620006
www.myswamyjee.in prapnnachari@rediffmail.com

Available at :
1. 1-D Takshashila Apartment, Abhaya Khand 3
   Indirapuram, Pin 201010, www.myswamyjee.in
2. SF-4 Muthusamy Avenue, Salai / Melur Road,
   Srirangam, Trichy, Tmail Nadu, Pin 620006,
3. Sri Vaishnavasri, 214,East Uthara Street
   Srirangam, Trichy-620006.
   Ph:0431 2434398, 98842 89887, 9042453934,
   www.srivaishnavasri.com

Printed Copies : 500
Rs. 70/= Postage Extra

Printed at :
Sri Ranganachiyar Achagam, 214 East Uthara Street,
Srirangam, Trichy-620006. Ph: 0431 2434398

ISBN 978-93-5174-131-2

Author's other published Titles:
1. Nalaayir Divya Prabandham (Hindi), ISBN 978-93-5067-885 -5
2. The Crest Jewel : Srimadbhagwat Mahapuran with Mahabharat (English)
   ISBN 978 - 81 - 7525 - 855 - 6
3. Thiruppavai (Hindi)

श्रीमते रामानुजाय नमः

समर्पण

पिता श्रीराघवा चारी　　　　माता सकलमति देवी

श्रीमद्भगवतो पराङ्कुशगुरोः पदरजस्य अनुचरम्।
भजाम्यऽहम्मातुः पितुः उभयोः पादारविन्दम्।।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

विषय सूची

श्रीमतेरामानुजायनमः

त्रिदण्डहस्तं सितयज्ञसूत्रं काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
रथांगशंखांकित बाहुमूलं रामानुजार्यं शरणं प्रपद्ये।। **1**
तस्मै रामानुजार्याय नमः परमयोगिने।
यः श्रुतिस्मृतिसूत्राणाम् अन्तर्ज्वरमशीशमत्।।**2**
यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युग्म रुक्मव्यामोहतस्तदितराणि तृणायमेने।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैक सिन्धोंः रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये।।**3**

श्रीमद्भगवद् रामानुज स्वामी का स्वरूप, जनकल्याण से ओतप्रोत उनके कर्तृत्व एवं उनका त्याग सभी अलौकिक थे।

उपर्युक्त श्लोक **1** से श्रीरामानुज स्वामी के स्वरूप का ज्ञान होता है। गेरूआ कटिवस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, हाथ में संन्यासी का त्रिदंड, एवं ऊर्ध्वपुण्ड्र से सुशोभित ललाट, तथा चक एवं शंख से तप्तांकित बाहु ये है इनका स्वरूप।

श्लोक **2** से इनके जनकल्याण के लिये संपादित कार्य का विवरण मिलता है। जिनके जीव के कल्याण की अन्तःपीड़ा की शान्ति तब मिली जब उन्होंने श्रुति यानी वेद पर वेदार्थसंग्रह, स्मृति यानी गीता पर श्रीगीताभाष्य एवं सूत्र यानी ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य की रचना की और सनातन धर्म में प्रकृति एवं जीव का ईश्वर के साथ सही सम्बन्ध को उजागर किया। पूर्व के प्रकाशित श्रीशंकराचार्य की व्याख्या से प्रचलित मायावाद के मत को सम्यक तरीके से खंडन किया।

जिन्होंने भगवान के चरणाविन्द को प्राप्त करने हेतु सांसारिक सभी सुखों को घास के तिनके की तरह त्याग दिया। श्लोक **3** से अपरिमित त्याग का ज्ञान होता है।

इसी तरह से हमारे स्वामी जी महाराज श्री पराङ्कुशाचार्य जी के स्वरूप, जनकल्याण की उनकी भावना एवं त्यागमय जीवन साक्षात ईश्वरीय थे। श्वेत कटिवस्त्र एवं चादर, यज्ञोपवीत तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रचर्चित ललाट के साथ आपका स्वरूप अत्यंत प्रभावकारी था। आपने परमार्थ एवं कल्याण के

लिये भगवान की शरणागति को एकमात्र उपाय माना। इसी उद्देश्य का प्राकट्य आपके द्वारा रचित अर्चागुणगान में दिखता है। आपने जो भगवान अंतःसंवाद में नैसर्गिक अनुभव प्राप्त किया उसे परमार्थ हेतु सार्वजनिक कर दिया। भोजन एवं शयन की परवाह किये विना आप सर्वदा भक्तों के बीच रात एवं दिन के भेद को मिटाते हुए भ्रमण करते रहते थे तथा उनको उनकी सामाजिक या व्यक्तिगत परिस्थिति से निबटने का समाधान सुझाकर शांति प्रदान करते थे।

स्तोत्र रत्न का प्रारंभ **'नमोऽचिन्त्याद्भुताऽक्लिष्टवैराग्यराशये......'** एवं अंत **'पितामहं नाथमुनिं विलोक्य ....'** से श्री यामुनाचार्य ने नाथ मुनि स्वामी के आश्रय का सहारा लिया है। इसीतरह से श्रीकुरेश स्वामी ने 'वैकुण्ठस्तव' का प्रारम्भ **'यो नित्यमच्युत ...'** ' एवं वरदराजस्तव का अंत **'रामानुजाघ्रिंशरणोऽस्मि ... वरदाऽस्मि तवेक्षणीय'** से की है। श्रीस्वामी जी महाराज ने अर्चागुणगान के पद **21** **'अबहुँ हँसि हेरो रङ्गराया'** का अंत 'वरदराज स्तव' के अंतिम उपर्युक्त पद का उदाहरण देते हुए अपने आचार्य एवं परमाचार्य परमहंस स्वामी एवं रंगदेशिक स्वामी की शरणागति पर आधारित **'विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय' से की है।** यह है अनुपम प्रपत्ति एवं आचार्याभिमान।

श्रीस्वामी जी के दिव्यनाम के स्मरण मात्र से सात्विक कार्य करने के समस्त मार्ग प्रशस्त हो जाते हैं। **'श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद'** की स्थापना से हमलोगों के सभी प्रकाशन या यज्ञादि वगैरह 'संरक्षा परिषद' के प्रत्यक्ष संरक्षण में स्वयंमेव होते रहते हैं। दिव्यचरितामृत का अवलोकन सभी के लिए कल्याणप्रद होगा एवं इससे आप समस्त श्रीवैष्णव मंडली आचार्याभिमान की संपदा से विभूषित होंगे।

मई **2, 2014**

रङ्गरामानुजाचार्य
श्रीलक्ष्मी नारायण मंदिर
हुलासगंज

श्रीमतेरामानुजाय नमः

ज्ञानानंदमयं देवं निर्मल स्फटिका कृतिम्। आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे।।
उल्लास पल्लवित पालित सर्वलोकी निर्वाह कोर कितनेम कटाक्ष लीलाम् ।
श्रीरंगहर्म्य तल मंगल दीपरेखाम् श्रीरंगराज महिषीं श्रियमाश्रयामः।।

दिव्यचरितामृत श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ देखा। इसकी पूर्ति की आकांक्षा बहुत दिनों से थी। भगवान श्रीनारायण की अनुकम्पा से इसे पूर्णरूप में देख रहा हूँ। मणि को प्रकाशित करने के लिये किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है। भगवान को वेदों को प्रमाणित करने के लिये किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती है। इस ग्रन्थ को इसकी विशेषता लिखकर गुणवत्ता दिखलाने की आवश्यकाता नहीं है। यह दिव्यचरितामृत स्वयं दिव्य है। स्वयं ही अपने प्रभाव से पाठकों को प्रभावित कर लेगा।

भवतां आश्रवः
ह। माधव
पंडित माधव शर्मा
सरौती

श्रीमतेरामानुजाय नमः
अस्मदगुरूभ्यो नमः

अस्मद्देशिकमस्मदीय परमाचार्यान अशेषान गुरून्।
श्रीमल्लक्ष्मण योगिपुंगव महापूर्णौ मुनि यामुनम्।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणम्।
सेनेशं श्रियम्. इन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये।।
भगवद्वन्दनं स्वाद्यं गुरूवन्दनपूर्वकम्।
क्षीरं शर्करया युक्तं स्वदते हि विशेषतः।।

दिव्यचरितामृत का प्रारम्भिक प्रतिपाद्य विषय ः

1। नित्यसूरि ही जीवों के कल्याणार्थ **'संक्लपादेवतच्छुतेः'**। इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार इस पृथ्वी पर पधारे हैं। कई प्रमाणों से ब्रह्मलीन श्रीस्वामी जी महाराज को भगवत्पार्षद नित्यसूरि के रूप में स्वीकार करते हुए आळवार की परम्परा से सम्बन्धित बतायाा गया है। **12** आळवारों की संक्षिप्त गाथा इसमें वर्णित है।

2।पश्चात् श्रीनाथमुनि स्वामी, श्रीयामुनाचार्य स्वामी, श्रीरामानुजाचार्य जी महाराज आदि पूर्वाचार्यों की संक्षिप्त जीवनी पर प्रकाश डालते हुए श्रीगोविन्दाचार्य, श्रीकुरेशस्वामी, श्री पराशरभट्ट स्वामी, उनके शिष्य वेदांति स्वामी, नम्बिळळै श्रीकृष्णपाद स्वामी, उनके शिष्य श्रीलोकाचार्य स्वामी, श्रीशैलेश स्वामी, श्रीवरवरमुनि तक चर्चा की गयी है। पश्चात् श्रीरंगदेशिक स्वामी, परमहंस स्वामी अनन्तर श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य का जीवनवृत्त प्रारम्भ किया गया है।

3।श्रीस्वामी जी के जीवन से सम्बन्धित प्रेरणाप्रद कल्याणकारक संस्करण सुमन को स्थान दिया गया है। इसमें सर्वप्रथम पं श्रीमाधव शर्मा जी द्वारा संगृहीत प्रेरक प्रसंग का उल्लेख है। अनन्तर कई भक्तों के संस्मरण लिखित हैं।

4। अनन्तर पं श्री गदाधर शर्मा जी जो श्रीस्वामी जी के विद्वान प्रथम शिष्य उत्तराधिकारी के रूप में परिगणत थे उनकी चर्चा के साथ साथ अन्य शिष्य

जिसमें वर्तमान स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी भी हैं का उल्लेख किया गया है।

5।अंत में अर्चागुणगान के समस्त पद्यों का कमिक विश्लेषण किया गया है जो बड़ा ही उपादेय हो गया है।

जो लोग स्वामी जी के संपर्क में आये उनलोगों ने यही देखा कि इनके अन्दर सामाजिक कार्य के लिये उत्कंठा, अभिलाषा, तथा उत्सारह की भावना भरी है। परिणामतः आलस्य तो इन्हें छू नही पाता और निरन्तर ये कियाशील बने रहते हैं। **'स्वस्मै स्वल्पं समाजाय सर्वस्वम्'** इस आदर्श वाक्य के अनुसार पूज्यपाद श्रीस्वामी जी ने अपने लक्ष्य के प्रशस्तमार्ग का ज्ञान किया अनन्तर उसपर ध्यान दिया। तब अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सके।

श्रीस्वामी जी महाराज का भजन से सम्बन्ध सर्वविदित है। भजन सुनकर प्रफुल्लित होते, आह्लाादित होते, पूज्यपाद को भक्तों ने बहुत बार देखा है। भजन का सम्बन्ध भावना से है, भजन पुण्योदय व आत्मभावना से तथा मोक्ष की कामना से किया जाता है। भगवान के प्रति भक्ति के भाव जगाने हेतु भजन लिखने या पढ़ने की भावना जाग्रत होती है। गीता में भजन चार प्रकार के बताये गये हैं। भक्तगण चार प्रकार के भावों से भगवान की उपासना करते हैं। **1**।दुःख कष्ट रोग से पीड़ित होने पर। **2**।आत्मा परमात्मा को जानने की इच्छा से। **3**।धन पाने की इच्छा से। **4**।विवेकपूर्ण निःस्वार्थ आत्मकल्याण हेतु। अंतिम भाव से भजन करने को भगवान ने उत्तम माना है। श्रीस्वामी जी महाराज ने भगवदमुखोल्लासार्थ निःस्वार्थ भावना से आत्म कल्याण हेतु भजन करने का संकेत शिष्यों को दिया है। पूज्य श्रीस्वामी जी महाराज का कथन है कि भगवान की आराधना से दैन्य भाव से भजन करने से मन शुद्ध होता है। मन का मैल धुल जाता है। जो लोग वार्धक्य एवं मृत्यु से छूटने के लिये निःस्वार्थ भाव से भक्तियोग का साधन करते हैं, प्रभु श्रीनिवास का भजन करते हैं, वे परमात्मा के सगुन स्वरूप को जानकर आनन्द अनुभव करते हैं। प्रभु ने स्पष्ट संकेत किया है कि मुझमें मन लगाने वाले संसार से जाते समय मुझे जान लेते हैं। भजन करने से

उनका चित्त अन्त समय में स्वच्छ हो जाता है।

भगवान के प्रति आस्था प्रकट करने का सबसे उत्तम साधन कलिकाल में भजन करना, गाना, तथा लिखना है। इन सारी उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए श्रीस्वामी जी महाराज ने "अर्चागुणगान" जैसा भगवत् तत्व प्रकाशक लघु ग्रन्थ लिखा है। अर्चागुणगान के कमिक पद्यों का किताना सारगर्भित भाव है इसका पूर्णतया विश्लेषण इस दिव्यचरितामृत में नौवें अध्याय में श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी ने किया है। आरम्भ के प्रथम पद्य के साथ मध्यवर्ती पद्यों का तथा अन्तिम पद्य का जिस मनोहारी वृत्ति से अत्युत्तम भाव से समञ्जन किया गया है वह ध्येय है। अर्चागुणगान में श्रीस्वामी जी का भगवान से अंतःसंवाद का सजीव चित्रण है ऐसा भाव व्याख्या के साथ गुम्फित है। इस विषय पर प्रभूत प्रकाश डालने का प्रयास उन्होंने किया है। यह कार्य आचार्य एवं भगवदीय प्रेरणा से ही संभव हो पाया है।

ब्रह्मलीन परमाचार्य की जीवनी अर्थात् दिव्यचरितामृत का संयोजन लेखन भी साधारण कार्य नहीं था चूँकि आज से सत्ताइस वर्ष से पूर्व श्रीपरांकुश प्रेस की स्थापना काल में यह निर्णय लिया गया था परन्तु विभिन्न कारणों से अबतक वह पूर्ण न हो सका था। इस बीच छोटी पुस्तिका के रूप में कुछ भक्तों ने पूज्य श्रीस्वामी जी की जीवनी प्रकाशित करवायी। वैदिक वाणी पत्रिका में भी समय समय पर लघु जीवनी प्रकाशित होती रही। आवश्यकता के अनुरूप तथा श्रीस्वामी जी के उदात्त विराट व्यक्तित्व इनके कर्तृत्व के अनुकूल जिस जीवन गाथा की अनिवार्यता श्रीवैष्णवों को महसूस होती थी जिसमें सांगोपांग आद्योपान्त इनके समग्र कार्यकलापों का भगवत्परायणता का विश्लेषण हो वह अब तक न लिखी जा सकी थी। श्रीवैष्णवों की सहमति तथा भगवत्प्रेरणा से श्रीकृष्णप्रपन्नाचारी जी इंजनीयर बड़ी सावधानी तथा परम्परा की सविधि रक्षा करते हुए तल्लीनता के साथ श्रीरंगम जैसे दिव्यक्षेत्र में प्रवास कर इस कार्य को मूर्तरूप देने का जो श्लाघ्य प्रशंसनीय असाधारण कार्य किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। भगवान को अपनी कथा गाथा से ज्यादा भागवतों प्रपन्नों की गाथा प्रिय लगती है इस विषय को इन्होंने श्रीसम्प्रदाय के सिद्धान्तानुकूल पारदर्शिता के साथ सप्रमाण सहृदयता

के साथ प्रस्तुत करने का जो सफल प्रयास किया है इसके लिये ये सर्वविध सभी पक्षों से मंगलानुशासन के सत्पात्र हैं।

दिव्यचरितामृत में मुख्य रूप से श्रीस्वामी जी महाराज की अथ से इति तक प्रादुर्भाव से महाप्रयाण तक की चर्चा बखूबी सरल सुरस सुबोध शैली में उपस्थापित की गयी है। साथ ही शिष्यों प्रशिष्यैः उपगीयमानम के अनुसार पूज्यपाद श्रीस्वामी जी महाराज के 'आत्मा वै जायते शिष्यः' इस उक्ति के परिपालन में वर्तमान श्रीवैष्णव धर्म के सनातन धर्म के सच्चे प्रवल प्रखर उपासक संवाहक श्रीस्वामी रङ्गरामानुजाचार्य महाराज की अन्य संत महात्माओं की जीवनगाथा गुम्फित की गयी है वह इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है।

आळवारों के विलक्षण व्यक्तित्व भक्ति भावना से सम्बन्धित उनके कार्यवृत्त को क्रमिक वर्णन कर इस पुस्तक को सजीव बनाया गया है। आळवारों की भव्य परम्परा से सन्नद्ध पूर्वाचार्यों की चर्चा इस ग्रन्थ का प्राणस्वरूप है। श्रीनाथमुनि, श्रीयामुनाचर्य, श्री आदिशेष रामानुजाचार्य जी का विशद विश्लेषण के साथ उनके स्वरूपानुरूप जीवन का जिस ढंग से प्रकाशन इसमें किया गया है वह सदैव पठनीय संग्रहनीय है। उनकी आगे की परम्परा में श्रीगोविन्दाचार्य से प्रारम्भ कर श्रीकुरेश स्वामी, श्री पराशर भट्ट, श्रीवेदान्ति स्वामी, श्री नम्बिळ्ळै, श्री पिळ्ळैलोकाचार्य, श्रीशैलेश स्वामी, श्री वरवरमुनि स्वामी, श्रीरंगदेशिक स्वामी, श्री परमहंस राजेन्द्रसूरि पर्यन्त आचार्यो ं के वर्णन में जिस व्यास एवं समास शैली का अवलम्बन हुआ है वैसा अन्यत्र कम देखा जाता है।

इसी प्रसंग में श्रीपराशरभट्ट स्वामी के अपने लक्ष्य ध्येय के प्रति सतत सावधान रहने की घटना बहुत कुछ प्रेरित कर जाती है। श्रीरामानुजाचार्य के आदेश पर श्रीपराशर भट्ट उस समय के अजेय अद्वैत मतपोषक मध्वाचारी जिन्हें वेदांति कहा जाता था उनके पास एक गरीब ब्राह्मण के रूप में गये। मध्वाचारी ने उन्हें गरीब ब्राह्मण के वेष में द्वार पर खड़ा देखा तो ब्राह्मणों के साथ भोजन करने का संकेत किया। श्रीपराशर जी ने अपने लक्ष्य को ध्यान

में रखते हुए बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया 'हमें अन्न की भूख नहीं है शास्त्रार्थ की भूख से पीड़ित हूँ।' मध्वाचारी समझ गये ये पराशर भट्ट हैं। नौ दिनों तक शास्त्रार्थ चला। वेदांति पराजित होकर इनके शिष्य बन गये। मूलमंत्र, मंत्र रत्न एवं चरममंत्र की पहलीवार सार्वजनिक लिखित व्याख्या के रूप में 'अष्टश्लोकी' श्रीपराशर जी की देन है। श्रीविष्णुसहस्रनाम का भाष्य 'भगवदगुणदर्पण' के रूप में हमारे सामने उपस्थापित करने का श्रेय इन्हींको जाता है। इनके पूज्य पिता श्री कुरेश स्वामी सात दिनों तक विना भोजन किये रह गये थे। पश्चात् इनकी माँ की प्रेरणा से प्रभु श्रीरंगराज जी के दिव्यप्रसाद से इनकी उत्पत्ति हुई थी। पिता को भी अन्न की चिंता नहीं थी पुत्र ने भी अनुसरण कर दिव्य आदर्श स्थापित किया। 'श्री पराशरभट्टार्यः श्रीरंगेश पुरोहितः' कहकर हम उनका मान करते हैं। इसी परम्परा की कड़ी हैं हमारे परमाचार्य श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज।

स्वामी जी के आराध्य इष्टदेव भगवान वेङ्कटेश थे। भगवान वेङ्कटेश के गर्भगृह के ऊपर का विमान शिखर आनन्द निलय कहा जाता है। मानव जीवन की स्वाभाविक प्रकृति भी आनन्दमयी है। अतएव हमारे परामाचार्य ने प्रकृति प्रदत्त तथा प्रभु बालाजी से प्राप्त आनन्दगुण को अपने जीवन में प्रतिष्ठापित किया और शिष्यों को भी उस आनन्दसागर के तट पर आनन्द ग्रहणार्थ खड़ा कर दिया। आज उत्तरभारत में श्री बालाजी वेङ्कटेश भगवान को हमलोग इस रूप में जानकर अपने जीवन की झोली में आनन्द को भर रहे हैं। यह सब पूज्य श्रीस्वामी जी महाराज की देन है। अतएव यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यदि श्री नित्यसूरि श्रीस्वामी जी महाराज का उत्तर भारत में अवतरण नहीं होता तो कंकड़ कंटक चुनते रहते और जीवन की झोली में उसे ही भरते रहते।

धन्य थे ऐसे विभूति जिन्होंने लाखों लोगों को भगवान की ओर उन्मुख किया तथा शरणागत बनाकर सुपथ पर चलने के लिये प्रेरित किया। ऐसे दिव्यविभूतियों के चरितामृत के पान से निश्चित रूप से सबके लिये कल्याण का मार्ग सदा के लिये प्रसस्त बन जायेगा। अतः भक्तों को जिज्ञासुओं को दिव्यचरितामृत का स्वाध्याय तथा मनन करना चाहिए। इस चरितामृत

की आधारशिला सरौती के आचार्यजी पं श्रीमाधवशर्मा जी ने बहुत पूर्व ही रख दी थी। परन्तु पाण्डुलिपि अपना स्वरूप ग्रहण न कर सकी थी। भगवत्प्रेरणा से अब यह कार्य रघुनाथपुर निवासी श्रीराघव प्रपन्न जी के पुत्र श्रीकृष्णप्रपन्नाचारी के द्वारा संवर्द्धन संशोधन तथा संपादन के साथ मूर्त रूप ग्रहण कर रहा है।

श्रीस्वामी जी ने अपने दिव्यचरित के स्निग्ध प्रकाश से समग्रक्षेत्र विशेष कर मगध क्षेत्र को ऐसा प्रकाशित किया कि वर्षो बाद भी इस प्रकाश से पूरा श्रीवैष्णव समाज आलोकित है। उन्होंने जीवन में ध्येय दृढ़ लक्ष्य को सामने रखा ओर उसी के अनुसार कार्य किया। एक बुद्धिजीवी और कर्म योगी के जीवन लक्ष्य के अनुसार ही उनका रहन सहन हो गया था। भोजन शयन की चिन्ता न करते हुए भटके हुए समाज के लोगों को रास्ते पर लाना, तुम ब्रह्मर्षि कुल के हो इसका बोध कराना, संस्कृत भाषा के प्रति अभिरूचि पैदा करना, कर्मकाण्ड कराने से लोग नफरत करते थे उनलोगों व अपने शिष्यों को इस कार्य में लगाना, श्रीवैष्णव दीक्षा से दीक्षित कर सनातन धर्म की जड़ को मजबूती प्रदान करना, श्रीरामानुजाचार्य के विजयपताका को नीलगगन नें फहराते रहना ये सारे कार्य समवेत रूप से स्वामी जी महाराज ने किया। जीवन के दैनिक व्यवहार में आने वाले ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड में श्रीवैष्णवों को निष्णात बनाने का श्रेय श्रीस्वामी जी महाराज को ही है। ऐसे आचार्य महापुरूषों की जीवनी के स्वाध्याय से, मनन चिन्तन से मनुष्य के अन्दर भी उत्तम भाव का जागरण होता है। सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है।

इसका उपसंहार एक प्रेरक प्रसंग से करना समीचीन होगा। अपने आत्मीय शिष्यों को श्रीस्वामी जी महाराज शालिग्राम भगवान को रखने तथा पवित्रता से रहने का निदेश देते थे। कुऑं का जल व्यवहार में लाना तथा भोगलगाकर प्रसाद ग्रहण करना यह श्रीवैष्णवोचित कार्य है इसपर वे सदैव जोर देते थे। कुछ शिष्यों ने गुरू के इस आदेश को सपत्नीक आजीवन निभाया। उन्हीं भक्त शिष्य में अग्रणी थे रघुनाथपुर ग्रामवासी श्रीराघवजी। एक बार की घटना है कि सरौती पं श्रीमाधवशर्मा जी के साथ मैं वहॉ गया। आभ्यन्तरीय

कार्य भगवान का नैवेद्य बनाने का कार्य मुझे ही करना था। स्नानादि के बाद चौका गृह में गया तो गृहलक्ष्मी ने हमसे कहा 'यहॉ तोरा कुछ न करे ला हो। बैठकर पंडित जी के कथा सुन।' मैं सुनकर अवाक् रह गया चूॅकि अब तक साथ में बहुत से गॉव में गया था सब जगह स्वयं पाक बनाया गया था। यहॉ ये महिला बनायेंगी वही भगवान को भोग लगेगा तथा पंडित जी भी ग्रहण करेंगे। यह बात कुछ अटपटी लग रही थी। मैं तुरत चौका गृह से बाहर आ गया और श्री पंडित जी से पूछा 'क्या इस घर में आभ्यन्तरीय नियम से ही सबलोग रहते हैं ? मुझे भाोग राग नहीं तैयार करना है। श्रीआचार्य ने कहा 'हॉ, यहॉ सबलोग नियम से रहकर ही नैवेद्य बनाते हैं। बैठ जाओं, सब हो जायेगा।

सन्ध्या का समय था। अन्धेरा हो चला था। कुआँ पर स्नान कर श्रीराघव जी आ गये एवं सन्ध्याविधि पूर्ण कर तुरत श्री पंडित जी के पास बैठ गये और उन्होंने मूलमंत्रार्थ सुनने की जिज्ञासा की। साथ ही मंत्र रत्न पर भी प्रकाश डालने का आग्रह किया। श्रीपंडित जी ने मंत्रराज मूलमंत्र पर प्रकाश डालते हुए द्वयमंत्र मंत्ररत्न के रहस्यार्थ को प्रकट किया। मैं आश्‍चर्य चकित था चूॅकि मेरे लिये यह नई बात थी। अबतक किसी भी गॉव में ऐसी जिज्ञासा करते किसी श्रीवैष्णव को न देखा था। मैं भी वहीं बैठकर मंत्रद्वय का भाव सुना और आह्लादित हुआ। इतने समय में भोग राग तैयार हो गया। गृहलक्ष्मी जो अपनी पुत्रवधू के साथ नैवेद्य कार्य में लगीं थीं भगवान को नैवेद्य अर्पित करने का संकेत दे गयीं। भगवान को भोग लगा सबों ने प्रसाद ग्रहण किया। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार इन्हीं श्रीराघव जी के आत्मज श्रीकृष्णप्रपन्नाचारी हैं। 'प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्र' जो अपने सुचरित से पितर को अर्थात् पिता को प्रसन्न करते रहे वही वस्तुतः पुत्र है। यह नीति शतक का कथन आज सर्वथा सत्य प्रतीत हो रहा है। यह है श्रीस्वामी जी महाराज के दीर्घबन्धुत्व का उज्वल आदर्श। आशीर्वाद का सुफल।

परमगुरोः चरणौ शरणं प्रपद्ये।

हरेरामाचार्य
श्रीलक्ष्मी नारायण मंदिर
हुलासगंज

श्रीपराङ्कुशाष्टकम्

श्रीहरेरामाचार्य छोटे स्वामी जी द्वारा विरचित एवं श्रीमनसिज शास्त्री द्वारा परिष्कृत।

उपेन्द्रसेवारत मानसाय जनोपकारेण सदार्चिताय।
विशुद्धविज्ञान सुशोभिताय नमो नमस्तेऽस्तु पराङ्कुशाय।।**1**
विद्याप्रचारे सततंरताय महात्मने ख्यातयशः सिताय।
शिष्योपशिष्यैः परिवेष्टिताय नमः प्रसन्नाय गुणेश्वराय।।**2**
समस्तशास्त्रार्थविचारदक्षा सदेश्वरांशेन विराजमानम्।
महान्तमाचारनिविष्टचित्तं पराङ्कुशाचार्यगुरूं नमामः।।**3**
वेदान्तविद्यानिपुणं महान्तं छात्रोपकृत्यं परित्यक्तवित्तम्।
धर्मप्रचारेण जनेनपूज्यं पराङ्कुशं नौमि जगत्प्रसिद्धम्।।**4**
श्रीवेङ्कटेशस्तुतिलब्धकीर्ति राजेन्द्रपादाश्रितप्राप्तबोधम्।
लोकेश देवेश समानमूर्ति तं देवतुल्यं प्रणतोस्मिनित्यम्।।**5**
शक्तं सदा वैष्णवधर्म सिद्धौ तत्रैव शिष्यानपि योजयन्तम्।
एवं हि रात्रिन्दिवमाश्रमेण कियायुतं नौमि पराङ्कुशाख्यम्।।**6**
अनेकविद्यानिपुणान्स्वशिष्यान् प्रचारकार्ये विनिवेशयन्तम्।
श्रीश्यामप्राज्ञार्चितपादयुगमं नमामि कौन्डिन्य कुलप्रशस्तम्।।**7**
श्रीरङ्गरामानुजसेव्यमानं श्रीमाधवादेरपि पूज्यमानम्।
जगतगुरूं भूतलोकदेवं पराङ्कुशार्य शरणं व्रजामि।।**8**

श्रीपराङ्कुश पञ्चकम्

श्रीमनसिज शास्त्री द्वारा विरचित। श्रीविष्वकसेनाचाये के शिष्य एवं रहीमपुर में प्राध्यापक एवं साहित्य विभागाध्यक्ष।

कौण्डिन्यवंश तिलकं तिलकं वहन्तम् राजेन्द्रसूरि चरणाश्रयलब्धबोधम्।
वेदान्तशास्त्रविमुखं परिबोधयन्तं श्रीमत् पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।**1**
लोकेषु शिक्षण कलाभवने वसन्तं स्थानं विहाय भगवन्तमभिष्टदोहम्।
संस्थाप्यतत्र पठनव्रतमाचरन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।**2**
जीवेश्वरस्य चरितञ्च सदा स्मरन्तं श्रुत्यादिशास्त्र कथितं वचनं वदन्तम्।
शास्त्रार्थवादविषये परितोषयन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।**3**
श्रीकृष्णरामनरसिंह वचो लसन्तं संगीतवादनविधौ च विशेषविज्ञम्।
रामानुजीयचरितं परिकीर्तयन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।**4**
लक्ष्मीनिवास सदनेषु महोत्सवानां काले शुभे तुरगयान मनोहरन्तम्।
प्रस्थातुकाम मनसा मुदमानयन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।**5**
आचार्यवन्दनं नित्यं यः करोति नरोवरः।
जीवनं सफलं तस्य लौकिकं पारलौकिकम्।।

श्रीपराङ्कुश षट्कम् (त्रोटक छंद)

जगदीनाकिंचन तारण वै प्रभुरंशहि रूप स्वरूप धरम्।
शशिसूर्यप्रभासम तेजवरं प्रणमामि निरन्तर गुरू शरणम्।।**1**
दिव्यरूपमनुच सुहर्षयुतं हरिचिन्तनतत्पर सर्वदिनम्।
पूण्ड्रभाल सुमाल करे भूषितं प्रणमामि निरन्तर गुरूशरणम्।।**2**
हरिनाम सदा गुण ध्यान धरं जनमोहकज्ञान सदा सुखदम्।
जनकल्याण भावसदाधरितं प्रणमामि निरन्तर गुरू शरणम्।।**3**
श्रीवैष्णवधर्म प्रचाररतं यतिराज पदांबुज भक्तिरतम्।
शरणागतमन्त जनेपूरितं प्रणमामि निरन्तर गुरूशरणम्।।**4**
सन्मार्ग प्रदर्शक वेदपथं समुद्धारकधर्मच्युतं मनुजम्।
शिक्षणे दीक्षणे शिष्यकल्पतरूं प्रणमामि निरन्तर गुरूशरणम्।।**5**
तपत्याग विराग प्रभावकरं मखदान निरन्तर क्षम्यगुणम्।
मुनिकौन्डिन्य वंशशुभम् जनितं प्रणमामि निरन्तर गुरूशरणम्।।**6**
पराङ्कुश षटकं दिव्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
गुरूकृपामवाप्नोति भगवद्भक्ति समन्वितः।।

अथ पराङ्कुश दशकम् (अनुष्टुप छंद)

फाल्गुनस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां शुभे दिने। भगवदंशरूपेण स्वयं जातो हि भूतले।**1**
कौण्डिन्यगोत्र सञ्जातं तेजस्विनं दिवाकरम्। जनोपकारकं निंत्यं वन्दे मुनिपराङ्कुशम्।**2**
रङ्गदेशिकपादाब्जे नित्यं तत्र समाश्रितम्।परमहंसमुनेः शिष्यं वन्दे मुनिपराङ्कुशम्।**3**
दयादान तपोमूर्ति जनकल्याण तत्परम्।वात्सल्यादिगुणोपेतं वन्दे मुनिपराङ्कुशम्।**4**
गीताशास्त्र मुखे यस्य सर्वशास्त्र विचक्षणम्। वेङ्कटरूपधरंनित्यं वन्दे मुनिपराङ्कुशम्।**5**
स्वधर्मरहितं लोकं वैष्णवधर्मदर्शकम्।भागवद्धर्मवक्तारं वन्दे मुनिपराङ्कुशम्।**6**
संस्कृतशिक्षारक्षार्थं विद्यालयानां स्थापकम्।वस्त्रान्नंच प्रदातारं वन्दे मुनि पराङ्कुशम्।**7**
दीर्घवन्धुर्दयालुत्वं मोक्षमार्ग प्रदर्शकम्। शिष्यकल्प तरोर्मूलं वन्दे मुनि पराङ्कुशम्।**8**
निखिलंजीवनंयस्य जनहित समर्पितम्। सनातन धर्माधारं वन्देमुनि पराङ्कुशम्।**9**
श्रीवेङ्कटाद्रि रङ्गाख्यं काञ्च्यादि दिव्यदेशकम्।सर्वदा प्रेषकं भक्तान वन्देमुनिपराङ्कुशम्।**10**
यः पराङ्कुशदशकं नित्यं पठति भक्तितः। सर्व फलमवाप्नोति परलोके च मोदते।

(उपर्युक्त दोनों स्तुति सेरथुआ निवासी श्रीस्वामीजी के अनन्य शिष्य श्रीरामानन्द शर्मा द्वारा विरचित है। इनका जन्म ई 1960 है।इन्होंने 1969 ई में सरौती से मध्यमा एवं तत्पश्चात् हुलासगंज में रहकर व्याकरणाचार्य किया। ये 1989 ई में ज्योतिषाचार्य हुए तथा 1991 में साहित्याचार्य हुए।)

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

पहला अध्याय ः गुरू परम्परा

श्रीवैष्णव आचार्य परम्परा का शुभारम्भ स्वयं श्रीमन्नारायण से हुआ है। श्रीमन्नारायण के संकेत पर नित्यमुक्त सूरीगण अपने संकल्प मात्र से ही वैकुण्ठ छोड़कर चेतन प्राणियों के कल्याणार्थ इस धराधाम पर आते हैं। '**संकल्पादेव तच्छ्रुते ः ब्र।सू। 4।4।8**। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी के आचार्य स्वरूप में अवतार से '**संकल्पादेव तच्छ्रुतें**' स्वतः सिद्ध होता है। श्रीस्वामी जी के दिव्यजीवन की गाथा आचार्य निष्ठा एवं नित्य वंद्य श्रीवैष्णव आचार्य परम्परा के सम्वर्द्धन से पूर्णतया सम्बद्ध है। अपने **115** वर्ष के इहलोक संकल्प यात्रा के अन्तराल श्रीस्वामी जी श्रीवैष्णव परम्परा के प्रचार प्रसार हेतु पूर्णतया समर्पित रहे। इस पावन कल्याणकारी आचार्य परम्परा के सम्यक स्वरूप का ज्ञान नित्यानुसंधान के तनियन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है। माता लक्ष्मी जी के नाम से ही तनियन का शुभारंभ इस परम्परा के 'श्री संप्रदाय' कहे जाने की पुष्टि करता है। 'श्री संप्रदाय' की परम्परागत श्रृंखला लक्ष्मीनाथ - आळवार - आचार्य से निर्मित है। इसी कम में तनियन श्लोक के माध्यम से आचार्य वंदन करते हुए श्रीस्वामी जी की दिव्यगाथा का शुभारम्भ प्रस्तुत है।

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरूपरम्पराम् ।।1।।

लक्ष्मीनाथ यानी श्रीमन्नारायण जैसे सृष्टि के आदिकारण हैं **'जन्माद्यस्य यतः' ब्र।सू। 1।1।2 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' ब्र।सू। 2।1।33** उसीतरह से धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन के मार्ग के भी वही उद्गम स्थल हैं। **'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवाामि युगे युगे' भ।गी। 4ः8। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यग्हम् । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः' भ।गी। 4ः11**। हे अर्जुन ! सभी मनुष्य मेरे ही दिखाये पथ पर चलते हैं। '**अध्यात्मविद्या विद्यानां' भ।गी। 10ः32। 'वेदान्तकृत वेदविदेव चाहम्' भ।गी। 15ः15। 'पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यस्यश्च गुरूर्गरीयान' भ।गी। 11ः43।**

'नान्य ः पन्था विद्यतेऽयनााय' पु सू। 'त्वमेवमाता च पिता त्वमेव त्वमेवबन्धुश्च गुरूस्त्वमेव।त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्व मम देवदेव' श।ग। 17। 'तमेकमद्भुतं प्रभुं।निरीहमीश्वरं विभुं।जगद्गुरूं च शाश्वतं।तुरीयमेव केवलं' मानस 'अरण्य' छंद दोहा 3।4। 'श्रुतिशिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे...' श्रीभाष्य।

श्रीवैष्णव परम्परा श्रीमन्नारायण से आरंभ होकर महिमामंडित आळवार संतों से होते हुए मध्य के आचार्य श्रीनाथमुनि तथा श्रीयामुनाचार्य तक पहुँची। यही परम्परा अनवरत चलती हुई वर्तमान के आचार्य द्वारा चल रही है। उपयुर्क्त तनियन श्रीकुरेश स्वामी द्वारा रचित है तथा यहाँ 'अस्मद गुरू' का यद्यपि तात्पर्य श्रीरामानुज स्वामी से है तथापि वर्तमान में तनियन का स्मरण करने वाले श्रीवैष्णव प्रारम्भ से लेकर अपने आचार्य तक का भाव करते हैं।

भूतं सरश्च महदास्यभट्टनाथ
श्री भक्तिसार कुलशेखर योगिवाहान।
भक्ताङ्घ्रिरेणु परकाल यतीन्द्र मिश्रान्
श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।2।।

तनियन श्लोक **2** में आरंभ से मध्य तक के अन्तराल में श्रीवैष्णव परम्परा के निर्वाहक सभी आळवार संतों के अतिरिक्त मध्यकालीन नाथमुनि तथा बाद के आचार्य श्रीरामानुज तथा उनके शिष्य श्री कुरेश स्वामी की भी वंदना की गयी है। आळवार संत हैं ः भूतयोगी यानी भूतद आळवार, सरोयोगी यानी पोयगै आळवार, महद योगी यानी पेय आळवार, भट्टनाथ यानी पेरिया आळवार या विष्णुचित्त स्वामी, 'श्री' यानी गोदा जी या आंडाल, भक्तिसार यानी तिरूमळिशै आळवार, कुलशेखर आळवार, योगीवाहन यानी मुनिवाहन या तिरूप्पान आळवार, भक्ताङ्घ्रिरेणु स्वामी यानी तोंडराप्पोडि आळवार, परकाल स्वामी यानी तिरूमंगै आळवार, 'यतीन्द्र' यानी श्रीरामानुज स्वामी, 'मिश्रान' यानी 'श्रीवत्सचिह्न मिश्र' जो कुरेश स्वामी का नाम है, 'श्रीमत्' यानी मधुरकवि आळवार, 'पराङ्कुश' यानी नम्माळवार या शठकोप स्वामी, 'मुनिं' यानी नाथमुनि। सभी आळवार संत तथा आचार्यो की पृथक पृथक भी तनियन है परंतु उपर्युक्त तनियन समेकित रूप से सवकी साथ में वंदना करने

के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय है और इसका निर्माण श्रीकुरेश स्वामी के वरदपुत्र श्री पराशर भट्ट ने किया है।

माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदंघ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।3।।

श्री यामुनाचार्य कृत 'स्तोत्र रत्न' से उद्धृत तनियन श्लोक **3** नम्माळवार यानी शठकोप स्वामी की बंदना है। नम्माळवार हमारे कुलाधिनाथ होने के साथ साथ माता पिता पत्नी सम्बन्धी विभूति ऐश्वर्य आदि सबकुछ हैं। वकुला यानी मौलसिरि के सुन्दर पुष्प से अलंकृत इनके चरणारविंद में हम अपना शिर रखते हैं। नम्माळवार आळवार संत थे परंतु इनके द्वारा तमिल में गाये हुए 'तिरूवायमोळी' के नाम से प्रसिद्ध भगवद्विषय सहस्त्रगीति की अतिशय महत्ता है और ये आळवार संतों की श्रृंखला से श्रीवैष्णव आचार्य परम्परा में प्रथम आचार्य के रूप में पूजे जाते हैं। नम्माळवार को अवयवी तथा अन्य आळवार एवं आचार्य इनके अवयव बताये जाते हैं। इस संदर्भ में श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य कृत श्रीपरमहंस स्वामी जी की जीवनी के चतुर्थ खण्ड ''महाप्रयाण'' का यह उद्धरण ध्यातव्य है ः ''इस सम्प्रदाय का यही नियम है कि भगवान की सन्निधि में जाकर कहा जाता है कि **'श्रीमन्नारायण स्वामिन् शठकोपं प्रदेहि मे'**। भगवान का चरणकमल श्रीशठकोप स्वामी हैं। भगवान से प्रार्थना में उनका चरणकमल माँगा जाता है जो भक्तों का उपजीव्य है। श्रीशठकोप स्वामी की सन्निधि में जानेपर **'रामानुजं प्रदेहि त्वं शठकोप मुनीश्वर'** ऐसा कहा जाता है। अर्थात् हे शठकोप स्वामी आप मुझे श्रीरामानुज स्वामी को दीजिये। श्रीशठकोप स्वामी का चरणकमल श्रीरामानुज स्वामी हैं। जब श्रीरामानुज स्वामी की सन्निधि में जाते हैं तो कहते हैं कि **'हे रामानुज सौम्यजामातृ वरवर मुनिं देहि'** अर्थात हे रामानुज स्वामी मुझे सौम्यजामातृ वरवर मुनि दीजिये जो श्रीस्वामी रामानुज स्वामी के चरण कमल हैं। श्रीवरवर मुनि स्वामी का चरणकमल **'मामका देशिका स्युः'** यानी श्रीवरवरमुनि के चरणकमल अपने आचार्य माने जाते हैं। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के रक्षण

हेतु भगवान से लेकर अपने आचार्य तक की रक्षकों की परम्परा श्रृंखला के ऐसा सम्बद्ध है।''

नमोऽचिंत्याद्भुताऽक्लिष्टज्ञान वैराग्य राशये।
नाथाय मुनयेऽगाध भगवद्भक्तिसिंधवे।।4।।

स्तोत्र रत्न के रचियता यामुनाचार्य नाथमुनि के गौरवशाली प्रपौत्र हैं। श्री यामुनाचार्य कृत 'स्तोत्र रत्न' से उद्धृत तनियन श्लोक **4** श्रीनाथ मुनि की बंदना है। श्रीनाथ मुनि आळवार पीढ़ी के बाद के आचार्य श्रेणी में प्रथम हैं। आळवार संतों द्वारा गाये हुए तमिल दिव्यप्रबंधम कालक्रम में लुप्त हो गये थे। नाथमुनि ने नम्माळवार की उपासना की और आज जो संपूर्ण दिव्यप्रबंधम उपलव्ध है वह नाथ मुनि की ही देन है।

नमः पंकजनेत्राय नाथ श्रीपादपंकजे ।
न्यस्त सर्वभरायास्मत् कुलनाथाय धीमते।।5।।
अयत्नतो यामुनमात्मदासं मलर्क पत्रार्पणनिष्क्रयेण।
यःक्रीतवानास्थितयौवराज्यं नमामि तं राममेयसत्त्वम् ।।6।।

श्री नाथमुनि के अग्रगण्य शिष्य में एक श्रीपुंडरीकाक्ष 'तमिल नाम उय्यक्काडार' हैं एवं इनके शिष्यि हैं श्रीराममिश्र 'तमिल नाम मणक्कालनंबी' हैं। तनियन **5** श्रीपुंडरीकाक्ष स्वामी की बंदना है। इन्होंने तमिल दिव्यप्रबंध को गाकर नृत्य के साथ प्रस्तुत करके इसे जनमानस के बीच लोकप्रिय बनाने में श्रीनाथमुनि की बहुत बड़ी सहायता की थी। तनियन **6** श्रीराममिश्र की बंदना है जिनका सबसे बड़ा श्रेय राजा के रूप में सांसारिक कार्यो में निमग्न श्री यामुनाचार्य को पुनः श्रीवैष्णव समाज के कल्याण के लिये उन्मुख करने का है।

यत्पदांभोरूह ध्यान विध्वस्ताशेषकल्मषः ।
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम्।।7।।

श्रीरामानुज स्वामी ने अपने 'श्रीगीता भाष्य' के शुभारंभ में तनियन **7** की रचना कर श्री यामुनाचार्य की बंदना की है। श्री यामुनाचार्य एवं इनकी रचना 'स्तोत्र रत्न' दोनों के लिये 'आलवंदार' पर्यायवाची की तरह स्मरण किया जाता है। यामुनाचार्य जी ने बालावस्था में ही जब एक राजपंडित को सार्वजनिक शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था तो रानी प्रसन्न होकर बालक

यामुनाचार्य को 'आलवन्दार' कह कर पुकारी थीं। आलवन्दार का शाब्दिक अर्थ है 'अतिप्रशंसनीय या अतिसुन्दर'।

कमलापति कल्याण गुणामृतनिषेवया ।
पूर्णकामाय सततं पूर्णाय महते नमः ।। 8 ।।

तनियन 8 श्री महापूर्ण स्वामी या पेरिय नंबी की बंदना है जो श्री यामुनाचार्य के शिष्य थे तथा इन्होंने श्री रामानुज स्वामी को कांचीपुरम के समीपस्थ चेंगलपत्तु रेलवे स्टेशन से 20 कि मी पर अवस्थित 'मदुरांतक' नामक स्थान में पंचसंस्कार से श्रीवैष्णव मंत्र की विधिवत दीक्षा दी थी।

योनित्यमच्युत पदाम्बुजयुग्मरूक्म
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने ।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये।।9।।

भगवान के युगलचरण के लिये संसार के सभी वस्तुओं को घास के तिनके की तरह परित्याग करने वाले दया के सागर श्री रामानुज स्वामी के दोनों चरणकमल की शरण लेते हैं। तनियन 9 से श्रीरामानुज स्वामी की बंदना करते हुए श्रीकुरेश स्वामी ने 'वैकुण्ठ स्तव' का शुभारम्भ किया है।

रामानुज पदच्छाया गोविंदाह्वान पायिनी ।
तदायत्त स्वरूपा सा जीयान्मद्विश्रमस्थली।।10।।

तनियन 10 श्री गोविंद भट्टर यानी एम्बार की बंदना है। इन्ही के नाम पर श्रीरामानुज स्वामी ने जगन्नाथपुरी में एम्बार मठ की स्थापना की थी। श्रीगोविंद भट्टर श्रीरामानुज स्वामी के मौसेरा भाई थे और श्रीरामानुज स्वामी के परमपद होने पर श्रीरंगम के स्थानाधीश बने।। जब श्रीयादव प्रकाश ने काशी यात्रा में विद्यार्थी के रूप में बालक श्री रामानुज की इहलीला समाप्त करने का षड़यंत्र रचा था तब गोविंद ने ही श्रीरामानुज को यात्रामंडली छोड़कर भागजाने को उत्प्रेरित किया था।

श्री पराशर भट्टार्यः श्रीरंगेश पुरोहितः ।
श्रीवत्सांकसुतः श्रीमान् श्रेयसे मेऽस्तु भूयसे।।11।।

श्रीरामानुज स्वामी ने श्रीयामुनाचार्य की अन्तयेष्टि के पूर्व तीन प्रतिज्ञाएं ली

थीं जिसके फलस्वरूप उनके मृत शरीर की तीन मुड़ी हुई अंगुलियां सीधी हो गयी थीं। उन्हीं तीन प्रतिज्ञाओं में से एक प्रतिज्ञा थी कि पुराणरत्न श्रीविष्णु पुराण के रचयिता श्री पराशर मुनि के समान एक विद्वान को खड़ा करना। श्री रामानुज स्वामी के अन्यतम शिष्य श्रीकुरेश स्वामी के बड़े पुत्र श्रीपराशर भट्ट हैं और 'यथा नाम तथा गुण' से सम्पन्न पराशर मुनि के समान श्रीमन्नारायण की यश एवं कीर्ति के आप सबल निर्वाहक सिद्ध हुए। श्री एम्बार स्वामी के परमपद के बाद आप ही श्रीरंगम के स्थानाधीश बने थे। तनियन 11 श्रीपराशर भट्ट की बंदना है।

नमो वेदान्तवेद्याय जगन्मंगल हेतवे।
यस्य वागामृतासार पूरितं भुवनत्रयम्।।12।।

तनियन 12 श्रीवेदान्ती स्वामी की बंदना है जो श्रीपराशर भट्ट से शास्त्रार्थ में पराजित होकर उनके शिष्य हो गये थे। तमिल क्षेत्र मे आप नानजीयर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वेदांत वेद्याऽमृतवारि राशेः वेदार्थसारामृतपूरमग्रयम।
आदाय वर्ष तमहं प्रपद्ये कारूण्यपूर्णं कलिवैरिदासम्।।13।।

श्री नम्बिल्लै स्वामी या श्रीकलिवैरी दास की बंदना तनियन 13 से की गयी है। आप नानजीयर के अन्यतम शिष्य थे एवं आपके द्वारा 'तिरूवायमोळी' पर दिये गये मौखिक व्याख्यान को आपके शिष्य श्रीवडक्कु तिरूवीथिपिळळै ने लिपिबद्ध किया जो 'इडु' के नाम से प्रसिद्ध है। आपके दूसरे शिष्य श्रीपेरियावचन पिळळै अति कुशाग्र मेधा से संपन्न थे तथा आपकी आज्ञा से उन्होंने संपूर्ण दिव्यप्रबंधम पर तमिल में व्याख्यान लिखी। श्रीपेरियावचन पिळळै की श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के एक सौ श्लोकों पर लिखी गयी टीका 'तन्नि श्लोकम्' एक विशिष्ट कोटि की रचना है।

श्रीकृष्णपाद पादाब्जे नमामि शिरसा सदा।
यत्प्रसादप्रभावेण सर्वसिद्धिरभून्मम।। 14।।

श्रीवडक्कु तिरूवीथिपिळळै की बंदना तनियन 14 से की गयी है एवं आप श्रीकृष्णपाद स्वामी के नाम से भी जाने जाते हैं। आपके दो दिग्गज पुत्र हुए जिसमें से बड़े का नाम जगप्रसिद्ध श्री पिळळै लोकाचार्य है एवं छोटे पुत्र का

नाम 'श्रीरम्यजामातृ नमपेरूमाल नयनार' या 'अळगिया मनवाल नयनार' है। श्री नयनार की प्रसिद्ध रचना 'श्रीआचार्य हृदयम्' श्रीनम्माळवार पर एक विलक्षण एवं अमर कृति है।

लोकाचार्याय गुरवे कृष्णपादाय सूनवे।
संसार भोगि संदष्टजीवाजीवतवे नमः ।।15।।

तनियन 15 श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामी की वंदना है। आपने अठारह रहस्य ग्रंथों की मणिप्रवाल एवं तमिल मे रचना की है। 'श्रीवचन भूषण' एवं 'मुमुक्षुपडि' श्रीवैष्णवों के वीच बहुत ही लोकप्रिय है। आप श्रीवेदान्त देशिक स्वामी के समकालीन थे। अपने पिता के जीवन काल के वाद श्रीरंगम मंदिर की व्यवस्था आपके ही जिम्मे थी। मुगल आततायियों से 'नमपेरूमाल' यानी श्रीरंगनाथ भगवान के उत्सव विग्रह को सुरक्षित रखने हेतु आपके जीवन का अंतिम भाग जंगलों में ही वीता।

नमः श्रीशैल नाथाय कुंती नगर जन्मने।
प्रसाद लब्ध परमप्राप्य कैंकर्य शालिने।।16।।

श्री पिळ्ळै लोकाचार्य के शिष्य प्रवर श्री शैलनाथ स्वामी की वंदना तनियन 16 से की गयी है। श्रीवरवरमुनि स्वामी आपके शिष्य हुए जो वर्तमान परम्परा में अंतिम आचार्य माने जाते हैं। श्रीशैलपूर्ण स्वामी को ही तिरूमलै आळवार भी कहते हैं। तिरूवायमोळी के साथ आपके घनिष्ठ लगाव के कारण आपको 'तिरूवायमोळी पिळ्ळै' कहा जाने लगा। श्रीशैलपूर्ण स्वामी के ही आदेश पर श्रीवरवरमुनि स्वामी ने 'अरूलिशेयल' यानी 'दिव्यप्रवंधम' के प्रचार प्रसार में अपना सर्वस्व जीवन समर्पित कर दिया था।

श्रीशैलेश दयापात्रं धी भक्त्यादि गुणार्णवम्।
यतींद्र प्रवणं वंदे रम्यजामातरं मुनिम्।।17।।

तनियन 17 स्वयं भगवान रंगनाथ ने बालक रूप में प्रकट होकर वरवरमुनि की प्रशंसा में सुनाया था। श्रीरंगम मंदिर में आयोजित तिरूवायमोळी पर श्रीवरवरमुनि के वर्ष पर्यन्त व्याख्यान के समापन के दिन की घटना है जिसमें उक्त पद को एक बालक वटुक का रूप धारण कर स्वयं भगवान ने उपस्थित

श्रीवैष्णव मंडली को सुनाया। श्री वरवर मुनि को श्रीरामानुज स्वामी का ही दूसरा अवतार माना जाता है। आपको 'अळगिया मनवालन' या 'मनवाल मामुनि' या 'रम्यजामातृ मुनि' भी कहा जाता है। श्रीवैष्णव परम्परा के श्रीवरवरमुनि अंतिम आचार्य हैं। आपने अपने जीवन काल में अष्टगद्दी की स्थापना कर आचार्य परम्परा को एक वृहत्तर रूप प्रदान किया।

वाधूलवंश कलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रं श्री श्रीनिवासगुरूवर्यपदाव्ज भृङ्गम्।
श्रीवाससूरी तनयं विनयोज्जवलन्तं श्रीरंगदेशिकमहं शरणं प्रपद्ये।।18।।

गोवर्द्धन गद्दी वृन्दावन श्रीवरवर मुनि के आठ गद्दियों में से एक अण्णन गद्दी से सम्वद्ध है। श्री श्रीनिवासाचार्य के शिष्य श्रीरंगदेशिक स्वामी ने वृन्दावन में श्रीगोदारङ्गमन्नार मंदिर की स्थापना से वृन्दावन में श्रीसम्प्रदाय के आचार्य परम्परा को सम्वर्द्धित कर एक पावन कीर्तिमान स्थापित किया। दक्षिण भारत की शैली पर एकमात्र निर्मित मंदिर जिसे श्रीरंङ्ग जी मंदिर कहा जाता है संपूर्ण उत्तर भारत के श्रीवैष्णवों के लिये एक दर्शनीय तीर्थस्थल है। दक्षिणभारत के श्रीवैष्णवों के लिये भी उत्तरभारत के दर्शनीय दिव्यदेश में से एक दिव्यदेश श्रीरङ्गजी मंदिर वृन्दावन है। तनियन 18 श्रीरंगदेशिक स्वामी की वंदना है।

भारद्वाजान्वावय धृततनुममलम् वैष्णवेषु अग्रगण्यम् ।
श्रीमत्रंगार्यवर्यामलपदकमले न्यस्तविश्वात्मभारम् ।।
तद्पादाम्भोज भृङ्गम् तद्मृत कृपया प्राप्त संमंत्र राजम्।
श्रीमत् राजेन्द्रसूरि वरगुणनिलयं धामराशिमश्रयेऽहम्।।19।।

श्रीरंगदेशिक स्वामी के शिष्य परमहंस श्रीराजेन्द्र सूरि जी ने पाटलीपुत्र के समीपस्थ तरेत स्थान में श्रीराघवेन्द्र भगवान के मंदिर की स्थापना कर मध्य विहार में श्रीवैष्णव आचार्य परम्परा का एक सुदृढ़ शुभारम्भ किया। आपकी वंदना तनियन 19 से की गयी है।

कौडिण्यगोत्र सरसीरूह बालभानुम्। श्रीरंगदेशिक पदाब्जरसैक भृङ्गम्।।
श्रीराजेन्द्रसूरि चरणाश्रितमप्रमेयम् । श्रीमत्पराङ्कुशगुरूं शरणं प्रपद्ये ।20

श्री परमहंस स्वामी जी के वरदशिष्य स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी की वंदना तनियन 20 है तथा आपने अरवल बदरावाद के समीपस्थ सरौती

स्थान को श्रीवैष्णव परम्परा के प्रचार प्रसार के लिये एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में विकसित किया। वर्तमान पुस्तक में आपके ही दिव्यचरित की झांकी प्रस्तुत की गयी है। वर्तमान में सरौती स्थान की शाखाएँ स्वामी जी के वरदशिष्यों प्रशिष्यों के कीर्तिमान के रूप में हुलासगंज़ कतरासिऩ तथा मेहन्दिया़ आदि स्थलों पर श्रीवैष्णवों के लिये पुण्यस्थल के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रायः आचार्य वंदन का शुभारंभ अपने आचार्य के तनियन से ही किया जाता है और कमशः यह ऊपर की तरह बढ़ते हुए भगवान श्रीमन्नारायण तक जाता है। इस संदर्भ में **'गुरू गोविन्द दोनों खड़े काको लागूॅ पायॅ । बलिहारी गुरू आपकी जिन गोविन्द दियो बतायें'** स्मरणीय है। अपने परम्परा में निम्नांकित श्लोक का नित्य स्मरण किया जाता है।

अस्मद्देशिकमस्मदीय परमाचार्यान अशेषान गुरून्।
श्रीमल्लक्ष्मण योगिपुंगव़ महापूर्णौ मुनि यामुनम्।
रामं पद्मविलोचनं मुनिवरं नाथं शठद्वेषिणम्।
सेनेशं श्रियम् इन्दिरासहचरं नारायणं संश्रये।।22।।

गुरू परम्परा के श्लोक 22 को निम्नांकित 'वाक्य गुरूपरम्परा' से भी स्मरण करते हैं ः

1। अस्मद् गुरूभ्यो नमः । 2 । अस्मत्परमगुरूभ्यो नमः । 3। अस्मत्सर्व गुरूभ्यो नमः ।4। श्रीमते रामानुजाय नमः ।5। श्रीपराङ्कुशदासाय नमः । 6। श्रीमत् यामुन मुनये नमः । 7। श्रीराममिश्राय नमः । 8। श्रीपुण्डरीकाक्षाय नमः । 9। श्रीमन्नाथमुनये नमः । 10। श्रीमते शठकोपाय नमः। 11। श्रीमते विष्वकसेनाय नमः । 12। श्रियै नमः ।13। श्रीधराय नमः ।

पूर्वोक्त 1 से 21 तक के तनियन में श्रीविष्वकसेन जी का तनियन नहीं है। वरीयता के कम में तनियन 1 के वाद ही श्रीविष्वकसेन जी के तनियन का स्मरण किया जाता है। श्रीविष्वकसेन जी का तनियन ः

श्रीरंगचन्द्रमसमिंदिरया विहर्तुं विन्यस्य
विश्वचिदचिन्नयनाधिकारम् ।
यो निर्वहत्यनिशमंगुळिमुद्रयैव सेनान्यमन्यविमुखाः मशिश्रयाम् ।।
यस्य द्विरदवक्त्राद्याः पारिषाद्याः परश्शतम्।
विघ्नं निघ्नन्ति सततं विष्वकसेनं तमाश्रये।।

श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी की दिव्यकृति 'अर्चा गुणगान' नामक पुस्तक में स्वामी जी के श्रीमुख से आचार्य परम्परा का उल्लेख मिलता है। यह गेय पद तथा श्लोक के रूप में है और इसे अर्चा गुणगान से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

अर्चा गुणगान ः पद संख्या 21
अबहुँ हँसि हेरो रङ्ग राया
रङ्ग चरण आश्रित मम जानहु
सो अनन्त वरवरमुनि चेरो।1।
ते पुनि भाष्यकर पद सेवक
सो प्रभु महापूर्ण पद नेरो।2।
वह भय यामुन मुनि कर पायक
तिन शिर आळवार कर फेरो।3।
तिनको सेनाधिप पद जानहु
सो सेवक श्री श्रीपद केरो।4।
श्रीकल्याण गुणन की खानी
संतत वसत हृदय मह तेरो।5।
क। श्री वृन्दावन श्रीरङ्गाचार्य ः ।
ख। श्रीरङ्गाचार्य चरणः श्रीराजेन्द्र देशिका ः ।
घ। तस्याश्रित ः शरणगतोऽस्मि।
तद्वेतो ः विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय ।
यथा ः
रामानुजांघ्रि शरणोऽस्मि कुल प्रदीप ः ।
त्वासीत्‌यामुन मुने ः स च नाथ वंश्या ।।
वंश्य ः पराङ्कुश मुने ः स च सोऽपि देव्या ः।
दासस्तवेति वरदोऽस्मि तवेक्षणीय ः ।।

स्तोत्र रत्न का प्रारंभ **'नमोऽचिन्त्यादभुताऽक्लिष्टवैराग्यराशये......'** एवं अंत **'पितामहं नाथमुनिं विलोक्य ....'** से श्री यामुनाचार्य ने नाथ मुनि स्वामी के आश्रय का सहारा लिया है। इसीतरह से श्रीकुरेश स्वामी ने 'वैकुण्ठस्तव' का प्रारम्भ **'यो नित्यमच्युत ...'** ' एवं वरदराजस्तव का अंत **'रामानुजाघ्रिंशरणोऽस्मि ... वरदाऽस्मि तवेक्षणीय'** से की है। श्रीस्वामी जी महाराज ने अर्चागुणगान के पद 21 **'अबहुँ हँसि हेरो रङ्गराया'** का अंत 'वरदराज स्तव' के अंतिम उपर्युक्त पद का उदाहरण देते हुए अपने आचार्य एवं परमाचार्य परमहंस स्वामी एवं रंगदेशिक स्वामी की शरणागति पर आधारित **'विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय' से की है।** यह है अनुपम प्रपत्ति एवं आचार्याभिमान।

गुरू परंपरा की गद्दी

सरौती स्वामी जी से प्रारम्भ कर पूर्वाचायों एवं परम नियामक नारायण तक

श्री पराङ्कुशाचार्य स्वामी
श्री राजेन्द्रसूरि परमहंस स्वामी
श्री रंगदेशिक स्वामी
श्री श्रीनिवासाचार्य स्वामी
श्री शेषाचार्य स्वामी
श्री कृष्णाचार्य स्वामी
श्रीवेङ्कटाचार्य स्वामी
श्री शठकोप स्वामी
श्री अण्णन स्वामी
श्री वरवरमुनि स्वामी
श्री शैलपूर्ण स्वामी
श्री लोकाचारी स्वामी
श्री कृष्णपाद स्वामी
श्री कलीवैरी स्वामी
श्री वेदांती स्वामी
श्री पराशरभट्ट स्वामी
श्री गोविंदाचार्य स्वामी
श्री रामानुज स्वामी
श्री महापूर्ण स्वामी
श्री यामुनाचार्य स्वामी
श्री राममिश्र स्वामी
श्री पुंडरीकाक्ष स्वामी
श्री नाथमुनि स्वामी
श्री शठकोप स्वामी
श्री विष्वकसेन स्वामी
श्री लक्ष्मी जी
श्री नारायण

संदर्भ संकेत

भ।गी।	श्रीमद् भगवत गीता
मानस	श्रीतुलसीदास कृत रामचरित मानस
श।ग।	भगवद् रामानुज कृत शरणागति गद्य
ब्र।सू।	ब्रह्म सूत्र
पु सू	पुरूष सूक्त

श्रीमतेरामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

दूसरा अध्याय ः श्रीमन्नारायण

व्यूह पर वैभवन्ह व्यापी हूँ. कौन पाते यत्न से।
भगवान अर्चारूप धरकर जनन से मिल सुगम से।।

अर्चा गुणगान ः स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी

उपर्युक्त पद से भगवान श्रीमन्नारायण के पांच स्वरूप का स्मरण हो आता है ः

1। पर स्वरूप ः परमपदनाथ त्रिपाद विभूति में

2। व्यूह स्वरूप ः क्षीराब्धिशायी तथा इनके पुनः चार स्वरूप वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध

3। विभव स्वरूप ः श्रीमत्स श्रीकच्छप श्रीवराह श्रीनरसिंह श्रीवामन श्रीराम एवं श्रीकृष्ण आदि के अवतार

4। अन्तर्यामी स्वरूप ः सभी प्राणियों के हृदय में अवस्थित परमात्मा

5। अर्चा स्वरूप ः तिरूमला के वेङ्कटेश्वर भगवान कांचीपुरम के वरदराज पेरूमाल श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान आदि।

भारतीय संविधान के उदाहरण से समझने पर राष्ट्रपति 'पर स्वरूप' वाले हैं तो प्रधानमंत्री 'व्यूह स्वरूप' वाले हैं। यद्यपि राष्ट्रपति सम्मान के लिये वरीयतम होते हैं परन्तु देश में शांतिपूर्ण व्यवस्था बनाये रखने के लिये प्रधानमंत्री ही उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से श्रीस्वामी जी ने अर्चागुण गान में व्यूह स्वरूप को ही प्राथमिकता दी है। ऋषि मुनियों एवं शास्त्र के कथन से भी यह ज्ञात है कि जब जब संसार के कल्याण हेतु भगवान को अवतार लेना होता है तो क्षीरसागर में शयन मुद्रा वाले 'व्यूह स्वरूप' ही सक्रिय होकर 'विभव यानी अवतार स्वरूप' की परिकल्पना करते हैं। यद्यपि व्यूह स्वरूप स्वयं **'अमोघमुद्रे परिपूर्णनीद्रे श्रीयोगनीद्रे'** से संपूर्ण जगत की आवश्यकताओं के प्रति सतत जागरूक रहते हैं परन्तु स्वयं क्षीराब्धि निवास से कभी बाहर नहीं आते और आवश्यतानुसार आंशिक या पूर्णावतार

को कियान्वित कराते रहते हैं। 'पर स्वरूप' से भगवान परमपदधाम त्रिपादविभूति वैकुण्ठ में बैठे हुए मुद्रा में श्रीलक्ष्मीजी के साथ नित्य मुक्त सूरियों की सेवा स्वीकारते हुए आनन्दमय स्वरूप में मुस्कान विखेरते सतत विराजते रहते हैं। 'पुर वैकुण्ठ जान कह कोई।कोई कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।' मानस बा का **184।2**

कुछ काल के लिये विशेष स्वरूप में भगवान का धराधाम पर पधारना ही 'विभव स्वरूप' है। जैसे कि श्रीरामावतार श्रीकृष्णावतार श्रीवामनावतार श्रीवराहावतार श्रीनरसिंहावतार आदि आदि।

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो भ।गी। 15 । 15' एवं 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति...भ।गी। 18। 61' से भगवान के अन्तर्यामी स्वरूप का ज्ञान होता है। भगवान दिखते नहीं हैं परन्तु सभी प्राणियों एवं वस्तुओं में अन्तर्यामी रूप में नित्य निवास करते हैं। **'जाके हृदय भगति जसि प्रीती।प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहिं रीती।।' ...... हरि व्यापक सर्वत्र समाना......** मानस बा का **184।3** तथा **5**

ऊपर बताये गये चारो स्वरूपों की दुरूहता को देखते हुए 'अर्चा स्वरूप' की सुगमता एवं सुलभता ही अर्चागुण गान के पूर्वोक्त पद का मूल संदेश है। यह तो सर्वविदित है कि श्रीरंगम् कांचीपुरम् तिरूमला आदि दिव्यस्थलों के मन्दिरों में विभिन्न मुद्राओं में भगवान का अर्चास्वरूप ही सांसारिक परिस्थिति में सबसे कल्याणकारी सिद्ध हो रहा है।

श्रीरंगनाथ भगवान के आविर्भाव की वन्दना ः

तपस्ये मासि रोहिण्यां तटे सह्यभुवः स्थितम्।
श्रीरंगशायिनं वन्दे सेवितं सर्वदेशिकैः।।

कांचीपुरम वरदराज भगवान के आविर्भाव की वन्दना ः

चैत्रमासे सिते पक्षे चतुर्दश्यां तिथौ मुने।
शोभने हस्तनक्षत्रे रविवार समन्विते।।
प्रातस्सवनकाले तु वपाहीमे प्रवर्तिते।
धातुरूत्तरवेद्यन्तः प्रादुरासीत्स्वयं हरिः ।।

तिरूमला श्रीवेंकटेश भगवान के आविर्भाव की वन्दना ः

कन्याश्रवणसञ्जातं श्रीशेषाचलवासिनम्।
सर्वेषां प्रथमाचार्यं श्रीनिवासमहं भजे।।

राजा का दृष्टान्त

श्री वरवर मुनि स्वामी ने 'श्रीआचार्य हृदयम्' पुस्तक की टीका में एक ही भगवान के पांच स्वरूप में विराजना एक राजा के उदाहरण से समझाया है। 'आचार्य हृदय' श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामी के कनिष्ठ भाई श्री 'मनवाल पेरूमाल नयनार' की मणिप्रवाल में सूत्र की शैली पर लिखी गयी रचना है। इसमें आचार्यस्वरूप नम्माळवार की 'दिव्यप्रबंधम की रचनाओं' के गुढ़ार्थ को विलक्षण शैली में प्रस्तुत किया गया है। श्रीवरवर मुनि स्वामी ने इस पुस्तक की टीका तमिल में लिखी है।

क। 'पर स्वरूप' ः जब राजा अपने राजसिंहासन पर विराजकर जनता के बीच रहते हैं तो यह 'पर स्वरूप' जैसा हुआ जो राजा की सार्वभौमिकता को प्रदर्शित करता है।

ख। 'व्यूह स्वरूप' ः जब राज काज के निष्पादन हेतु राजा मंत्रीगण से परामर्श करते हैं तब यह 'व्यूह स्वरूप' का द्योत्तक होता है।

ग। 'विभव स्वरूप' ः दुष्टजनों एवं खतरनाक वन्य जन्तुओं के विनाश हेतु राजा का सकिय होना 'विभव स्वरूप' का प्रतीक है।

घ। 'अन्तर्यामी स्वरूप' ः सामान्य जनता की वस्तुस्थिति एवं अपने कार्य कलाप के पति जनप्रतिकिया जानने के लिये छद्म वेष में राजा का अपने राज्य में घूमना 'अन्तर्यामी स्वरूप' का उदाहरण है।

च। 'अर्चा स्वरूप' ः राजा का अपने राजकाज से विश्राम लेकर उद्यान में प्रसन्नचित्त होकर मनोरंजन में लीन होना 'अर्चा रूप' का प्रतिनिधित्व करता है।

समुद्र का दृष्टान्त

इस संदर्भ में श्री वरवरमुनि ने समुद्र का उदाहरण देकर श्रीमन्नारायण के पांच स्वरूपों को समझाया है। समुद्र की विशालता 'पर स्वरूप' का प्रतीक है। समुद्र का वह भाग जो उत्ताल तरंगो से सतत कियाशील दिखता है 'व्यूह स्वरूप' का द्योत्तक है। गहरे एवं शान्त समुद्र का भाग 'अन्तर्यामी स्वरूप' का प्रतीक है। समुद्र का वह भाग जो समुद्र से अलग होकर एक नदी की तरह

प्रवाह पूर्ण दिखता है 'विभव स्वरूप' का प्रतीक है। समुद्र से पृथक होकर एक तालाव की तरह स्थिर जलराशि 'अर्चा स्वरूप' का उहारण है।

शास्त्र का दृष्टान्त

वेद का स्वरूप बहुत ही विस्तृत और विशाल है तथा इसको सुगमता से समझ पाना संभव नहीं है। 'पर स्वरूप' वेद की तरह है। पांचरात्र एवं पुराण 'व्यूह स्वरूप' का प्रतीक है। स्मृति आदि जैसे 'मनु स्मृति' 'अन्तर्यामी स्वरूप' का प्रतीक है। इतिहास यानी रामायण महाभारत 'विभव स्वरूप' का पतीक है। आळवार संत के दिव्यप्रवंध 'अर्चा स्वरूप' के प्रतीक हैं।

जल का दृष्टान्त

श्रीपिल्लै लोकाचार्य स्वामी ने पांच स्वरूप को एक प्यासे आदमी के उदाहरण से समझाया है। किसी प्यासे को विरजा नदी के जल से प्यास तृप्त करने को कहा गया। पता चला कि विरजा तक तो पहुँचना ही दुस्तर है तो जल कैसे प्राप्त हो। विरजा का जल 'पर स्वरूप' की तरह अप्राप्य है। पुनः उसे क्षीर समुद्र के जल का उपाय बताया गया। यह भी उतना ही दुस्तर है जो 'व्यूह स्वरूप' का प्रतीक है। बाढ़ वाली नदी के जल को प्राप्त करना भी सर्वदा संभव नहीं है। बाढ़ के समय जल की अधिकता रहती है और बाद में नदी सूख भी जा सकती है। इसे 'विभव स्वरूप' के समान बताया। भगवान राम एवं कृष्णादि के अवतार काल में जो उपस्थित रहेंगे उन्हें लाभ मिल सकता है। यह नदी के बाढ़ के जल की तरह है। जमीन के नीचे का भूगर्भ का जल 'अन्तर्यामी स्वरूप' का उदाहरण है जिसे प्राप्त करना एक श्रम साध्य कार्य है। कुएँ तालाव तथा पात्र में संग्रहित जल 'अर्चा स्वरूप' की सुगमता का प्रतीक है। इसी तरह के अन्य उदाहरण में कभी कभी मेघ के पास के जल को यानी बादल में सन्निहित जल को 'पर स्वरूप' का प्रतीक बताया जाता है। समुद्र के जल को 'व्यूह स्वरूप' भूगर्भ जल को 'अर्न्तयामी स्वरूप' बाढ़ के जल को 'विभव स्वरूप' तथा कुँआ एवं तालाव के जल को 'अर्चा स्वरूप' जैसा बताया गया है।

श्रीमतेरामानुजाय नमः
श्रीमते पराङ्कुशगुरवे नमः

तीसरा अध्याय ः आळवार चरित

बारह आळवार ः

इस धराधाम पर मनुष्य देह में विचरण करने वाले श्रीवैष्णव संतगणों का एक पृथक इतिहास है। ये संतगण सतत भगवान के गुणगान में निमग्न रहते थे। आपलोगों ने वेद एवं शास्त्र की दुरूहता को दूर करते हुए अपनी स्वतः स्फूर्त सूक्तियों के माध्यम से चेतन प्राणी, जड़ जगत्, तथा परम कारूणिक श्रीमन्नारायण के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराया। श्रीमन्नारायण का दासत्व प्राप्त करना ही जीव का परमपुरूषार्थ है। श्रीमन्नारायण स्वयं अंगी हैं और समस्त जीव एवं जगत उनके अंग हैं। भगवान की कृपा निर्हेतुकी होती है और यह कोई पारिश्रमिकी के रूप में नहीं प्राप्त हो सकती। सृष्टि का सृजन एवं संवरण श्रीमन्नारायण की लीला मात्र है।

ये संतगण कुल **12** हो गये हैं एवं इन्हें श्रद्धा से 'आळवार' कहा जाता है। ये हैं ः **1**।सरोयोगी या पोयगै आळवार ।**2**।भूतयोगी या भूतद आळवार ।**3**।महयोगी या पेय आळवार ।**4**। भक्तिसार स्वामी या तिरूमळिशै आळवार। **5**। नम्माळवार यानी शठकोप स्वामी । **6**। मधुर कवि आळवार ।**7**। कुलशेखर आळवार या पेरूमाल आळवार ।**8**। विष्णुचित्त स्वामी या पेरिया आळवार । **9**। आंडाल या गोदा देवी ।**10**। भक्तांघ्रिरेणु या तोंडराडिप्पोडि आळवार । **11**। योगीवाहन या मुनिवाहन या तिरूप्पण आळवार । **12**। परकाल स्वामी या तिरूमंगै आळवार ।

तमिलनाडु के ताम्रपर्णी नदी से लेकर कावेरी तक फैले हुए भू भाग में सर्वाधिक आळवार संत का अवतार हुआ है। इस धराधाम पर आपके विराजमान रहने की अवधि द्वापर के उत्तरार्द्ध से लेकर कलि के प्रारंभिक शतव्दियों में अनुमान किया जाता है। आपलोगों की श्रीसूक्तियों की भाषा तमिल है और श्रीसूक्तियों के समेकित संग्रह को 'दिव्य प्रवन्धम' कहा जाता है। तमिल नाडु केरल आंध्रप्रदेश गुजरात उत्तरप्रदेश उत्तराखंड तथा नेपाल में ऐसे विलक्षण मंदिर हैं जहाँ अतीतकाल से श्रीमन्नारायण के विभिन्न स्वरूप

में वर्तमान अर्चामूर्ति की पांचरात्र या वैखानस पद्धति से पूजा अर्चना होती आ रही है। पृथ्वी पर दृश्यमान ऐसे ही स्थलों को दिव्यदेश कहा जाता है और इनकी कुल संख्या **106** है। इसके अतिरिक्त दो स्थल क्षीराब्धि एवं वैकुण्ठ नरशरीर धारीयों को दृश्यमान नहीं हैं। आलवार संतों ने ऐसे ही **108** दिव्यदेश में विराजमान भगवान की गाथा अपने स्वरों में गायी है जिसे दिव्यप्रवन्धम कहा जाता है।

नारायण से लेकर संपूर्ण आलवार एवं आचार्य परम्परा को श्रीस्वामी जी ने 'अर्चा गुणगान' के पद **5** में वहुत ही सारगर्भित शैली में प्रस्तुत किया है। श्रीस्वामीजी के निम्नांकित पद का गुणगान महत् कल्याणकारी है।
वेङ्कट गिरिपर भगवान ज़ी आये अधम उधारन।

भू योगीश्वर महत भट्टवऱ भक्तिसार अगवान जी। ।आये...
कुलशेखर श्रीयोगी वाहऩ भक्तचरण रजमान जी ।आये...
जामातृ परकाल वीरवऱ जिनसे लुटाये भगवान जी। आये...
भाष्यकर यामुन मुनि योगी़ राममिश्र परधान जी। आये...
स्वामी पुण्डरीक लोचन वऱ कृपा किये जनजान जी।आये...
नाथमुनिहुँ शठकोप मुनीश्वऱ विष्वकसेन परधान जी। आये...
माता श्री लक्ष्मी महारानी़ दया करो जन जान जी।आये...
दीनहिं के हित भूतल आये़ जानत परम सुजान जी।आये...

आळवार प्रादुर्भाव काल ः

आळवार संतों के अवतार काल के सम्यक ज्ञान में मतैक्य नहीं है। एक मान्यता से इनका अवतार **4200** ई पूर्व से **2700** ई पूर्व ज्ञात है जो द्वापर के अंत से कलि के प्रारंभ का द्योत्तक है। ऐसा समझा जाता है कि कलि के प्रारंभ **3102** ई पू के पूर्व ही यानी द्वापर के अंतिम वर्षो में मुदल आळवार तथा भक्तिसार स्वामी का अवतार हुआ। मुदल आळवार से समकालीन प्रथम तीन सरोयोगी भूतयोगी एवं महयोगी समझा जाता है। नम्माळवार कलि के प्रथम वर्ष में अवतरित हुए तथा अन्य सभी उनके वाद के काल के हैं। कुछ भाषाविद आळवार संत की तमिल रचनाओं के विश्लेषण से इनलोगों का

जीवन काल ईस्वी सदी **5** वीं से **9** वीं के बीच निर्धारित करते हैं।

सरो योगी या पोयगै आळवार ः

तुलायां श्रावणे जातं कांच्यां काञ्चनवारिजात' ।

द्वापरे पाञ्चजन्यांशं सरोयोगिनमाश्रये।।

द्वापर युग में तुला राशि के सूर्य में श्रवण नक्षत्र में कांचीपुरम के सरोवर में कमल के पुष्प से श्रीमन्नारायण के पाञ्चजन्य शंख के अंश से अवतार लेने वाले सरोयोगी की शरण लेते हैं।
कांचीपुरम में वरदराज पेरूमाल के मन्दिर से करीब **1** कि मी पश्चिम में यथोक्तकारी भगवान के मन्दिर परिसर से सटे हुए एक विशाल सरोवर स्थित है। आळवार संत अयोनिज थे क्योंकि इसी सरोवर में इनका उद्भव एक कमल के फूल से हुआ था।

इयर्पा नाम से लोकप्रिय दिव्य प्रबंधम के तीसरे हजार वाले भाग का पहला प्रबंध 'मुदल तिरूवन्दादि' कहा जाता है। यह एक सौ पासुरों यानी पदों का प्रबंध है जो सरोयोगी ने तिरूकोइलूर में अन्य दो समकालीन आळवार संतों की उपस्थिति में नारायण के स्वरूप की भव्य झांकी के उपरांत रचा था। इन पदों की यह विशेषता है कि पहले पद का अंतिम शब्द दूसरे पद का पहला शब्द है और इसीलिये इसे 'तिरूवन्दादि' कहते हैं यानी एक का अंत दूसरे का आदि है। आपने जिन **6** दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी गयी है वे हैं ः **1**।अरंगम यानी श्रीरंगम़ **2**।तिरूमल यानी वेंकटम़ **3**।वैकुंठ़ **4**।वेग्का यानी यथोक्तकारी भगवान कांची़ **5**।कोइलूर जहां तीनों आळवार संतों का समागम हुआ था। **6**।क्षीरसागर।

भूतयोगी या भूतद आलवारः

तुलाधनिष्ठा सम्भूतं कल्लोलमालिनः ।

तीरे फुल्लोत्पलान्मल्लापूर्यामीड़े गदांशकम् ।।

तुला के सूर्य में धनिष्ठा नक्षत्र में समुद्रतटीय नगर महावलीपुर में प्रफुल्ल कमल से नारायण के कौमोदकी गदा के अंशरूप में उत्पन्न हुए भूतयोगी की वन्दना करता हूँ। चेन्नै शहर से **55** किमी दक्षिण में तिरूकडलमलै दिव्यदेश हैं वहीं सरोवर में आपका अवतार कमल के फूल से हुआ था। आप अयोनिज थे। इयर्पा का दूसरा प्रबंध 'इरन्दाम तिरूवन्दादि' के नाम से जाना जाता है

एवं इसमें 100 पद हैं जो भूतयोगी ने तिरूकोइलूर में सरोयोगी तथा महयोगी की उपस्थिति में नारायण प्रभु की प्रशस्ति में रचा। एक पद के अंत का शब्द दूसरे पद का आदि शब्द बनता है इसीलिये यह तिरूवन्दादि कहा जाता है।आपने जिन 14 दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी है वे हैं ः 1।अरंगम यानी श्रीरंगम़ 2।तिरूमल यानी वेंकटम़ 3।वैकुंठ़ 4।तिरूक्कोट्टियूर यानी गोष्ठीपूर्ण स्वामी का अवतार स्थल़ 5।मलिरूमसोलै यानी आळगार कोईल़ 6। तिरूनिर्मलै़ 7।क्षीरसागऱ 8।तिरूतन्कल़ 9।पडकम या पांडवदूत कांची़ 10।अत्तियुर यानी वरदराज पेरूमाल कांची़ 11।कुडन्दै यानी सारंगपानी कुंभकोनम़ 12।तंजै मामणि़ 13।कोइल्लुऱ 14।कडमल्लै महाबलीपुरम ।

महयोगी या पेय आलवारः

तुलाशतभिषाजातं मयूरपुरकैरवात् ।

महान्तं महदाख्यातं वन्दे श्रीनन्दकांशकम् ।।

तुला के सूर्य में शतभिषा नक्षत्र में मयूरपुरी के कुओं में कुमुद फूल से नारायण के नन्दक खड्ग के अंश से अवतार लिये महयोगी की वन्दना करता हूँ। चेन्नै में वर्तमान काल का मयलापुर ही प्राचीन काल का मयूरपर है। महयोगी की तिरूकोइलूर भगवत्दर्शन की 100 पदों वाली रचना दिव्य प्रवंधम के इयर्पा भाग का तीसरा प्रबंध है एवं 'मून्राम तिरूवन्दादि' के नाम से जाना जाता है। महयोगी ने जिन 17 दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी है वे हैं ः 1। क्षीरसागऱ 2।तिरूमल यानी वेंकटम़ 3।तिरूवल्लीकेणी पार्थसारथी भगवान चेन्नै़ 4।वेग्का यानी यथोक्तारी भगवान कांची़ 5।वेलुक्कै यानी नरसिंह भगवान कांची़ 6।कुडन्दै सारंगपानी कुंभकोणम़ 7।पडगम यानी पाण्डव दूत कांची़ 8।वैकुंठ़ 9।अयोध्या़ 10।कडिगै यानी शोलंगिऱ 11।श्रीरंगम़ 12। तिरूकोट्टियूर 13।विण्णगरम यानी ओप्पलीअप्पऩ 14।अहोविलम 15।अत्तियूर यानी कांची वरदराज़ 16।मालिरूञजोलै़ 17।अष्टभुज कांची।

भक्तिसार स्वामी या तिरूमळिशै आळवारः

मघायां मकरे मासे चक्रांशं भार्गवोद्भवम् ।

महीसारपुराधीशं भक्तिसारमहं भजे ।।

मकर के सूर्य में मघा नक्षत्र में महीसारपुर में नारायण के सुदर्शन के अंश से भार्गव कुल में उत्पन्न भगवद्भक्ति को ही श्रेष्ठ मानने वाले भक्तिसार स्वामी की वन्दना करता हूँ। चेन्नै से पश्चिम पूनामलै के पास तिरूमळिशे गॉव को

ही महिसापुर कहते हैं।

तिरूमळिशै आळवार द्वारा विरचित दो रचना दिव्य प्रवंधम के भाग हैं। प्रथम हजार वाले भाग में तिरूमळिशै आळवार का एक प्रबंध है जिसे 'तिरूच्चन्द विरूत्तम' कहते हैं। इसमें पदों यानी पासुरों की कुल संख्या 120 है। यह एक विशेष तरह की लय पर आधारित रचना है। इसमें गोकुल़ एवं क्षीरसागर के अतिरिक्त अरंगम उर यानी श्रीरंगम दिव्य देश की सबसे पहले प्रशंसा करते हैं। तत्पश्चात् कुंभकोणम के कुडन्दै का मंगलानुशासन करते हैं। बीच बीच में वेंकटम की गाथा है। कांची के पडकम यानी पाडवदूत उरगम यानी त्रिविक्रम भगवाऩ एवं वेग्का यानी यथोक्तकारी भगवान की लीला का बखान है।

आपका दूसरा प्रबंध तीसरे हजार वाले भाग यानी इयर्पा में है जिसे 'नान्मूगम तिरूवन्दादि' कहते हैं और इसमें कुल 96 पासुर हैं। आपने जिन 17 दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी है वे हैं ः 1।गोकुल़ 2।तिरूमल यानी वेंकटम़ 3।वैकुंठ़ 4।तिरूकोट्टियूऱ 5।चेन्नै मयिलै तिरूवल्लीकेणी़ 6।तिरूकुरूंगुडी़ 7।कुडन्दै़ 8।वेग्का कांची़ 9।तिरूवल्लूर. 10।तिरूप्पेऱ 11।अनबिल़ 12।क्षीरसागऱ 13।द्वारका़ 14।तिरूकपिस्थलम 15।अरंगम उर यानी श्रीरंगम़ 16।उरगम कांची़ 17।पडकम कांची।

शठकोप स्वामी या नम्माळवार

वृषभे तु विशाखायां कुरूकापुरिकारिजम् ।

पाण्डयदेशे कलेरादौ शठारि सैन्यपं भजे।।

कलि के प्रारम्भ में वैशाख माह यानी वृष के सूर्य में विशाखा नक्षत्र में पाण्डय देश के कुरूकापुरी में श्री कारी महात्मा के पुत्र के रूप में सेनापति विष्वकसेन के अंश से उत्पन्न शठकोप स्वामी की वन्दना करता हूँ।

नम्माळवार को मारऩ शठकोप़ परांकुश़ शठारि आदि नामों से स्मरण किया जाता है। तमिलनाडु के त्रिचिरापल्ली से कन्याकुमारी तक के क्षेत्र को पाण्डय देश कहते हैं। तिरूनेलवेली से 35 किमी पर ताम्रपर्णी नदी के तट पर अवस्थित वर्तमान काल के 'आळवार तिरूनगरी' को ही पूर्वकाल में 'कुरूकापुरी' कहा जाता था।

नम्माळवार के चारो प्रबंध दिव्यप्रबंधम के तीसरे एवं चौथे हजार में संकलित

हैं। सभी चार प्रवंधों को मिलाकर पासुरों की कुल संख्या **1296** है। पासुरों की संख्या के विचार से दिव्यप्रवंधम में सबसे अधिक पासुर नम्माळवार के हैं। उल्लिखित प्रवंधों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत है।

तिरूवायमोळी ः यह दिव्यप्रवंधम के चौथे हजार का अकेला प्रवंध है। इसे सहस्रगीती भी कहते हैं। सभी प्रवंधों में इसे सर्वोत्तम महत्व प्रदान किया गया है। यह सामवेद का प्रतिनिधि है तथा गीता की तरह भगवान के श्रीमुख से निकला हुआ प्रवंध है। तिरूवायमोळी में कुल **1102** पद या पासुर हैं जो **10** शतकों में संकलित हैं। प्रत्येक शतक में दस दशक हैं तथा एक दशक में दस पासुर के अतिरिक्त ग्यारहवां पासुर उस दशक की फलश्रुति है। अपवाद के रूप में दूसरे शतक के सातवें दशक में **13** पासुर हैं जिसके **12** पासुर में भगवान के केशव से दामोदर पर्यन्त नाम की संस्तुति है तथा **13** वें पासुर में फलश्रुति है। प्रत्येक दशक तिरूअंतादि की शैली में है जिसमें एक दशक का अंतिम शव्द आगे वाले दशक का प्रथम शव्द बनता है। आपने जिन **39** दिव्यदेशों की महिमा गायी है वे हैं।

1।क्षीरसमुद।**2**।वैकुण्ठ। **3**।बदरी।**4**।तंजै मामणि ।**5**।अयोध्या ।**6**।मथुरा।**7**।द्वारका दुवरापदि।**8**।वेंकटम।**9**।श्रीरंगम्।**10**।तेन तिरूप्पेर ।**11**।कुडन्दै ।**12**।मलीरूमसोलै ।**13**।तिरूक्कोलूर।**14**।वेग्का यथोक्तकारी कांचीपुरम।**15**।तिरूतन्का कांची ।**16**।तिरूक्कुरूंगुडी।**17**।तिरूकन्नपुरम ।**18**।ओप्पली अप्पन तिरूविण्णगर ।**19**।वानमामलै ।**20**।आदिपिरान कुरूगुर आळवार तिरूनगरी ।**21**।तुलैविल्ली मंगलम्अरविन्दलोचन एवं देवपिरान ।**22**।तिरूप्पेरियल ।**23**।वरगुणमंगै।**24**।श्रीवैंकुठम ।**25** ।तिरूपुलिंगुडी।**26**।मायाकुत्तन ।**27**।तिरूवारन्विल्लै या अरनमूला।**28**।तिरूमूळिकुळम ।**29**।तिरूवन वन्डूर ।**30**।तिरूवल्लवाळ ।**31**।तिरूनवै ।**32**।तिरूवनंदपुरम।**33**।तिरूप्पुलियूर कुट्टनाड्डु ।**34**।तिरूक्काटकरै।**35**।तिरूवत्तारू ।**36**।तिरूच्चेंगनूर ।**37**।तिरूक्कडित्तानम ।**38**।तिरूवनपरिशरन ।**39**।तिरूमोगूर ।

तमिल भाषा में प्रेमी के प्रेम की पराकाष्ठा को 'मडल' से चित्रित करने की परंपरा है। इसमें प्रेमी उन्मत्त की भांति नारियल वृक्ष के धड़ को घोड़ा के रूप में प्रयोग में लाता है। फटे चिटे कपड़े पहन कर प्रेमी अपनी प्रेमिका के चित्र का ध्वज धारण कर नगर की गलियों में फेरी देते हुए प्रेमिका को धिक्कारता है। प्रेमी की इस तरह की गतिविधि से समाज के लोगों का ध्यान आकर्षित होता है और प्रेमिका प्रेमी से मिलने को वाध्य हो जाती है।

नम्माळवार ने भी तिरूवायमोळी के पांचवे शतक के तीसरे दशक में नायकी की ओर से नायक नारायण प्रभु को 'मडल' की धमकी दी है। प्रथा के विपरीत प्रेमिका ही यहां पेमी के विरोध में 'मडल' करती है। इसी शैली पर परकाल स्वामी की दो स्वतंत्र रचनायें हैं जो 'शिरीय तिरूमडल' तथा 'पेरिय तिरूमडल' के नाम से जानी जाती हैं तथा दोनों रचनायें दिव्यप्रवंधम के इयर्पा में संकलित हैं।

तिरूविरूत्तम ः यह **100** पदों की रचना है तथा विरूत्तम गीत शैली पर आधारित है। इसे दिव्यप्रवंधम के तीसरे हजार वाले इयर्पा में रखा गया है। तमिल शव्द 'विरूत्तम' का शाव्दिक अर्थ है 'कोई घटना'। वास्तव में इसमें भगवान के प्रेम में विभोर नायकी के मनोभाव की घटनाओं का सजीव चित्रण है। इसे ऋक् वेद का सार मानते हैं। यहां जिन दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी गयी है वे हैं ः **1**।वैकुंठ **2**।तिरूमल यानी वेंकटम् **3**।वेग्का कांची **4**।तिरूतन्कल यानी दीपप्रकाश कांची **5**।श्रीरंगम् **6**।क्षीरसागर

तिरूवाशिरियम ः यह यजुर्वेद का सार है तथा इसमें कुल **7** पासुर हैं जो भगवान की लीला गाथा से भरे हैं। इसे दिव्यप्रवंधम के इयर्पा वाले अंश में रखा गया है तथा यहां क्षीरसागर दिव्यदेश की महिमा की बन्दना की गयी है।

पेरिया तिरूवन्दादि ः **87** पदों की यह रचना अंतादि शैली पर है तथा इयर्पा का एक भाग है। इसे अथर्व वेद का सार मानते हैं। इस प्रवंध में वैकुंठ, तिरूमल यानी वेंकटम, क्षीरसागर की महिमा का वर्णन है।

मधुरकवि आळवार

चैत्रे चित्रासमुद्भूतं पाण्दयदेशे खगांशकम् ।
श्रीपरांकुशसद्भक्तं मधुरं कविमाश्रये।।

मेष के सूर्य में चित्रा नक्षत्र में नारायण के वाहन गरूड़ के अंश से श्रीपरांकुश शठरिपु के परमभक्त मधुर कवि की शरण लेता हूँ।

मधुरकवि आळवार का जन्म नम्माळवार के पूर्व हो चुका था। जैसे सूर्य के उदय के पूर्व उनकी किरणें दृश्यमान होती हैं उसी तरह नम्माळवार रूपी सूर्य

के आगमन के पूर्व ही मधुरकवि का आविर्भाव हुआ। मधुरकवि का अवतार ईश्वर वर्ष के चैत्र मास में शुक्ल चतुर्दशी तिथि को चित्रा नक्षत्र में शुक्रवार को गरूड़ के अंश से हुआ। आळवार संत का अवतार स्थल आळवार तिरूनगरी से **3** कि मी पूरब में तिरूकोलुर नामक स्थान है। अयोध्या तीर्थयात्रा के कम में आपने दक्षिण आकाश में एक प्रकाशपुंज देखा। उस प्रकाश पुंज का अनुगमन करते हुए आप आळवार तिरूनगरी में इमली के वृक्ष के खोड़र में ध्यानस्थ नम्माळवार तक पहुंच गये। नम्माळवार के पास आकर आपने एक बड़े पत्थर को जमीन पर पटक कर जोर की आवाज उत्पन्न की। नम्माळवार ने मुस्कुराते हुए आंख खोलकर मधुरकवि को देखा। मधुरकवि ने नम्माळवार से एक प्रश्न पूछा 'जीव का चैतन्य कहां रहता है' नम्माळवार ने छूटते ही कहा 'जीवात्मा का वास नारायण में है'। मधुरकवि उसी समय से नम्माळवार की सेवा में लग गये तथा उनके श्रीमुख से निकले सभी वचनों का आपने सावधानी से संग्रह किया जो सभी दिव्यप्रबंधम के प्रवंध हैं। नम्माळवार की प्रशस्ति में रचे गये आपके **11** पद का प्रवंध 'कण्णिनुण शिरूताम्बु' दिव्यप्रबंधम का एक महत्वपूर्ण भाग है। आपकी प्रस्तुति में कुरूगुर यानी आळवार तिरूनगरी दिव्यदेश की महिमा का बखान है। कालकम में जब सभी आळवार संतों की रचनाओं का लोप हो गया तो श्रीनाथमुनि ने मधुरकवि के **11** पदों वाले 'कण्णिनुण शिरूताम्बु' को बड़े उद्यम से प्राप्त कर नम्माळवार की सन्निधि में उसका **12000** बार पाठ किया। फलस्वरूप नम्माळवार ने प्रसन्न होकर श्रीनाथमुनि को सभी लुप्त प्रबंध उपलब्ध करा दिया। आज जो दिव्यप्रबंधम उपलब्ध है वह नम्माळवार से प्राप्त होने पर श्रीनाथ मुनि द्वारा संकलित किया गया है।

कुलशेखर आळवार

कुंभे पुनर्वसुभवं करले चोलपट्टने ।

कौस्तुभांशं धराधीशं कुलशेखरमाश्रये।।

कुंभ के सूर्य में पुनर्वसु नक्षत्र में केरल के चोलपट्टन स्थान पर जिसे वर्तमान में कोडंगलूर या तिरूभञ्जिकोळम कहते हैं नारायण के कौस्तुभ के अंश से प्रादुर्भूत होने वाले राजा कुलशेखर आळवार की शरण लेता हूँ।

आपके राजमहल में श्रीवैष्णवों को बड़ा सम्मान दिया जाता था। राजमहल में श्रीवैष्णवों की संख्या की उतरोत्तर वृद्धि से तंग आकर मंत्रीगणों ने एक चाल चली और भगवान के सुवर्ण पात्र की चोरी की घोषणा कर उसे आगत श्रीवैष्णवों की करतूत बतायी। राजा को श्रीवैष्णवों पर बहुत ही विश्वास था। अतः राजा ने एक विषधर सर्प को घड़े में बंद कर मंगवाया। राजा ने बताया कि वे अपना हाथ उस घड़े में डालेंगे और अगर कोई श्रीवैष्णव दोषी होगा तो सर्प उनको डस लेगा अन्यथा वे सर्प के विष दंश से मुक्त रहेंगे। मंत्रियों को बहुत ही आश्चर्य हुआ जब राजा को सांप ने छुआ तक नहीं। सभी मंत्री राजा के विश्वास के सामने नतमस्तक हो गये। एकबार रात में राजा अपने आवास की सीढ़ी से भूखंड से ऊपर के खंड पर जा रहे थे। आप भगवान के चिंतन में विभोर थे कि भगवान कृष्ण से आपका साक्षात्कार हुआ। तत्काल आपकी कवित्व शक्ति जागृत हो गयी तथा भगवान की प्रशंसा में आपने संस्कृत में प्रशस्ति पदों की रचना कर डाली जो 'मुकुन्दमाला' के नाम से प्रसिद्ध है।

दस दशकों में संकलित आपकी रचना को 'पेरूमाल तिरूमोळी' कहते हैं जो दिव्यप्रबंधम के प्रथम हजार वाले भाग का एक महत्वपूर्ण अंश है एवं इसमे कुल **105** पासुर हैं। इसका एक दशक माता देवकी की उस मनोस्थिति का बहुत ही भावुक चित्रण करता है जिसमें माता देवकी भगवान कृष्ण के बाललीला के दर्शन से बंचित रह गयीं तथा बाललीला का आनंद मॉं यशोदा को मिला। आपने रामायण की कथा को अपनी रचनाओं में बहुत ही महत्व दिया है जिसके माध्यम से माता कौसल्या का लोरी गाकर भगवान को सुलाना तथा संक्षिप्त रामायण रोचक तरीके से प्रस्तुत हैं। जिन **10** दिव्य देशों की महिमा आपने सुनायी है वे हैं ः **1**। श्रीरंगम़ **2**। वेंकटम़ **3**। वित्तुवक्कोडु **4**। तिरूकन्नपुरम़ **5**। तिल्लै चित्रकूट यानी चिदंबरम़ **6**। तिरूवाली **7**। उरैयूऱ **8**। यमुना **9**। अयोध्या **10**। क्षीरसमुद्र

पेरियाळवार या श्रीविष्णुचित्त स्वामी

मिथुने स्वातिजं विष्णो रथांशं धन्विनःपुरे ।

प्रपद्ये श्वसुरं विष्णोः विष्णुचित्तं पुरःशिखम् ।।

मिथुन के सूर्य में स्वाती नक्षत्र में श्रीविल्लीपुत्तुर में नारायण के रथ के अंश से

अवतार लेने वाले भगवान के ससुर एवं सर्वजनशिरोमणि भक्तराज विष्णुचित्त स्वामी की शरण ग्रहण करता हूँ।

'पेरिय' तमिल शब्द है जिसका अर्थ है 'वरीय' या 'वरिष्ठ'। श्रीविष्णु चित्त स्वामी का अवतार तमिलनाडु में मदुरै से **80** कि मी पर अवस्थित श्रीविल्लीपुत्तुर में हुआ था। पांडय क्षेत्र के राजा बल्लभ देव जी की बहुत प्रसिद्धि थी। राजा प्रजा की भलाई हेतु रात में वेष बदलकर विचरण किया करते तथा प्रजा की आवश्यकता से अपने को अवगत कराते। एक रात राजा को एक वृद्ध विद्वान ब्राह्मण से भेंट हुई जो काशी से गंगा स्नानकर सेतु बंध रामेश्वरम जा रहे थे। राजा ने ब्राह्मण से पूछा "श्रेष्ठ पुनर्जन्म को कैसे प्राप्त किया जा सकता है' उन्होंने राजा को बताया 'जैसे दिन में रात की आवश्यकता के लिये काम करते हैं तथा ग्रीष्म एवं बसंत ऋतु में वर्षा ऋतु के लिये तैयारी कर वस्तुसामग्री एकत्र करते हैं उसीतरह से इस जीवन में अगले जीवन के लिये प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।' इस परामर्श से प्रभावित होकर राजा ने विद्वज्जनों की एक सभा बुलाई।उस सभा का यह निश्चित करना मुख्य उद्देश्य था कि इस जीवन में कौन सा कार्य करके श्रेष्ठ अगला जन्म प्राप्त किया जा सकता है।सर्वोत्तम राय के लिये ऊंची राशि के पुरस्कार की भी घोषणा की गयी।

बटपत्रशायी भगवान ने श्रीविष्णु चित्त स्वामी को स्वप्न में राजा की सभा में भाग लेने को प्रेरित किया। राजा के धार्मिक सलाहकार शेल्वानंबी ने भी राजा को उत्प्रेरित कर श्रीविष्णुचित्त स्वामी को निमंत्रण भेजा।सभा में अपनी बारी आने पर श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने नारायण के प्रति शरणागति को सर्वोत्तम मार्ग बताया। आळवार संत विजेता घोषित हुए तथा पुरस्कार की राशि के अतिरिक्त राज सम्मान के साथ हाथी पर सवार होकर एक शोभायात्रा के साथ श्रीविल्लीपुत्तुर के लिये प्रस्थान किये। इस शोभा यात्रा को देखने वैकुण्ठलोक से भगवान भी गरूड़ पर सवार हो चले। गरूड़ की गति से असंतुष्ट भगवान स्वयं कूदकर श्रीविष्णुचित्त स्वामी की शोभायात्रा देखने पधार गये। जब आळवार संत को भगवान पर दृष्टि पड़ी तो उन्होंने हाथी के मस्तक से सज्जा के सामान को लेकर वाद्य यंत्र के रूप में प्रयोग किया तथा

भगवान की अलौकिक छवि को शाश्वत रूप से निहारते रहने की मंगल कामना करने हेतु स्वतःस्फूर्त पदों की रचना कर डाली जो आज 'प्पल्लाण्डु' के नाम से विख्यात है। भगवान की सभी शोभायात्रा का प्रारंभ तथा अंत 'प्पल्लाण्डु' गान से होता है। श्रीविष्णुचित्त स्वामी स्वयं से ज्यादा भगवान की रक्षा के लिये चिंतित हो गये।'भगवान को कोई नजर दोष न लगा दे' इस भावना से ओत प्रोत होकर आपने प्पल्लाण्डु गाया। चूँकि आप एक सच्चे अभिभावक के रूप में भगवान के लिये चिंतित हो गये अतः आपको 'पेरिय' शब्द से सम्बोधित किया गया और 'पेरिय आळवार' के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीविल्लीपुत्तुर आकर आपने सारी राशि भगवत कैंकर्य में समर्पित कर स्वयं पूर्ववत माला बनाने के काम में लग गये। आळवार संत को कोई संतान नहीं थी। एकदिन तुलसीकानन में एक नवजात बालिका पड़ी हुई मिली। आपने बड़े लाड़ प्यार से इस बालिका का लालन पालन किया। यही बालिका गोदा देवी हुई जो श्रीरंगनाथ से ब्याही गयीं। बारह आळवार संतों की श्रृंखला में गोदा देवी भी एक आळवार हैं।

श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने भगवान की संस्तुति में 'पेरियाळवार तिरूमोळी' की रचना की जो दिव्यप्रबंधम का पहला प्रबंध है और इसमें कुल **473** पासुर हैं जो पांच शतकों में संकलित है। आळवार संत के लिये तमिल में बड़े सम्मान से कहा जाता है कि आपने 'पू मालै' यानी पुष्पमाला की सेवा के साथ साथ 'पा मालै' यानी नारायण तत्व की गीतभरी काव्यात्मक सम्यक व्याख्या की। आपके प्रबंध में जिनकी प्रशस्ति गायी गयी है वे **20** दिव्यदेश हैं ः **1**। तिरूकोट्टियूर **2**। वेंकटम् **3**। तिरूकुरूंगुड़ी **4**। तिरूवेल्लारै **5**। तिरूमालैरूञशोलै **6**। तिरूप्पेर **7**। कुडन्दै **8**। कण्णपुरम **9**। गोवर्द्धन **10**। देवप्रयाग **11**। तिरूवरंगम् यानी श्रीरंगम् **12**। शालग्राम **13**। द्वारका **14**। अयोध्या **15**। मथुरा **16**। वैकुंठ **17**। बदरी **18**। श्रीविल्लीपुत्तुर **19**। क्षीराब्धि **20**। चिदंबरम।

आंडाल या गोदा देवी

कर्कटे पूर्वफाल्गुन्यां तुलसी काननोद्भवाम् ।

पाण्डये विश्म्भरां गोदां वन्दे श्रीरंगनायिकाम्।।

कर्क के सूर्य में फूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में पाण्डय देश के श्रीविल्लीपुत्तुर में स्थित तुलसी उपवन में प्रार्दूभूत संपूर्ण विश्व का पालन पोसन करने वाली श्रीरंगनाथ

भगवान की महिषी की वन्दनाकरता हूँ। आपको आंडाल़, कोदै़, गोदा मां, गोदम्मा, रंगनायकी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है तथा आपको नीलादेवी तथा एक अन्य मान्यता से भूदेवी का अवतार माना जाता है।

सीता जी की तरह आन्डाल भी पृथ्वी से निकली हैं। आन्डाल को श्रीविष्णुचित्त स्वामी ने तुलसी के बागीचे में पाया था। भगवान की सेवा के लिये माला बनाने में आन्डाल अपने पिता की सहायता किया करती थीं। पिता की अनुपस्थिति में माला की सुन्दरता को ये स्वयं गले में धारण कर आइने में देखकर परखती थीं । एक दिन पिता ने देख लिया और दुःखी मन से माला को अपवित्र समझ उस दिन भगवान को कोइ माला अर्पित नहीं की। भगवान ने इन्हें स्वप्न देकर आन्डाल की पहनी हुई माला को हीं चढ़ाने का निर्देश दिया। उस दिन से श्रीविष्णुचित्त स्वामी आन्डाल को अवतार के रूप में देखने लगे। जब ये विवाह योग्य हुई तव आन्डाल ने श्रीरंगनाथ भगवान से ही संबंध बानाने का निश्चय किया। भगवान श्रीरंगनाथ के निर्दे श से आन्डाल को डोली में सजाकर भगवान के मंदिर में अतिउत्साह पूर्वक लाया गया। तदुपरान्त आन्डाल ने अपने को भगवान की सन्निधि में तिरोहित कर दिया। दिव्यप्रबंधम में आपकी दो रचनायें प्रथम एक हजार वाले भाग में सम्मिलित है। आपकी प्रथम रचना 'तिरूप्पावै' है तथा दूसरी रचना 'नाच्चियार तिरूमोळी' है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के स्कंध **10** के अध्याय **22** की कात्यायनी व्रत की तरह आन्डाल धर्नुमास में **30** दिन व्रत करती थीं जिसका उद्देश्य श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करना था। तिरूप्पावै के **30** पासुर इसी प्रयास का सजीव चित्रण है। पासुर **1** में आन्डाल अपनी सखियों को सूर्योदय से पूर्व जागकर स्नान कर पूजा के लिये आमन्त्रित करती हैं तथा पासुर **2** में व्रत के नियमों के पालन का विवरण है जिसके अनुसार इस अवधि मे दूध घी का त्याग कर जूड़े में फूल नहीं बांधना तथा भक्ति साहित्य का पाठ करते हुए संतजनों को सम्मान तथा दान करना है। पाशुर **3** एवं **4** में भगवान की महत्ता तथा व्रत के फल चित्रित हैं। पासुर **5** में पूजा की विधि का वर्णन है।

पाशुर **6** से **15** तक सखियों को जगाने के उपकम का वर्णन है। पाशुर **16** में नंद जी के राजमहल के द्वारपाल को जगाया जाता है। पासुर **17** में नंदजी़ यशोदा बलराम तथा श्रीकृष्ण को जगाया जाता है। पाशुर **18** से **20** तक भगवान श्रीकृष्ण की सहभागिनी नप्पिनाय जो नीला देवी हैं को जगाया जाता है। **21** से **23** पासुर तक भगवान से बातचीत को चित्रित किया गया है। पाशुर **24** से **29** तक भगवान की प्रार्थना तथा पूजा व्रत के उद्देशय से भगवद कैंकर्य करने का आश्वाशन प्राप्त कर उत्साह की पूर्णाहति में घी उत्पलावित खीर समर्पित कर श्रृंगार कर भगवान का चिर सन्निधि प्राप्त करना है। पाशुर **29** तो पूर्ण समपर्ण और शरणागति को चित्रित करता है जो वैष्णवता तथा उसकी प्रपन्नता का द्योत्तक है। पाशुर **30** में आन्डाल स्वयं को फलदायी तिरूप्पावै को रचने वाली बताती हैं।

स एव वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरूष उच्यते।
स्त्रीप्रायमितरत्सर्व जगत ब्रह्म पुरस्सरम्।।

श्रीवासुदेव के अतिरिक्त सभी प्राणी स्त्री प्राय हैं।श्रीगोदा देवी ने सभी **10** आळवारों को पद **6** से **15** तक में स्त्रीवाचक 'सखी' शब्द से सम्बोधित किया है। मधुर कवि को आळवार नहीं माना गया है तथा आंडाल तो स्वयं विराजमान हैं ही इसलिये **12** नहीं **10** ही आळवार हुए।

तिरूप्पावै के कई शाव्दिक अर्थ हैं। जो ज्यादा लोकप्रिय है वह है "श्रेष्ठ व्रत"। एक और सटीक अर्थ है। "तिरू" यानि "सम्मानजनक" और "प्पावै" यानि "विवाह योग्य कन्या"। तिरूप्पावै में भगवान नारायण के विभिन्न अवतारों का यशोगान किया गया है । त्रिविकम भगवान को पाशुर **3 17** एवं **24** में, क्षीरसागरशायी भगवान को **2 4** एवं **6** में, भगवान राम को **10 12 13** में, तथा श्रीकृष्ण को कईयों में चित्रित किया गया है। श्रीलक्ष्मी नृसिंह को पासुर **23** में विशेष रूप से वर्णित किया गया है। तिरूप्पावै अति पवित्र प्रबंध है तथा इसका पाठ घरों एवं मंदिरों में नित्य अतिश्रद्धा से किया जाता है। धर्नुमास के **30** दिन तिरूप्पावै के पाठ के साथ विशेष उत्सव की तरह मनाये जाते हैं।

आन्डाल के **143** पासुर की "नाच्चियार तिरूमोलि"का एक अंश "वार्णम अयराम" है जिसमें आन्डाल ने भगवान श्रीकृष्ण से विवाह के विभिन्न कार्यक्रमों का सजीव चित्रण किया गया है और जो "सप्तपदी" पर जाकर पूरा होता है।तमिलनाडु के प्रत्येक परिवार मे वर वधू के कल्याणार्थ विवाह के अवसर पर "वार्णम अयराम" का विधिवत पारायण आवश्यक रूप से किया जाता है। आंडाल ने जिनकी प्रशस्ति गायी गयी है वे **11** दिव्यदेश हैं ः **1**।वैकुंठ़ **2**।वेंकटम़ **3**।पुदुवै यानी श्रीविल्लीपुत्तुऱ **4**। तिरूमालैरूञशोलै़ **5**।कण्णपुरम़ **6**।मथुरा़ **7**।क्षीरसागऱ **8**।तिरूवरंगम् यानी श्रीरंगम़् **9**।आयप्पादी यानी वृन्दावन तथा गोवर्द्धन एवं यमुना़ **10**द्वारका़ **11**।कुडन्दै।

तोंडराडिप्पोडि आळवार या भक्ताघ्रिंरेणु स्वामी

कोदण्डे ज्येष्ठानक्षत्रे मण्डङ्गुड़ि पुरोद्भवम् ।

चोलोर्व्या वनमालांशं भक्तांघ्रिरेणुमाश्रये।।

तमिलनाडु के चोलराज्यस्थ त्रिचिरापल्ली शहर के पास तिरूमंडंगुडी नगर में धनु के सूर्य में ज्येष्ठा नक्षत्र में नारायण के वनमाला के अंश से अवतार लेने वाले भक्तांघ्रिरेणु स्वामी की शरण लेता हूँ। आप वैदिक ब्राह्मण कुल के थे और आपका वचपन का नाम विप्रनारायण था।

कथा है कि विप्रनारायण ने भगवान के दिव्यपार्षद विष्वकसेन से संसार के धर्मकृत्य को समझा। एक दिन विप्रनारायण **108** दिव्यदेश की यात्रा पर निकले। आपके दर्शन का सबसे पहला दिव्यदेश श्रीरंगम हुआ। भगवान रंगनाथ के विग्रह से आप इतना प्रभावित हुए कि अन्य दिव्यदेश की यात्रा स्थगित कर आप श्रीरंगम में ही रूक गये। एक स्थान पर सुन्दर तुलसी एवं फूल का उद्यान विकसित कर एक छोटी पर्णकुटी में रहने लगे तथा नित्य भगवान रंगनाथ को सुन्दर माला बनाकर अर्पित करने लगे।

संयोगवश एक नर्तकी की खुशी के लिये आप धन कमाने में लग गये तथा अपनी सारी कमाई उस नर्तकी को अर्पित करते गये। एक दिन वह उद्यान छोड़कर अपने बड़ी वहन से मिलने गयी। आप भी उसके पीछे हो लिये। आपके पास कुछ भी धन न देखकर उसकी मां ने आपको धक्का देकर घर से बाहर कर दिया। आपकी यह स्थिति देख भगवान रंगनाथ को दया आ

गयी। भगवान की लीला से एक बटुक भगवान का चांदी का पात्र नर्तकी को विप्रनारायण के उपहार के रूप में दे आया। मंदिर में पुजारी पात्र को न देखकर उसकी खोज करने लगे। इस अपराध के लिये नर्तकी पकड़ी गयी परंतु अंततः विप्रनारायण ही दोषी पाये गये और राजा के कारागार में वंद कर दिये गये। भगवान ने राजा को स्वप्न देकर विप्रनारायण को कारागार से मुक्त कराया। तब से विप्रनारायण ने नर्तकी से पिंड छुड़ा लिया तथा पुनः भगवान की सेवा में लग गये। आप मंदिर के प्रवेश द्वार पर बैठकर दर्शनार्थी भक्तों की चरण धूली को अपने सिर पर धारण करते थे। इसीके कारण से आपका नाम भक्तांघ्रिरेणु पड़ा।

आपकी दो रचनायें दिव्यप्रवंधम के प्रथम हजार में सम्मिलित हैं तथा ये रचनायें भगवान रंगनाथ की श्रद्धामय भक्ति भाव से ओतप्रोत हैं। पहली रचना 'तिरूमालै' कही जाती है जिसमें कुल **45** पासुर हैं। तिरूमालै में स्वयं को इन्द्रियों की शिकार होने का उल्लेख किया है तथा अपने आपको भगवान का पुष्पमाला कैंकर्य करने वाला बताया है। आपकी दूसरी रचना **10** पासुरों की है तथा इसे 'तिरूप्पळिळयळुच्चि' कहते हैं। इसमें भगवान रंगनाथ को प्रातः जगाने की वंदना है। आपके दोनों प्रवंधों में तिरूअरंगम यानी श्रीरंगम दिव्यदेश की महिमा गायी हुई है।

तिरूप्पाण आळवार या योगीवाहन मुनि

वृश्चिके रोहिणेजातं श्रीपाणिं निचुलापुरे।

श्रीवत्सांकं गायकेंद्रं मुनिवाहनमाश्रये।।

वृश्चिक के सूर्य के रोहिणी नक्षत्र में श्रीरंगम के पास त्रिचिरापल्ली के एक मुहल्ला 'औरैयूर' में नारायण के श्रीवत्स के अंश से प्रादुर्भूत गायक राज तिरूप्पाण आळवार की शरण लेता हूँ।

आप 'मुनिवाहन' तथा 'पाण' नाम से भी सम्वोधित किये जाते हैं। आप अन्त्यज कुल के संगीत प्रेमी घराने से आये। इस संगीत प्रेमी कुल को तमिल में 'वानर' कहते हैं। पद रचने तथा सुरीली आवाज में गाने का आपको नैसर्गिक कला प्राप्त था। नित्य आप भगवान रंगनाथ के भक्तों पर पद

रचकर पण वाद्ययंत्र की संगति पर उसे कावेरी के किनारे बैठ गाते रहते। कावेरी के किनारे से ही आप भगवान की संगीत सेवा समर्पित करते। एक दिन रंगनाथ भगवान ने वरीय अर्चक लोकसारंग मुनि को तिरूप्पान आळवार को अपने कंधे पर बिठाकर मंदिर में लाने को कहा। लोकसारंग मुनि ने वैसा ही किया जैसा उन्हें भगवान ने उत्प्रेरित किया था। तिरूप्पाण आळवार के मना करने पर भी लोकसारंग मुनि ने कंधे पर बैठाकर रंगनाथ भगवान के समक्ष आळवार संत को प्रस्तुत किया। आळवार संत ने इस जीवन में अपनी आंखों से भगवान के दर्शन की कल्पना ही नहीं की थी। जब आपने भगवान की छवि देखी तो अश्रुपूरित नयनों से आपादमस्तक भगवान के सौंदर्य का वर्णन 10 पासुरों में तत्काल भगवान के समक्ष ही कर दिया। यह रचना 'अमलनादिपिरान' के नाम से दिव्यप्रबंधम के प्रथम हजार वाले भाग में सम्मिलित है। चूंकि आप लोकसारंगमुनि के कंधे पर भगवान के मंदिर में लाये गये इसलिये आपका नाम 'मुनिवाहन' या 'योगीवाहन' हो गया। आप पण वाद्ययंत्र पर संगीत प्रस्तुत करते थे इसलिये आप 'तिरूप्पाण आळवार' नाम से सम्बोधित किये जाते रहे। आपके इस प्रबंध में वेंकटम एवं अरंगम यानी श्रीरंगम दिव्यदेश की गाथा प्रस्तुत है।

तिरूमंगै आळवार या परकाल स्वामी

वृश्चिके कृत्तिकाजातं चतुष्कविशिखामणिम्।
षट्प्रबंधकृतं शाङ्र्गमूर्त्ति कलिघ्नमाश्रये।।

वृश्चिक के सूर्य के कृत्तिका नक्षत्र में नारायण के शारंगधनुष के अंश से प्रादुर्भूत चार सिद्धों के शिरमौर एवं छः शास्त्रों के रचयिता कलियन या तिरूमंगै आळवार की शरण लेता हूँ।

आपको कलकन्रि या कलियन नाम से भी जाना जाता है। तमिल नाडु के शिरकाळी या तिरूवाली तिरूनगरी के समीपस्थ तिरूकुरयलुर में आपका आविर्भाव हुआ था। आपके पिता चोल राजा के मुख्य सेनापति थे। आपके माता पिता नारायण के परम भक्त थे।आप पर इस संस्कार का अमिट प्रभाव पड़ा। आपके बचपन का नाम नीळन था। आपकी कुशाग्र बुद्धि एवं

साहस के पुरस्कार में तिरूमंगै नाडु के राजा ने आपको मुख्य सेनापति पर नियुक्त किया। आपने अपनी कवि हृदय का प्रदर्शन कर नार्कविप पेरूमाल कवि का हृदय जीत लिया जिससे आपको 'नार्कविप पेरूमाल' की उपाधि से विभूषित किया गया। बीते वर्षो में राजा ने आपको आलिन नाडु का राजा बनाकर आपकी राजधानी तिरूमंगै घोषित कर दी। चूंकि आप समय की सीमा में नहीं बंधे थे इसलिये आपका नाम 'कालन' एवं 'परकालन' भी लोकप्रिय हो गया। अपने जीवन को पूर्णतया वैष्णवता के प्रचार प्रसार में समर्पित करने के पूर्व आप 'तिरूमंगै मन्नन' के नाम से जाने जाते रहे।

कथा है कि सुमंगली नाम की अप्सरा की एक सहेली से कपिल मुनि नाराज हो गये और उस अप्सरा को पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दे दिया। परिणामस्वरूप उस अप्सरा का तिरूवाली के पास तिरूवेळळैकुळम के एक तालाब में कुमुद के फूल में जन्म हुआ।एक वैद्य ने उस नवजात शिशु का अपनी संतान की तरह पालन पोषण किया। यह बालिका बहुत ही सुन्दर एवं कुशाग्र बुद्धि की थीं। तिरूमंगै की नजर जब इस किशोरी पर पड़ी तो आपने उससे व्याह का प्रस्ताव रख दिया। किशोरी एक ही शर्त पर व्याह को तैयार हुई कि तिरूमंगै मन्नन एक वर्ष तक नित्य 1008 वैष्णवों को भोजन करायेंगे। तिरूमंगै ने शर्त स्वीकार कर ली तथा बाद में दोनों परिणय सूत्र में बंध गये।

1008 वैष्णवों को मंगैमदम नामक स्थान पर एक वर्षतक प्रतिदिन भोजन के लिये व्यव्स्था की गयी तथा भोजन का कार्यकम नियमित रूप से चलने लगा। धीरे धीरे इस कार्य के लिये परकालन के पास पर्याप्त धन की कमी होने लगी। प्रारंभ में आपने राजा के कर की राशि को इस कार्य में खर्च कर दिया। परिणामस्वरूप राजा ने कुपित होकर आपको बिना अन्न पानी के नरैयूर नाच्चियार कोईल में बंदी की तरह कैद में डाल दिया। नाच्चियार कोईल कुंभकोणम से 10 कि मी पर अवस्थित है। तीसरे दिन पेरूमाल ने आपकी प्रार्थना पर कांचीपुरम की वेगवती नदी में एक स्थान पर गड़ी धनराशि की सूचना दी। आपने इसे प्राप्त कर राजा के कारागार से अपने को मुक्त किया। पेरूमाल की सूचना पर नदी से धन की प्राप्ति पर राजा आपसे प्रभावित होकर सारा धन आपको वापस कर दिया।आप इस धन का सदुपयोग

वैष्णवों के भोजन में करने लगे और कमशः आपको अधिक धन की आवश्यकता हुई। तुदपरांत धन की टोह में आपने जंगल में धनी यात्रियों को लूटना शुरू कर दिया परंतु वैष्णव भोजन का कम चलता रहा। आपकी निष्ठा से प्रसन्न होकर एक दिन नारायण स्वयं लक्ष्मी के साथ बहुमूल्य आभूषण धारण कर एक नवविवाहत दंपति के रूप में यात्री बनकर जंगल के रास्ते से गुजरे। परकालन ने आप दोनों के सारे आभूषण छीन लिये तथा उसे एक गट्ठर में बांध चलने को तैयार हुए। वह गट्ठर इतना भारी हो गया कि परकालन के लिये उसे उठाना कठिन था। परकालन ने गुस्से में नारायण दंपति पर तलवार खींच ली कि किसी जादू टोना के कारण उनलोगों ने गट्ठर को भारी कर दिया। नारायण की कृपा कटाक्ष जैसे ही परकालन के आंखो पर पड़ी कि उसे ज्ञान हो गया और वह नारायण के चरणों पर गिर पड़ा। यह स्थान वेदराजपुरम के नाम से जाना जाता है जो आळवार संत के जन्मस्थान तिरूकुरैयालुर से **5** कि मी पर है। वेदराजपुरम के पास 'तिरूवाली तिरूनगरी' दो पृथक पृथक स्थान लगभग **3** कि मी की दूरी पर अवस्थित हैं और दोनों स्थल एक ही दिव्यदेश के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा संयुक्त नाम 'तिरूवाली तिरूनगरी' के नाम से विदित हैं। जब भगवान ने आळवार संत को जंगल में लूटे जाने के बाद अष्टाक्षर मंत्र से परिचय कराया था उस समय भगवान कल्याण तिरूकोळम यानी परिणय परिधान में थे। यहां कावेरी को अष्टाक्षर गंगा कहते हैं। इस मंत्र की विधिवत दीक्षा आळवार संत को 'तिरूनरैयूर' में दी गयी जो स्थान 'नाच्चियार कोइल' के नाम से विख्यात एक दिव्यदेश है। यहां पेरूमाल दो भुजा से शंख चक धारण कर आळवार संत को वैष्णव बनाने के लिये प्रसिद्ध हैं। कुमुदवल्ली से विवाह के पूर्व परकालन को 'तिरूमंगै मन्नन' कहा जाता था परंतु जब तिरूनरैयूर के भगवान ने आपको विधिवत अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा देकर वैष्णव बनाया तो आप 'परकाल स्वामी' या 'तिरूमंगै आळवार' के रूप में जाने गये और तत्पश्चात् ही आप कुमुदवल्ली से परिणय सूत्र में बंधे। नारायण से दीक्षित हो परकालन अब परकाल स्वामी हो गये।अष्टाक्षर मंत्र का परकाल स्वामी से बहुत ही तादाम्य संबंध है। ऐसी मान्यता है कि तिरूकण्णपुरम के भगवान सोवरीराजा ने आळवार संत को अष्टाक्षर मंत्र की

पूरी व्याख्या बतायी है।इसीलिये तिरूकण्णपुरम अष्टाक्षर मंत्र की सिद्धि के लिये विख्यात है।

विभिन्न दिव्यदेशों के अर्चा विग्रहों का दर्शन करते हुए आप उनकी प्रशस्ति में पद रचने लगे। सभी बारह आळवार में आपने अधिकतम दिव्य देशों की यात्रा कर उनका यशोगान किया है। आपकी **6** रचनायें दिव्यप्रबंधम के प्रमुख भाग हैं। नम्माळवार के बाद प्रभु की प्रशस्ति में सबसे ज्यादा पासुरों की रचना करने वाले आप द्वितीय आळवार हैं। द्वितीय हजारवाले दिव्यप्रबंधम में सभी तीन प्रबंध तिरूमंगै आळवार के द्वारा विरचित हैं। आपकी बाकी तीन रचनायें इयर्पा के अंश हैं। सभी छः प्रबंधों के पासुरों की कुल संख्या **1253** हैं जबकि नम्माळवार के सभी प्रबंधों में कुल **1296** पासुर हैं। इस तरह से पासुरों की संख्या के विचार से दिव्यप्रबंधम के योगदान में नम्माळवार प्रथम स्थान पर हैं तथा आप द्वितीय स्थान पर हैं। आपकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नवत है।

पेरिया तिरूमोळी ः यह चार हजारवाले पासुरों के दिव्यप्रबंधम का द्वितीय हजार का प्रबंध है। यह **11** शतकों में संकलित है तथा इसमें कुल **108** दशक हैं। इसमें पासुरों की कुल संख्या **1084** है। यह प्रबंध अधिकतम दिव्यदेश की प्रशस्ति गाता है। आळवार संत तमिलनाडु स्थित कुंभकोनम के 'कुडन्दै' तथा तंजावुर के 'तंजैमामणि' के अर्चाविग्रहों की बंदना करने के पश्चात अपनी यात्रा हिमालय के दिव्यदेशों से पारंभ करते हैं। कमशः आप आंध्रप्रदेश के दिव्य देश 'तिरूमला' तथा 'अहोविलम' का यशोगान करते तमिलनाडु तथा केरल के दिव्यदेशों का भ्रमण करते हैं।

तिरूक्कुरून्दाण्डगम ः इसमें पासुरों की कुल संख्या **20** है तथा यह भी दूसरे हजार वाले दिव्यप्रबंधम का एक प्रबंध है जिसका स्थान पेरिया तिरूमोळी के बाद है।

तिरूनेडुन्दाण्डगम ः यह दूसरे हजारवाले दिव्यप्रबंधम का तीसरा प्रबंध है तथा इसमें पासुरों की कुल संख्या **30** है। इस प्रबंध में आळवार संत ने अपने आप को नायकी के रूप में प्रभु से मिलन को चित्रित किया है। जैसे नम्माळवार की रचनाओं की नायकी 'परांकुश नायकी' नाम से जानी जाती है

आपके प्रबंधों की नायकी 'परकाल नायकी' के नाम से विख्यात है।

तिरूवेळुकूट्रिरूक्कै ः यह तीसरे हजार वाले दिव्यप्रबंधम 'इयर्पा' का एक प्रवंध है तथा यह मात्र एक पासुर से बना है।

शिरिय तिरूमडल ः यह तीसरे हजार वाले दिव्यप्रबंधम 'इयर्पा' का एक प्रबंध है तथा **77** पंक्तियों वाला मात्र एक पासुर से बना है। पासुर गिनती की दूसरी रीति के अनुसार इसमें **38** पासुर गिने जाते हैं। नम्माळवार की तरह तिरूमंगै आळवार ने प्रेमिका की प्रेम पराकाष्ठा को 'मडल' की प्रथा से चित्रित किया है।

पेरिय तिरूमडल ः यह तीसरे हजार वाले दिव्यप्रबंधम 'इयर्पा' का एक प्रवंध है तथा **148** पंक्तियों वाला मात्र एक पासुर से बना है। पासुर गिनती की दूसरी रीति के अनुसार इसमें **80** पासुर गिने जाते हैं। शिरिय तिरूमडल में 'शिरिय' शव्द का अर्थ है 'छोटा' तथा पेरिय तिरूमडल में 'पेरिय' का अर्थ है 'वड़ा'। इस प्रवंध में आळवार संत ने बड़े स्तर पर प्रेमिका की प्रेम पराकाष्ठा को 'मडल' की प्रथा से चित्रित किया है।

श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार तथा कई परकोटों का निर्माण आपकी अमर कृति है। इस महान कार्य को आप पास के दिव्यदेश ऊत्तमार कोईल में रहकर करते थे। कहते हैं कि पेरूमाल स्वयं एक साहूकार बनकर आपको तराजू से तौलकर पुस्तिका में लेखा दर्ज कर धन प्रदान कर रहे थे। एकवार जब आपने साहूकार से उसका विशेष परिचय जानना चाहा तो साहूकार वहां से कूचकर गया और आप उसका पीछा करने लगे। अंततः वह तराजू तथा लेखा पुस्तिका के साथ अदनूर दिव्यदेश के मन्दिर में प्रवेश कर गया। अदनूर के पेरूमाल आज भी सिरहाने के नीचे तराजू तथा बायें हाथ में लेखा पुस्तिका रखकर भुजंगशयनावस्था में दर्शन देते हैं।

इस घटना के वाद परकाल स्वामी को पुनः धन की कमी हो गयी। आपने अपने उद्यम से नागपत्तनम के पास बहुत सारा स्वर्ण प्राप्त किया तथा श्रीरंगम लौटने के रास्ते तिरूकन्नंगुडी के पास थकावट के कारण एक खेत में समस्त स्वर्ण को जमीन में गाड़कर पास के इमली वृक्ष के नीचे सो गये। वृक्ष को आपने स्वर्ण की रखवाली का भार दे दिया। जब किसान खेत में हल

जोतने आया तो वृक्ष ने बहुत सा पत्ता आपके ऊपर गिराकर आपको जगा दिया। खेत से गड़े हुए स्वर्ण को जब आप निकालने लगे तब किसान ने आपका विरोध किया। आपने किसान से प्रतिरोध में उस जमीन पर अपना स्वामित्व घोषित कर दिया तथा उसका कागजात लाकर दिखाने तक किसान को खेत जोतने से मना कर दिया। आपकी इस घटना को देखकर पास के एक कुंए से एक महिला ने आपको पानी लेने से मना कर दिया। आपने कुपित होकर कुंए को सूख जाने का शाप दे दिया। भूखे एवं प्यासे आपने वहां रात वितायी। आपकी सेवा भावना से प्रसन्न होकर पेरूमाल ने बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर आपको भोजन कराया। रात में ही आपने खेत से स्वर्ण निकाल लिया तथा श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर गये। चलते समय प्रसन्न होकर आपने वृक्ष को चिरंतन बने रहने का वर दिया जिसके परिणामस्वरूप आज भी तिरूकन्नंगुडी में वह जागता हुआ इमली वृक्ष तथा सूखा हुआ कुंआ वर्त मान है।

मार्गशीर्ष महीने के वैकुंठ एकादशी के उत्सव में आळवार तिरूनगरी से नम्माळवार का विग्रह शोभायात्रा में श्रीरंगम लाकर उत्सव मनाना आपकी देन है। उत्सव के उपरांत आळवार संत का विग्रह पुनः आळवार तिरूनगरी वापस ले जाने की परंपरा थी परंतु रामानुज स्वामी के काल से श्रीरंगम में ही नम्माळवार की सन्निधि बनाकर उत्सव विग्रह की स्थापना की गयी जो धनुर्मा स तथा वैकुंठ एकादशी के उत्सव में सम्मिलित होते हैं। नांगुनेरी यानी तोताद्री के पास तिरूकुरूंगुडी में आपका मोक्ष हुआ तथा मोक्ष के पूर्व आपने अपनी एक स्वर्ण प्रतिमा को हृदय से लगा कर उसमें अपनी संपूर्ण शक्ति का समावेश कर दिया था। बाद में उस प्रतिमा को तिरूनांगुर क्षेत्र के तिरूवाली के पास अवस्थित तिरूनगरी में लाकर स्थापित कर दिया गया है। आपने जिन **85** दिव्यदेशों की प्रशस्ति गायी गयी है वे हैं ः

1।क्षीरसमुद ।**2**।वैकुण्ठ। **3**।जोशीमठ तिरूप्पिरूती ।**4**।बदरी।**5**।तंजै मामणि ।**6**।शिंगवेल कुन्डरम अहोविलम। **7**।अयोध्या। **8**।मथुरा। **9**।गोकुल वृन्दावन आय्यपादि। **10**।द्वारका दुवरापदि। **11**।शालग्राम। **12**।वेंकटम। **13**।तिरूकोट्टियूर या तिरूगोष्ठीयूर ।**14**। श्रीरंगम्।**15**। तेन तिरूप्पेर। **16**।वेल्लारैयातिरूवल्लारै। **17**।तिरूवल्लूर ।**18**।कुडन्दै। **19**।तिरूमेय्यम।

20।तिरूकण्णगुंडि । **21**। तिरू प्पावला वन्नम कांची ।**22**।मलीरूमसोलै ।**23** तिरूवल्लिक्केणि एवं मयिलै ।**24**।नरैयूर या तिरूनरैयूर या नाच्चियार कोइल ।**25**। उरैयूर या तिरूकोळी ।**26**। तिरूकूडलमदुरै।**27**। तिरूक्कोइलूर ।**28**। तिरूनीर्मलै ।**29**। तिरूकडलमल्लै।**30**। तिरूनिन्रवूर।**31**। तिरूविडवन्दै।**32**। पुतकुली या तिरूपुतकुळी।**33**। परमेच्चुर विण्णगरम कांचीपुरम श्रीवैकुंठ ।**34**। अष्टभुज कांचीपुरम।**35**। पडकम या पांडव दूत कांची।**36**। उरूगम उलगलंदा त्रिविक्रम कांचीपुरम़।**37**। नीरगम कांचीपुरम।**38**। कारगम कांचीपुरम।**39**। कारवण्णम कांचीपुरम़ ।**40**।नीलातिंगल तुण्डम कांचीपुरम़ ।**41**।कल्वानूर कांचीपुरम़ ।**42**।कांची यानी वरदराज ।**43**।वेग्का यथोक्तकारी कांचीपुरम ।**44**। तिरूतन्का कांची ।**45**।कांची वेलुक्कै ।**46**।तिरूवयिन्दपुरम ।**47**।तिल्लै चित्रकूट या चिदंबरम ।**48**।कळि शिरामा विण्णगर ।**49**।वयल आलि तिरूवाली ।**50**।नांगुर मणिमाड क्कोईल ।**51**।नांगुर वैकुण्ठ विण्णगरम ।**52**।नांगुर अरिमेय विण्णगरम ।**53**।नांगुर तिरूत्तेवनार तोगै ।**54**।नांगुर वण पुरूषोत्तम ।**55**।नांगुर शेमपोनशेयी कोयिल या पेरू अरूळाळन ।**56**।नांगुर तिरूतेत्री अम्बलम ।**57**।नांगुर तिरूमणिक कूडम ।**58**।नांगुरकावलमपाडि ।**59**।नांगुर तिरूवेल्लकुलम ।**60**।नांगुरतिरूपार्त्तनपल्लि ।**61**।इंदलूर ।**62**। तिरूवेल्लियंगुडि ।**63**। तिरूप्पुळळम्बुदङ्गुडि ।**64**।तिरूक्कुडलूर या अधितुराइ पेरूमाल ।**65**। तिरूक्कुरूंगुडी ।**66**। तिरूत्तनकल ।**67**। करंबनूर। **68**। तिरूवन्दिपुरविण्णगरम। **69**। तिरूच्चेरै। **70**। तिरूकण्णमंगै। **71**। तिरूच्चिरूपुलियूर। **72**। तिरूकन्नपुरम **73**। ओप्पलीअप्पनतिरूविण्णगर ।**74**। तिरूनागै। **75**।तिरूप्पुल्लाणि ।**76**।कंडियूर ।**77**।कडिगै। **78**।तल्लैच्चांगु नाणमदियम ।**79**। तिरू अलंदूर ।**80**। अदनूर ।**81**। तिरूमूळिकुळम।**82**। तिरूवल्लवाळ। **83**। तिरूप्पुलियूरकुट्टनाट्टु। **84**।नैमिषारण्य ।**85**।तिरूमोगूर ।

108 दिव्यदेश ः

दिव्यदेश की गिनती का कोई निश्चित कमांक नहीं है परन्तु एक मान्यता से क्षीराब्धि एवं वैकुण्ठ को अंतिम दो में रखा जाता है। सभी दिव्यदेश के अर्चा विग्रह का मंगलाशासन करने के बाद भक्त निश्चित रूप से क्षीराब्धिनाथ का दर्शन करते हुए मुक्तात्मा होकर परमपद वैकुण्ठ का स्थायी निवासी हो जाता है। परन्तु भौगोलिक स्थिति से समझने की सुविधा को ध्यान में रखकर यहाँ इनका संग्रह निम्नवत किया गया है जिसमें दोनों अदृश्य एवं अलौकिक दिव्यदेश आरंभ में रखे गये हैं।

अदृश्य जगत में **2**ः **1**। क्षीराब्धि
2। वैकुण्ठ

नेपाल में **1** ः मुक्तिनारायण या शालग्राम
उत्तराखंड में **3** ः **1**। जोशीमठ
2। बदरीनारायण
3। देवप्रयाग या तिरूकण्डम
उत्तरप्रदेश में **4** ः **1**। अयोध्या या तिरूअयोधि या तिरूअयोत्ति नगर
2। नैमिषारण्य
3।तिरूवडमदुरै या मथुरा
4।आय्यपादी या वृन्दावन तथा गोकुल एवं गोवर्द्धन
गुजरात में **1** ः द्वारिका या दिवरापदी
आंध्रप्रदेश में **2** ः **1**। तिरूमला या तिरूवेंकटम
2। अहोविलम
तमिल नाडु में **82** ः
1। तिरूअरंगम यानी दिव्य देश श्रीरंगम
2। तिरूकूडल दिव्यदेश मदुरै
3। तिरूकोट्टियूर या तिरूगोष्ठीयूर।
4। तिरूक्कुरूगुंडी या वानमामलै तोताद्री के पास
5।तिरूवल्लारै
6।तिरूमालैरून्सओलै यानी आळगार कोईल मदुरै से **19** कि मी
7।श्रीविल्लीपुत्तुर
8।तिरूप्पेर
9।कुडन्दै या सारंगपाणी कुंभकोनम
10। तिरूकण्णपुरम
11। तिल्लैनगर चित्रकूट या चिदंबरम
12। तिरूकाच्ची या हस्तिगिरी या वरदराज पेरूमाल कोइल कांचीपुरम
13। वेग्का या यथोक्तारी भगवान कांचीपुरम
14। अष्टभुज कांचीपुरम
15। तिरूतन्का या दीप प्रकाश या विलक्कुओली कांचीपुरम
16। वेलुक्कै कांचीपुरम

17। 'पेरागम एवं उरगम' या उलगनंदा कांचीपुरम
18। नीरगम कांचीपुरम
19। कारगम कांचीपुरम
20। कारवन्नम कांचीपुरम
21। श्रीवैकुंठ या परमेच्चर विण्णगरम कांचीपुरम
22। पडकम या पांडवदूत कांचीपुरम
23। नीलातिंगल तुंडतान दिव्य देश कांचीपुरम
24। कल्वानूर कांचीपुरम
25। तिरूपावल वण्णा कांचीपुरम
26। तिरूपुतकुळी कांचीपुरम
27। तंजै मामणि तंजावूर
28। तिरूइडवन्दै महावलीपुरम से 27 कि मी चेन्नै की ओर
29। तिरूवल्लूर अरक्कोणम के पास एक पृथक रेलवे स्टेशन
30। तिरूवल्लीकेणी
31। तिरूनीरमलै
32। तिरूकडमल्लै महाबलीपुरम
33। तिरूनिन्रवूर
34। तिरूक्कोवलूर
35। तिरूवन्दी पुरम कडलोर के पास
36। काळी शिरामा विण्णगर शिरकाळी रेलवे स्टेशन के पास
37। तिरूवाली
38। तिरूमेय्यम
39। तिरूनांगुर मणिमाड कोईल
40। वैकुंठ विण्णगरम
41। नांगुर अरिमेय विण्णगरम
42। तिरूत्तेवनार तोगै तिरूनांगुर क्षेत्र
43। तिरूवण पुरूषोत्तम तिरूनांगुर क्षेत्र

44। तिरूनांगुर शेमपोनशेयी कोईल तिरूनांगुर क्षेत्र
45। तिरूतेत्री अंबळम तिरूनांगुर क्षेत्र
46। तिरूनांगुर तिरूमणिक्कूडम
47। तिरूनांगुर कावलम पाडी
48। तिरूवेळळु कुळम तिरूनांगुर क्षेत्र
49। पार्त्तन पल्ली तिरूनांगुर क्षेत्र
50। तिरूइंदुलूर
51। तिरूवेळिळगुंडि
52। तिरूप्पुळळम्बुदङ्गुडि
53। तिरू कूडलूर या 'अदुतुरै पेरूमाल कोईल'
54। तिरूतगंल या तिरूतन्कल श्रीविल्लीपुत्तूर के पास एक रेलव स्टेशन
55। करंबनूर श्रीरंगम के पास 'उत्तमार कोईल' एक रेलवे स्टेशन
56। तिरूनन्दीपुर विण्णगरम
57। तिरूवण्णगर ओप्पिलिअप्पन कुंभकोणम के पास
58। तिरूनरैयूर या नाच्चियार कोइल कुंभकोणम के पास
59। तिरूच्चैरै या तेनचेरै
60। तिरूवलुन्दूर
61। कण्णमंगै
62। तिरूच्चिरूपुलियूर या शिरूपुलियूर
63। शोलंगुर दिव्यदेश या तक्कान कडिगै
64। तलैच्चंग नाण्मदियम या तलैशंगुकाडु
65। तिरूकण्णंगुडी
66। तिरूनागै या नागपट्टिनम
67। उरैयूर त्रिचिरापल्ली नाच्चियार कोईल
68। तिरूपुल्लानी
69। तिरूकंडियूर
70। तिरूअनविल

71। तिरूकपिस्थलम
72। तिरूअदनूर
73। तिरूकुरूगुर या आळवार तिरूनगरी
74। शिरीवरमंगल नगर वानमामलै या तोताद्री या नांगुनेरी
75। तिरूवन वण्डूर आळवार तिरूनगरी के पास
76। तुलैविल्ली मंगलम आळवार तिरूनगरी के पास
77। तिरूक्कोलूर आळवार तिरूनगरी के पास
78। तिरूप्पेरेयिल आळवार तिरूनगरी के पास
79। मायक्कूत्तन आळवार तिरूनगरी के पास
80। तिरूपुलिंगुडी आळवार तिरूनगरी के पास
81। वरगुणमंगै आळवार तिरूनगरी के पास
82। श्रीवैकुंठम आळवार तिरूनगरी के पास

केरल में 13 दिव्यदेश ः
1। तिरूनावाय
2। वित्तुवक्कोड्डु
3। तिरूवल्लवाळ कोट्टायम
4। तिरूवारन्विल्लै या अरनमूला
5।परिशरम या तिरूवनपरिशरन
6।तिरूच्वेंगुनुर
7। तिरूक्कडित्तानम
8। कुट्टनाड्डु तिरूप्पुलियूर
9। तिरूक्काटकरै कोच्ची के पास
10। तिरूमोगूर
11। तिरूवनन्दपुर नगर

12। तिरूवत्तारू
13। तिरूमूलिक्कळम

दिव्य प्रबन्धम ः

प्रबंध 1 पेरियाळवार तिरूमोळी । श्रीविष्णुचित्त स्वामी कृत
प्रबंध 2 तिरूप्पावै । आंडाल कृत
प्रबंध 3 नाच्चियार तिरूमोळी । आंडाल कृत
प्रबंध 4 पेरूमाल तिरूमोळी ।श्रीकुलशेखर आळवार कृत
प्रबंध 5 तिरूच्चन्द विरूत्तम । श्रीभक्तिसार स्वामी कृत
प्रबंध 6 तिरूमालै । श्रीभक्तांघ्रिरेणु स्वामी कृत
प्रबंध 7 तिरूप्पळिळयळुच्चि । श्रीभक्तांघ्रिरेणु स्वामी कृत
प्रबंध 8 अमलनादिपरान । श्रीमुनिवाहन स्वामी कृत
प्रबंध 9 कण्णिनुण शिरूत्ताम्बु । श्रीमधुरकवि आळवार
प्रबंध 10 पेरिया तिरूमोळी । श्रीपरकाल स्वामी कृत
प्रबंध 11 तिरूक्कुरून्दाण्डगम्।श्रीपरकाल स्वामी कृत
प्रबंध 12 तिरूनेड्डुन्दाण्डगम् । श्रीपरकाल स्वामी कृत
प्रबंध 13 मुदल् तिरूवन्दादि । पोयगै आळवार यानी श्रीसरोयोगी कृत
प्रबंध 14 इरान्दाम तिरूवन्दादि। भूतद आळवार कृत
प्रबंध 15 मूनराम तिरूवन्दादि । पेय आळवार यानी श्रीमहयोगी कृत
प्रबंध 16 नान्मुगम तिरूवन्दादि। श्रीभक्तिसार स्वामी कृत
प्रबंध 17 तिरूविरूत्तम ।नम्माळवार यानी श्रीशठकोप स्वामी कृत
प्रबंध 18 तिरूवाशिरियम । नम्माळवार यानी श्रीशठकोप स्वामी कृत
प्रबंध 19 पेरिय तिरूवन्दादि । नम्माळवार यानी श्रीशठकोप स्वामी कृत
प्रबंध 20 तिरूवेळुकूट्रिरूक्कै। श्रीपरकाल स्वामी कृत
प्रबंध 21 शेरिय तिरूमडल । तिरूमंगै आळवार यानी श्रीपरकाल स्वामी कृत

प्रबंध **22** पेरियतिरूमडल।श्रीपरकाल स्वामी कृत
प्रबंध **23**रामानुज नूट्रन्दादि । तिरूवरंग अमुदनार कृत
प्रबंध **24** तिरूवायमोळी। नम्माळवार यानी श्रीशठकोप स्वामी कृत

टिप्पणी ः

1। उपर्युक्त प्रवंधों में कुल **4000** पद या पासुर हैं इसलिये इसे नालायिर दिव्यप्रवंध कहते हैं।

2। इसे **1000** के हिसाब से चार भाग में बॉटा गया है।

3। पहले **1000** में उपर्युक्त **1** से **9** तक के प्रबंध आते हैं।

4। दूसरे **1000** में **10** से **12** तक के प्रबंध आते हैं।

5। तीसरे **1000** में **13** से **23** तक के प्रबंध आते हैं। इसे 'इर्यपा' भी कहते हैं। जबकि बाकी तीन भाग को समेकित रूप से यानी पहला एक हजार दूसरा एक हजार एवं चौथा एक हजार को 'इसप्पा' कहते हैं।

6। चौथे **1000** में मात्र **24** वॉ प्रवंध आता है।

7।पवंध **23** आळवार संत की रचना नहीं है परन्तु वर्तमान परम्परा में श्रीरामानुज स्वामी की वन्दना को भी दिव्यप्रवन्ध का एक अंग माना गया है। तिरूवायमोळी को 'अंगी' कहते हैं तथा अन्य सभी प्रवन्ध 'अंग' हैं इसीलिये तिरूवायमोळी को अंतिम प्रवन्ध के रूप में रखा जाता है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

चौथा अध्याय ः पूर्वाचार्य चरित

मंगलाशासनपरैः मदाचार्यपुरोगमैः।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैस्सतकृतायास्तु मंगलम् ।।

4।1 श्रीनाथमुनि

ज्येष्ठमासे ह्यनुराधाजातं नाथमुनिं श्रये।
यः श्रीशठारेः श्रुतवान् प्रबंधमखिलं गुरोः ।।
ज्येष्ठे अनुराधासम्भूतं वीरनारायणे पुरे।
गजवक्त्रांशमाचार्यं आद्यं नाथमुनिं भजे ।।

ज्येष्ठ मास मिथुन के सूर्य में अनुराधा नक्षत्र में वीरनारायण पुर में श्रीविष्वकसेन के दरबारी रूप में गजवदन के अंश से प्रादुर्भूत तथा श्री शठकोप स्वामी यानी नम्माळवार से संपूर्ण दिव्यप्रबंध सुनने वाले श्रीनाथमुनि की वंदना करता हूँ। श्रीनाथमुनि का जीवनकाल ई सन् **824** से **924** तक दसवीं शताब्दी का है। तमिलनाडु के चिदम्बरम से **25** कि मी दक्षिण पश्चिम में अवस्थित 'कट्टुमन्नारकोई ल' जिसे पहले 'वीरनायणपुर' कहा जाता था श्रीनाथमुनि का जन्मस्थल है। इनका प्रारम्भिक नाम श्रीरंगनाथ मुनि था जो बाद में श्रीनाथ मुनि कहे जाने लगा।

श्रीनाथमुनि एक सिद्धयोगी परमवैष्णव थे। गान एवं नृत्यविद्या के एक कुशल ज्ञाता होने के कारण आपने नम्माळवार की आराधना से लुप्त हुए 'दिव्यप्रवन्धम' को प्राप्त कर इसे लय संगीत एवं अभिनय के साथ प्रस्तुत करने की परम्परा चलायी। आपके यशस्वी प्रपौत्र श्रीयामुनाचार्य जी श्रीवैष्णवों के बीच 'आलवन्दार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीनाथमुनि के पुत्र का युवावस्था में ही निधन हो गया था। इस दुःख से आपने वैराग्य ले लिया और आप मुनि के नाम से विख्यात हुए। 'न्यायतत्व' एवं 'योगरहस्य' श्रीनाथमुनि की अनमोल पुस्तक श्रीवैष्णवों के बीच बहुत ही लोकप्रिय है।

4।2 श्रीयामुनाचार्य

आषाढ़े चोत्तराषाढ़ासम्भूतं तत्र वै पुरे।

सिंहासनांशं विख्यातं श्रीयामुनमुनिं भजे।।

कर्क के सूर्य में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में नारायण के सिंहासन के अंश से वीरनारायणपुर में प्रादुर्भूत श्रीयामुन मुनि की वन्दना करता हूँ। आपके हृदय सिंहासन में सर्वदा नारायण विराजमान रहते थे।

इनका जीवन काल ई सन् **916** से **1041** तक का माना जाता है। जब श्रीनाथमुनि अपने समस्त परिवार पुत्र एवं पुत्रवधू के साथ उत्तर भारत में मथुरा वृन्दावन की तीर्थ यात्रा पर थे तब श्रीयामुनाचार्य माता के गर्भ में आये थे। अतः तमिलनाडु लौटने पर जब बालक का जन्म हुआ तब यमुना नदी की स्मृति में ही इनका नाम यामुन रखा गया। बचपन से ही यामुन बड़े कुशाग्र बुद्धि के थे। जब इनकी अवस्था **12** वर्ष की थी तो इन्होंने पाण्डयदेश के राजा के राजपंडित 'विद्वज्जन कोलाहल' को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। शास्त्रार्थ के पहले रानी बालक को देखकर प्रभावित हो गयीं एवं रानी ने बालक यामुन का पक्ष लिया था तो राजा ने राजपंडित का। राजा रानी में निष्कर्ष के पूर्व ही शर्त लग गयी एवं राजा ने कहा कि अगर यह बालक जीत गया तो मैं इसे आधा राज दे दूँगा।

शास्त्रार्थ में राजपंडित के सभी प्रश्नों का उत्तर बालक यामुन कुशलता पूर्वक देते चले गये। राजपंडित ने बालक यामुन को प्रश्न पूछने को कहा तब बालक यामुन ने कहा कि वे तीन वक्तव्य देंगे और राजपंडित को उसका खंडन करना होगा। **1**। राजपंडित की माता वंध्या नहीं थी। **2**। राजा धर्म शील हैं। **3**। रानी सावित्री की तरह शतिसाध्वी हैं। राजपंडित का मुँह बन्द हो गया क्योंकि उसमें राजा एवं रानी पर लांछना लगाने की बात थी। राजपंडित ने बालक यामुन को स्वयं इसका खंडन करने को कहा।

बालक यामुन ने मनुस्मृति का उदाहरण देकर पहले प्रश्न का निष्पादन यह कहकर किया कि एक पुत्रवाली माँ वन्ध्या के समान होती हैं।

दूसरे प्रश्न में भी मनुस्मृति का उदाहरण देकर बताया कि राजा प्रजा से जब कर लेता है तो प्रजा के पुण्य पाप का हिस्सेदार राजा को भी होना

पड़ता है। अतः प्रजा के पाप से राजा भी पापात्मा हो जाते हैं।

तीसरे का खंडन भी मनुस्मृति से किया। राजा इन्द्र वरूण अग्नि धर्म आदि देवताओं के प्रतिनिधि माने जाते हैं। अतः रानी को उन देवताओं के पतित्व का सहभागी होना पड़ेगा।

बालक यामुन की तर्ककुशलता से सभी 'आलवंदार' 'आलवंदार' कह कर बालक की प्रशंसा करने लगे। राजा ने भी यामुन को आधाराज दे कर उसे राजा बना दिया।

श्रीनाथमुनि चाहते थे कि बालक यामुन श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार करे। इसलिये उन्होंने परमपद होने के पूर्व अपने शिष्य राममिश्र या मनक्कल नंबी को यह जिम्मेदारी दे दी थी कि यामुन को श्रीवैष्णव धर्म में प्रवृत करे। राममिश्र राजा यामुन से राजकाज की व्यस्तता के कारण मिल नहीं पाते थे। अतः उन्होंने एक स्वादिष्ट साग 'तुडवलई' राजा के रसोई में नित्य दे आते थे। एक दिन वे साग लेकर नहीं गये। राजा यामुन को स्वादिष्ट साग की कमी खटकी और उन्होंने रसोइये से साग न होने का कारण पूछा। जब सब बात राजा को बतायी गयी तब उन्होंने राममिश्र के पुनः आगमन पर उनसे मिलाने को कहा। जब दूसरे दिन राममिश्र साग लेकर आये तो उन्हें राजा से मिलाया गया। राममिश्र ने राजा से एकांत में वार्ता करनी चाही। जब दोनों एकांत में मिले तो राममिश्र ने राजा को उनके पितामह श्रीनाथमुनि के द्वारा सुपुर्त की गयी थाती की बात बताई जो पाँच फनवाले शेषनाग की सुरक्षा में है तथा सात परकोटे की भीतर अवस्थित है। यह भी कहा कि उसे प्राप्त करने के लिये राजा को राममिश्र के साथ अकेले वहाँ जाना होगा। राजा अकेले राममिश्र के साथ जंगल के रास्ते चले। रास्ते में राममिश्र ने गीता का सस्वर पाठ कर राजा को मोहित कर लिया। उसके बाद गीता का मर्म समझाया तथा राजा को श्रीरंगम में सातघेरे को पारकरते हुए शेषनाग की शय्या पर लेटे रंगनाथ के भगवान के समक्ष लाकर खड़ा कर दिया। भगवान रंगनाथ के सौंदर्य से राजा मुग्ध हो गये। राममिश्र ने इसे ही श्रीनाथमुनि की थाती बतायी। राजा यामुन राजपाट छोड़कर श्रीरंगम में ही बस गये एवं शीघ्र मंदिर के प्रधान के रूप में माने जाने लगे। राजा यामुन से

शीघ्र ही यामुनाचार्य हो गये। आपकी कृति 'गीतार्थ संग्रह' 'चतुःश्लोकी' एवं 'स्तोत्र रत्न' श्रीवैष्णवों की अमूल्य निधि है। इसके अतिरिक्त आपकी रचनाये 'आगम प्रामाण्य' तथा 'सिद्धि त्रय' विशिष्टाद्वैत की नींव हैं। 'पुरूष निर्णय' नामक इनकी पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है। वयोवृद्ध हो जाने के कारण 'वेदान्त सूत्र' की व्याख्या लिखने का आपका मनोरथ शेष रह गया था जिसे बाद में श्रीरामानुज स्वामी ने 'श्रीभाष्य' की रचना कर पूरा किया।

4।3 श्री रामानुजाचार्य

मेषार्द्रासंभवं विष्णोर्दर्शनस्थापनोत्सुकम्।
तुंडीरमंडले शेषमूर्तिं रामानुजं भजे।।

मेष के सूर्य में आर्द्रा नक्षत्र में चोल राज्य में प्रादुर्भूत श्रीमन्नारायण तत्व दर्शन के प्रसारक अनन्तावतार श्रीरामानुज स्वामी की पूजा वन्दना करता हूँ।

प्रारम्भिक जीवन

तमिलनाडु में चेन्नै से दक्षिण पश्चिम दिशा में कांचीपुरम के रास्ते करीब मध्य में चेन्नै से 35 कि मी पर श्रीपेरम्बुदुर स्थान है। यहाँ श्रीकेशवाचार्य एवं श्रीमती कान्तिमती देवी धार्मिक दम्पति का निवास था। दम्पति ने संतान में विलम्ब होते देख चेन्नै के ट्रिप्लीकेन या तिरूवल्लीकेणी के पार्थसारथी भगवान की पूजा अर्चना की और फलस्वरूप 1017 ई के चैत महीने में आर्द्रा नक्षत्र में कर्क लग्न में गुरूवार के दिन श्रीरामानुज का जन्म हुआ। वचपन से ही ये कुशाग्र बुद्धि के थे। 1024 ई में उपनयन संस्कार हुआ तथा 1025 ई में बड़ी बहन भूमि देवी का विवाह संपन्न हुआ। 1028 ई में बड़ी बहन के पुत्र 'मुदली आन्डान' यानी 'दाशरथी' का जन्म हुआ। 1028 ई में ही छोटी बहन कमला का विवाह हुआ। सोलह वर्ष की अवस्था में यानी ई सन् 1033 में रक्षाम्वा या तंजम्माल से इनका विवाह करने के वाद 1035 ई में इनके पिता का देहावसान हो गया। श्रीरामानुज अपनी मॉं के साथ कांचीपुरम आकर रहने लगे।

गुरू यादवप्रकाश

कांचीपुरम में श्रीरामानुज ने पंडित यादव प्रकाश से 1035 ई से

अपनी आगे की शिक्षा का शुभारंभ किया। एक दिन यादव प्रकाश ने छान्दोग्य उपनिषद के एक मंत्र **"तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीक मेवमक्षिणी"** के '**कप्यासं**' शब्द का अर्थ 'बन्दर का अधोभाग' करते हुए बताया कि 'स्वर्णिम पुरूष नारायण के कमल के समान नेत्र बन्दर के अधोभाग जैसे लाल हैं'। श्रीरामानुज नारायण के सौन्दर्य वर्णन में इस तरह का अमर्यादित तुलना सुनकर रो पड़े। यादव प्रकाश ने जब इन्हें इसका अर्थ करने को कहा तो इन्होंने बताया '**कं जलं पिबतीति कपिः सूर्यः**' और अस् धातु का अर्थ 'विकसित' करने को बताया यानी 'सूर्यकिरणों से प्रस्फुटित कमल के समान लाल हैं स्वर्णिम पुरूष नारायण के दोनों नेत्र'। यादव प्रकाश को श्रीरामानुज की बुद्धि कुशाग्रता से ईर्ष्या हाने लगी। वह इनका बध कर देने का षड़यंत्र करने लगा। विद्यार्थियों के दल में श्रीरामानुज को साथ लेकर 1038 ई में काशी की यात्रा पर मकरस्नान के लिये निकल पड़ा। रास्ते में सुनसान जंगल में श्रीरामानुज की हत्या की योजना बनाने लगा। श्रीरामानुज के मौसेरे भाई गाविन्द भी विद्यार्थियों के दल में थे। गोविन्द ने श्रीरामानुज को सचेत कर दिया और श्रीरामानुज दल छोड़कर भाग निकले। बहुत खोजने पर जब श्रीरामानुज नहीं मिले तो यादवप्रकाश ने समझा कि किसी हिंसक जन्तु ने श्रीरामानुज का अन्त कर दिया। रास्ते के घनघोर जंगल में श्रीवरदराज भगवान व्याध दम्पति के रूप में श्री रामानुज को मार्गदर्शन करते हुए कांचीपुरम के पास सालकूप तक ले आये और यहाँ श्रीरामानुज के हाथ से जल पीकर अर्न्तध्यान हो गये।

जब यादवप्रकाश यात्रा से लौटे तो श्रीरामानुज को देखकर दिखावटी प्रेम दिखाते हुए पुनः श्रीरामानुज को अपने पाठशाला में बुलाये। श्रीरामानुज उनके पास शिक्षा के लिये 1041 ई तक रहे। इसीबीच श्रीरंगम के वयोवृद्ध श्रीयामुनाचार्य वरदराज भगवान के दर्शन के लिये कांचीपुरम 1039 ई के वैशाख में आये थे। श्रीरामानुज को दूर से देखकर वे इनके प्रति आकर्षित हुए और यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि इसी नवयुवक ने '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'

की भक्तिपूर्ण व्याख्या लिखी है। उन्होंने वरदराज भगवान से श्रीरामानुज को अपने श्रीवैष्णव मत में लाने के लिये प्रार्थना की। इसका सजीव उल्लेख श्रीअनन्ताचार्य कृत प्रपन्नामृतम् में इस तरह मिलता है।

यस्यप्रसादकलया बधिरः श्रृणोति
पंगु प्रधावति जवेन च वक्ति मूकः।
अन्धः प्रपश्यति सुतं लभ्यते च
वन्ध्या तं देवमेव वरदं शरणं गतोऽस्मि।
लक्ष्मीश पुण्डरीकाक्ष कृपां रामानुजे तव
निधाय स्वमते नाथ प्रविष्टुं कर्तुमर्हसि।

जिनकी अल्प कृपा मात्र से बहरा सुन सकता है लंगड़ा दौड़ सकता है गूँगा बोल सकता है अन्धा देख सकता है तथा वन्ध्या पुत्रवती हो सकती है। हे वरदराज आपकी शरण लेता हूँ। हे लक्ष्मीनाथ कमलनयनकृपा करके रामानुज को अपने मत में प्रवेश कराइये।

एकबार कांचीपुरम के राजकुमारी पिशाच के प्रभाव में आगयी थी। यादवप्रकाश को पिशाच से निवारण हेतु आमंत्रित किया गया। पिशाच पर यादवप्रकाश के मंत्र तंत्र का कोई प्रभाव नहीं हुआ। पिशाच ने श्रीरामानुज को बुलवाया एवं उनके चरणारविन्द को राजकुमारीके शिर पर रखने को कहा। राजकुमारी पिशाच से मुक्त हो गयी एवं पिशाच की भी योनी बदल गयी। इस घटना से यादवप्रकाश की प्रतिष्ठा में सार्वजनिक स्तर पर कमी आयी एवं श्रीरामानुज की ख्याति बढ़ने लगी। इससे यादवप्रकाश के मन में श्रीरामानुज के प्रति ईर्प्या बढ़ता ही गया।

एक बार छान्दोग्य उपनिषद के सूत्र '**सर्व खल्विदं ब्रह्म**' एवं कठोपनिषद के सूत्र **'नेह नानास्ति किंचन'** पर श्रीरामानुज ने यादवप्रकाश की अद्वैती व्याख्या को नकारते हुए अपना मत प्रस्तुत किया। समस्त जगत ब्रह्ममय है। मछली जल से ही उत्पन्न होकर जल में जीवित रहते हुए जल में ही मर जाती है। मछली को जलमय कहा जा सकता है परन्तु मछली कभी जल नहीं हो सकती। उसी तरह समस्त जगत माला के दाना की तरह ब्रह्मरूपी सूत में पिरोया हुआ है परंतु जगत ब्रह्म नहीं है। **'मयि सर्वमिदंप्रोतं**

सूत्रे मणिगणाइव' श्रीमद्भगवतगीता अ।7।7। इसपर यादवप्रकाश गुस्से में आ गये एवं श्री रामानुज को ई सन् 1941 में अपने यहाँ आने से मनाकर दिया। इस दिन से श्रीरामानुज घर पर ही अध्ययन करने लगे तथा वरदराज भगवान के कैंकर्य में अपना समय देने लगे।

श्रीयामुनाचार्य का देहदर्शन एवं तीन प्रतिज्ञा

श्रीरंगम पहुँचने के बाद स्वामी श्रीयामुनाचार्य का स्वास्थ्य गिरने लगा। सबों की सहमति से श्रीरामानुज को बुलाने के लिये श्रीमहापूर्ण स्वामी को 1042 ई में कांची भेजा गया। श्रीरामानुज को कांची में देखकर श्रीमहापूर्ण मुग्ध हो गये तथा स्वामी श्रीयामुनाचार्य के 'स्तोत्र रत्न' से कुछ पदों को धीरे धीरे गाने लगे।

"स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वं नारायण
त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः ब्रह्माशिवश्शतमखः
परमस्वाराडिति एतेऽपि यस्य महिमार्णवविपुषस्ते।"
"वशीवदान्यो गुणवानृजुश्शुचिः ......
समस्त कल्याण गुणामृतोदधि।"
"नमो नमो वाङ्गमनसातिभूमये ......
नमो नमो दयैक अनन्तसिन्धवे।"

इन पदों को सुनने के बाद श्रीरामानुज ने महापूर्ण को विनम्र प्रणाम करते हुए इनके रचयिता के बारे में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। श्रीमहापूर्ण स्वामी ने स्वामी श्रीयामुनाचर्य के बारे में बताते हुए यह निवेदन किया कि वे आजकल श्रीरंगम में अस्वस्थ हैं तथा आपसे मिलना चाहते हैं। श्रीरामानुज शीघ्र उनके दर्शनार्थ श्रीमहापूर्ण स्वामी के साथ श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर गये। श्रीरंगम पहुँचकर कावेरी के किनारे बहुत भीड़ देखकर दोनों देखने गये तो यह जानकर निष्प्राण हो गये कि जिनके दशनार्थ वे लोग आये थे उनका देहावसान हो गया है। यद्यपि स्वामी श्रीयामुनाचार्य अब जीवित नहीं रहे परन्तु श्रीरामानुज देह दर्शन करते हुए उनके साथ अन्तःसंवाद में निमग्न हो गये। इसीबीच श्रीरामानुज की दृष्टि उनकी तीन बंधी हुई अंगुलियों पर

गयीं। इस पर श्रीरामानुज ने तीन प्रतिज्ञा की घोषणा की एवं तीनो अंगुलियाँ एक एक कर खुलती गयीं। इस सन्दर्भ में अनन्ताचार्य कृत प्रपन्नामृतम का **9। 68** से **9।76** तक का उद्धहरण द्रष्टव्य है।

अहं विष्णुमते स्थित्वा जनानज्ञानमोहितान्।
पंचसंस्कार संपन्नान् द्राविड़ाम्नाय पारगन्।
प्रपत्तिधर्मनिरतान् कृत्वा रक्षामि सर्वदा।

प्रतिज्ञा **1**ः मैं विष्णुमत में समाश्रित होकर अन्य अज्ञानी जनों को श्रीवैष्णव पंचसंस्कार से युक्त कर द्राविड़ वेद यानी 'दिव्यप्रबन्धम' में निपुण बनाते हुए उन्हें शरणागति धर्म में लगाकर उनकी रक्षा करूँगा।

संगृह्य निखिलानर्थान् तत्वज्ञानपरं शुभम्।
श्रीभाष्यं च करिष्यामि जनरक्षनाहेतुना।

प्रतिज्ञा **2**ः मैं समस्त तत्वज्ञान के प्रतीक ब्रह्मसूत्र पर श्रीभाष्य की रचना कर सभी लोगोंकी रक्षा करूँगा।

जीवेश्वरादीन् लोकेभ्यः कृपया यः पराशरः।
सन्दर्शयन् तत्स्वाभावान् तदुपायगतीस्तथा।
पुराणरत्नं संचके मुनिवर्यः कृपानिधिः।
तस्यनाम्ना महाप्राज्ञ वैष्णवस्य च कस्यचित्।
अभिधानंकरष्यिामि निष्कयार्थ मुनेहरम्।

प्रतिज्ञा **3**ः कृपानिधान पराशर मुनि ने पुराणरत्न श्रीविष्णु पुराण की रचना कर जीव जगत एवं ईश्वर तथा उनके स्वभाव से लोगों को अवगत कराया तथा उनकी सद्गति का मार्ग प्रसस्त किया। पराशर मुनि का ऋण चुकाने के लिये एक विद्वान वैष्णव को उनके नाम से विख्यात करूँगा।

इसके बाद उन्होंने श्रीरंगनाथ को कावेरी के पास से हीं साष्टांग प्रणाम कर कांची के लिये प्रस्थान कर दिया। **1045** ई में इनकी माताजी परमपद कर गयीं।

श्रीकांचीपूर्ण स्वामी

तिरूकांची नंबी यानी स्वामी कांचीपूर्ण चेन्नै के पास अवस्थित पून्नमलै से आकर वरदराज भगवान की सेवा में निरन्तर तत्पर रहते थे।

वरदराज भगवान को पंखा झलने का काम बहुत ही श्रद्धा से करते थे। शूद्र होते हुए भी श्रीरामानुज इनको अपना गुरू मानते थे जबकि ब्राह्मण से सेवा लेना श्रीकांचीपूर्ण को नागवार गुजरता था। श्रीकांचीपूर्ण को सब लोग वरदराज भगवान की आत्मा एवं वाणी मानते थे।श्रीरामानुज का अधिकांश समय श्रीकांचीपूर्ण के साथ ही वीतता था। **1049** ई में एक दिन श्रीरामानुज ने अपने मन के कुछ भ्रम को दूर करने के लिये श्रीकांचीपूर्ण को वरदराज भगवान से निवेदन करने की प्रार्थना की। वरदराज भगवान द्वारा बतायी गयीं छः बातें श्रीकांचीपूर्ण ने श्रीरामानुज को बतायी।

अहमेव परं ब्रह्म जगत्कारणकारणम् ।
क्षेत्रज्ञेश्वरयोर्भेद ः सिद्ध एव महामते।।

1। जगत के कारण प्रकृति का भी मैं ही कारण हूँ एवं परब्रह्म हूँ।
2। इससे जीव तथा ईश्वर में भेद सिद्ध होता है।

मोक्षोपायो न्यास एव जनानां मुक्तिमिच्छताम्।
मद्भक्तानां जनानां च नान्तिमस्मृतिरिष्यते।।

3। भगवान के चरणारविन्द में आत्मसमर्पण मुक्ति का एकमात्र उपााय है।
4। मेरे भक्त अगर देह छोड़ने के समय भी मेरा स्मरण न करें तव भी उनकी मुक्ति अवश्य होगी।

देहावसाने भक्तानां ददामि परमं पदम्।

5। मैं अपने भक्तों को देह छोड़ते ही वैकुण्ठ का निवासी बना देता हूँ।

पूर्णाचार्य महात्मानं समाश्रय गुणाश्रयम्।
इति रामानुजाचार्याय मयोक्तं वद सत्वरम्।।

6। सभी सद्गुणों के भंडार महात्मा महापूर्ण से शिष्यत्व ग्रहण करे। मेरी ये कही हुई बातें शीघ्र रामानुज को बता दो।

श्रीमहापूर्ण स्वामी से दीक्षा एवं शिक्षा

वरदराज भगवान की बातें सुनकर श्रीरामानुज को बहुत ही प्रसन्नता हुई। शीघ्र ही वे श्रीमहापूर्ण स्वामी से समाश्रित होने के लिये श्रीरंगम की ओर प्रस्थान कर गये। इधर श्रीरंगम में श्रीयामुनाचार्य के परमपद के कई वर्ष व्यतीत हो गये थे। तिरूवरंग स्थानाधीश के रूप में काम कर रहे थे। श्रीरंगम

में सबलोगों ने मिलकर श्रीरामानुज को तमिल दिव्यप्रबन्ध का अधिकारी बनाने के उद्देश्य से श्रीमहापूर्ण स्वामी को कांची भेजा और साथ ही श्रीमहापूर्ण से यह भी अनुरोध किया कि समयानुसार श्रीरामानुज को श्रीरंगम लाकर यहाँ का प्रधान बना देने की संभावना के प्रति उनको मन ही मन सजग रहना चाहिये। जब श्रीमहापूर्ण कांची आ रहे थे तो संयोगवश रास्ते में ही मदुरान्तक में श्रीरामानुज ने श्रीमहापूर्ण को अपनी पत्नी के साथ आते देखा। उन्होंने श्रीमहापूर्ण से पंचसंस्कार करने की प्रार्थना की और मदुरान्तक में ही श्रीरामानुज समाश्रित हो गये। वहाँ से सभी कांची साथ लौटे तथा श्रीमहापूर्ण पत्नी के साथ श्रीरामानुज के निवास पर ही रहने लगे। छः मास बीतने को आया और श्रीमहापूर्ण ने श्रीरामानुज को दिव्यप्रवन्धम के गूढ़ार्थ से अवगत करा दिया। एक दिन श्रीमहापूर्ण को श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन की उत्कट ईच्छा हुई और वे श्रीरामानुज की अनुपस्थिति में ही श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर गये।

संन्यास ग्रहण

श्रीरामानुज का मन घरेलू जीवन से उचटने लगा था। एक दिन जब उनकी पत्नी अपने मायके गयीं तो वे वरदराज भगवान के समक्ष यज्ञाग्नि प्रज्वलित कर लोकैषणा की आहुति देते हुए स्वयं ही संन्यास ग्रहण कर लिये तथा श्रीकांचीपूर्ण ने उन्हें उससमय उन्हें 'यतिराज' कहकर सम्बोधित किया। श्रीरामानुज की ख्याति फैलने लगी। दाशरथि श्रीरामानुज के भानजा थे और वे **1044** ई में इनके पहले प्रिय शिष्य बने। कांची के पास के कुरम स्थान के धनीमानी व्यक्ति कुरनाथ या कुरेश **1049** ई में इनके दूसरे शिष्य बने। करेश बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धि एवं विलक्षण स्मरण शक्ति से सम्पन्न थे। और अनेकों शिष्य बनने लगे परन्तु प्रथम दोनों दाशरथि एवं कुरेश इनके प्रिय शिष्य होकर सर्वदा इनके साथ रहने लगे। यादवप्रकाश की माँ श्रीरामानुज से बहुत प्रभावित थीं। उन्होंने यादवप्रकाश को उत्प्रेरित कर श्रीरामानुज का शिष्य बना दिया। यादवप्रकाश ने 'यतिधर्मसमुच्चय' पुस्तक लिखकर श्रीरामानुज के चरणों में समर्पित की तथा इसके कुछदिन वाद अवस्थावश यादवप्रकाश का **1049** ई में देहावसान हो गया।

श्रीरंगम आगमन

श्रीरंगम में रंगनाथ भगवान की प्रेरणा से श्रीमहापूर्ण स्वामी ने गान विद्या के मर्मज्ञ श्रीवररंग यानी 'तिरूवरंगपेरूमाल अरैयर' को कांचीपुरम भेजा। श्रीवररंग ने अपनी गान विद्या की कुशलता से वरदराज भगवान को प्रसन्न कर लिया और पुरस्कार में श्रीरामानुज को मांग लिया। वरदराज भगवान के आदेश से श्रीरामानुज वररंग के साथ ही **1050** ई में श्रीरंगम आ गये और यहाँ के स्थानाधीश बना दिये गये।

1050 ई में पेरिया नंबी यानी महापूर्ण स्वामी से द्वय मंत्र का दूसरी बार रहस्यार्थ समझा। इन्हें 'इलयालवार' के बदले 'उडयवर' कहे जाने लगे। इसी वर्ष इन्होंने दाशरथि को मन्दिर के व्यवस्था का प्रधान बना दिया तथा स्वयं कुरेश जी के साथ समस्त कार्यों के पर्यवेक्षक के रूप में काम करने लगे। 'तिरूवरंग पेरूमाल अरैयर' से वाद्ययंत्र पर 'तिरूवायमोळी' भी सीखने में लग गये।

'वेदान्त सार' एवं 'वेदान्त दीप' तथा 'नित्य ग्रन्थः'

श्रीरंगम मन्दिर की व्यवस्था में विरोध देखकर **1051** से **1053** ई तक श्रीरामानुज स्थान छोड़कर पास के दिव्यदेश तिरूवल्लारै चले गये। वहाँ श्रीरामानुज ने 'वेदान्त सार' तथा 'वेदान्त दीप' की रचना की। ये दोनों रचनायें 'ब्रह्मसूत्र' की टीका हैं जिसमें 'वेदान्त सार' बहुत ही संक्षेप में है तथा 'वेदान्त दीप' इससे ज्यादा विस्तृत है। पुनः श्रीवैष्णवों ने उन्हें वापस श्रीरंगम लाया। श्रीरंगम की व्यवस्था के लिये तत्कालीन पाँच श्रेणी के परिचारक के स्थान पर **1053** ई में दस श्रेणी के परिचारकों की परम्परा की शुरूआत करायी। श्रीवैष्णवों को निजी पूजा तथा अर्चाविग्रह की पूजा के लिये श्रीरामानुज ने 'नित्य ग्रंथ' की रचना की।

श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी से रहस्यमंत्र का ज्ञान

श्रीमहापूर्ण स्वामी ने श्रीरामानुज को अभिपेरित कर तिरूकोट्टियूर या गोष्ठीपुर के श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी यानी तिरूकोट्टियूर नंबी के यहाँ श्रीवैष्णव मंत्र का गूढ़ार्थ समझने के लिये भेजा। श्रीरामानुज को अठारह बार निराश

लौटने के बाद भगवान रंगनाथ की प्रेरणा से **1054** ई में श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने **'ॐ नमो नारायणाय'** का गूढ़ार्थ श्रीरामानुज को समझाया तथा सावधान किया कि यह परमपवित्र एवं परमकल्याणकारी है। अनावश्यक इसे अन्य को न बताया जाय। गुरू से ज्ञान प्राप्त कर श्रीरामानुज बाहर आये और स्थानीय सबलोगों को तिरूकोट्टियूर मंदिर बुलाये। वहाँ वे गोपुर के उपर जा कर **'ॐ नमो नारायणाय'** मंत्र का सबों से समवेत स्वर में उच्चारण कराते हुए बताया कि यह परमकल्याणकारी मंत्र है। जब श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी को मंत्र को सार्वजनिक करने की जानकारी मिली तो वे दुःखी हुए। श्रीरामानुज श्रीरंगम लौटने के पूर्व गुरु का दर्शन करने गये। गुरू ने गुस्से में कहा कि गुरू आज्ञा के उल्लंघन से नरक मिलता है और तू ने जान बूझकर मेरे मना करने पर भी मेरे बताये गूढ़ार्थ को सार्वजनिक कर दिया। श्रीरामानुज ने निवेदन करते हुए कहा 'आपने कहा था कि इससे शीघ्र कल्याण मिलता है और अगर एक दास के नरक जाने से अन्यसबों का कल्याण हो जाता है तो दास को इसका दण्ड दिया जाय।' श्रीरामानुज की उदारता देखकर श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी दंग रह गये और प्रसन्न होकर उनको गले लगाते हुए कहा 'रामानुज तू ही गुरू है मैं तेरा शिष्य हूँ।' श्रीगोष्ठीपूर्ण को प्रसन्न कर श्रीरामानुज ने उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर दिया। पुनः **1054** ई में श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी से इन्होंने 'चरम मंत्र' का रहस्यार्थ समझा।

श्रीरंगम का नियंत्रण

श्रीरंगम मन्दिर के 'पेरिया कोईल नम्बी' ही मुख्य नियंत्रक थे तथा इनके पास ही सभी चावियाँ रहती थीं। अंततः 'नम्बी' ने श्रीरामानुज को व्यवस्थापक के रूप में स्वीकार लिया तथा श्रीरामानुज ने इनका नाम 'तिरूवरंगतु अमुदनार' रख दिया तथा सभी चावी उन्हीं के पास रहने दी। अमुदनार की माँ परमपद कर गयीं तो श्राद्धकर्म में श्रीवैष्णवों को जब दान देकर तृप्त करने की बात आयी तो सभी श्रीवैष्णवों की ओर से श्रीकुरेश को 'तृप्तोऽस्मि' कहना था परन्तु इन्होंने इस तरह की उद्घोषणा के लिये अमुदनार को मन्दिर की सारी चावियाँ सुपुर्त करने को कहा। **1054** ई में इनसे सभी चावियाँ मिल

गयीं तथा श्रीकुरेश ने लाकर श्रीरामानुज को सभी चावियां समर्पित कर दीं। श्रीनाथमुनि के समय से प्रबन्धम के 'अध्ययन उत्सव' का अधिकार 'तिरूवरंगपेरूमाल अरैयर' को था। प्रबन्धम का तीसरा एकहजार जो 'इयर्पा ' कहा जाता है अरैयर से भिक्षा में माँग कर इसके पाठ का श्रेय पेरियाकोईल नंबी यानी अमुदनार एवं इनके बंशजों को दे दिया। स्मरण रहे कि अमुदनार ने ही **1055** ई में 'रामानुज नुट्रन्दादि' की रचना की थी जो तमिलदिव्यप्रबन्धम का **23**वॉ प्रवन्ध है और इयर्पा के पाठ के साथ इसका भी पाठ अमुदनार के ही हिस्से में है। अमुदनार **1057** ई में वैकुण्ठवासी हो गये।

श्रीकुरेश को चरम मंत्र का रहस्य

1054 ई में एकबार श्रीरंगम में शिष्य कुरेश ने श्रीरामानुज से चरम मंत्र '**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**' का अर्थ समझाने की प्रार्थना की। श्रीरामानुज ने उन्हें कहा 'मेरे गुरू श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने मुझे इसका अर्थ उसी को बताने को कहा है जो एक वर्ष तक अभिमानरहित दास्यभाव से ब्रह्मचर्य रहते जीवन विताये।' कुरेश ने एक वर्ष के जीवन की अनिश्चितता की शंका को व्यक्त करते हुए अन्य उपाय के लिये निवेदन किया। श्रीरामानुज ने विकल्प में एक माह का उपवास करने को कहा और बताया कि भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करना भी उपवास के तुल्य होता है। श्रीकुरेश एक माह की भिक्षावृति करने के उपरान्त चरम मंत्र के गूढ़ार्थ प्राप्त कर सके।

गद्यत्रय का समर्पण

'गद्यत्रय' यानी श्रीशरणागति गद्य, श्रीरंगगद्य, एवं श्रीवैकुण्ठ गद्य की रचना कर **1054** ई के 'पंगुनी उत्तरम्' यानी मीन मास के उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में रंगनायकी के परिणय उत्सव के दिन दिव्यदम्पति को श्रीरामानुज ने समर्पित किया।

दाशरथि की परीक्षा

श्रीरामानुज के शिष्य दाशरथि ने भी **1054** ई में उनसे चरम मंत्र के गूढ़ार्थ समझाने के लिये प्रार्थना की। इन्होंने उन्हें श्रीगोष्ठीपूर्ण के पास भेज दिया। श्रीगोष्ठीपूर्ण ने यह कहते हुए उन्हें वापस कर दिया 'तू विद्वान आदमी

है और जिसे विद्वत्ता का अहंकार हो वह चरम मंत्र का अधिकारी नहीं है।' दाशरथि श्रीरामानुज के पास लौटकर आ गये। उसी समय श्रीमहापूर्ण स्वामी की नवविवाहिता बेटी अत्तुला श्रीरामानुज के पास आकर रो रही थी। ससुराल वाले उसे रसोई पकाने के अतिरिक्त दूर से घड़ा में जलभर कर लाने को बाध्य कर रहे थे। श्रीमहापूर्ण स्वामी ने उसे श्रीरामानुज के पास समाधान के लिये भेजा था। पास ही खड़े दाशरथि को श्रीरामानुज ने अत्तुला के साथ उसके ससुराल में जाकर दूर से जल लाकर रसोई का कार्य करने को कहा। दाशरथि बड़े दास्यभाव के साथ अत्तुला के साथ गये और शान्तचित्त से उसकी सहायता करने लगे। एक दिन बाहर का कोई पंडित वहाँ एक शास्त्रीय प्रसंग की भ्रमात्क व्याख्या कर रहा था। दाशरथि अपने को रोक न सके और पंडित के अपशब्दों को सहन करते हुए उनकी कुशलतापूर्वक व्याख्या की जिससे गॉव वाले उनपर बहुत प्रसन्न हुए। गॉववालों ने श्रीरंगम आकर श्रीरामानुज को दाशरथि के शांतचित्त एवं विद्वान स्वभाव की प्रशंसा करते हुए उनको श्रीरंगम वापस बुलाने के लिये अनुरोध किया। दाशरथि को श्रीरंगम बुलाकर श्रीरामानुज ने उन्हें चरम मंत्र का गूढ़ार्थ बताया।

श्रीरामानुज के गुरू

कांचीपुरम के श्रीकांचीपूर्ण स्वामी के अतिरिक्त श्रीरामानुज के चार और गुरू विदित थे। ये सभी श्रीयामुनाचार्य के परमशिष्य थे और श्रीरंगम से सम्बन्धित थे। दो गुरू श्रीमहापूर्ण तथा श्रीगोष्ठीपूर्ण हुए और अन्य दो गुरू श्रीवररंग तथा श्रीमालाधर हुए थे। ध्यातव्य है कि श्रीवररंग ही कांची जाकर वरदराज भगवान को प्रसन्न कर श्रीरामानुज को भिक्षा के रूप में मांगकर कांची से श्रीरंगम लाये थे। एक ओर श्रीवररंग ने इन्हें वाद्ययंत्र के साथ 'तिरूवायमोळी' की अभिनयपूर्ण प्रस्तुति का ज्ञान दिया था तो दूसरी ओर श्रीमालाधर ने 'तिरूवायमोळी यानी शठकोप स्वामी की सहस्रगीति' का इन्हें गूढ़ार्थ सिखाया था। एक अन्य मान्यता से श्रीकांचीपूर्ण को गुरू न मानकर 'तिरूमलय नंबी' यानी 'श्रीशैलपूर्ण स्वामी' से रामायण पढ़ने के कारण इन्हें ही श्रीरामानुज के पांचवें गुरू मानते हैं। इस तरह से श्री कांचीपूर्ण को लेकर श्रीरामानुज के छः गुरू हुए परन्तु दीक्षा श्रीमहापूर्ण स्वामी से मिली थी।

श्रीमालाधर से तिरूवायमोळी का गूढ़ार्थ सीखना

श्रीमहापूर्ण स्वामी श्रीरामानुज को कांची जाकर तमिल प्रबन्ध पढ़ा चुके थे परन्तु पुनः उनके कहने पर श्रीरामानुज ने देवगानविद्या विशारद श्रीवररंग यानी 'तिरूवरंगपेरूमाल अरैयर' से तमिल प्रबन्ध सीखा। इसीतरह श्रीगोष्ठीपूर्ण के कहने से 'तिरूमलै आण्डान' यानी श्रीमालाधर ने श्रीरामानुज को नम्माळवार की सहस्त्रगीति 'तिरूवायमोळी' का गूढ़ार्थ पढ़ाया था। एकवार किसी पद की व्याख्या में श्रीरामानुज ने स्वतंत्र विचार व्यक्त किये। श्रीमालाधर इस बात से नाराज हो गये और बताया कि श्रीयामुनाचार्य ने कभी ऐसी व्याख्या उन्हें नही पढ़ायी थी। ऐसा कहकर वे पाठ को बीच में ही छोड़कर चले गये। श्रीगोष्ठीपूर्ण को जब पताचला तब वे श्रीमालाधर के पास जाकर श्रीरामानुज की विलक्षणता के बारे में उन्हें अवगत कराया। पुनः श्रीमालाधर वापस गये तथा श्रीरामानुज को 'तिरूवायमोळी' पढ़ाने लगे। इसीतरह दूसरी वार 'तिरूवायमोळी' के किसी अन्य पद के प्रसंग में श्रीरामानुज की पृथक व्याख्या सुनने के बाद भी श्रीमालाधर बहुत प्रसन्न हुए। इसतरह से कालक्रम में 'तिरूवायमोळी' का संपूर्ण ज्ञान जो उन्होंने श्रीयामुनाचार्य से प्राप्त किया था श्रीरामानुज को अवगत करा दिया।

श्रीवररंग से तिरूवायमोळी की अभियनय पूर्ण प्रस्तुति सीखना

श्रीरामानुज श्रीवैष्णव रहस्य को और समझने के लिये श्रीवररंग की सेवा में लगे रहते थे। श्रीवररंग जब रंगनाथ भगवान के सामने गीत तथा नृत्य की प्रस्तुति कर थक जाते थे तो श्रीरामानुज उनका पैर दवाकर उनको विश्राम लाभ कराते थे। रात में स्वयं खीर बनाकर श्रीवररंग को खिलाते थे। इससे श्रीवररंग बहुत प्रसन्न हुए तथा श्रीरामानुज को गुरूसेवा की महत्ता का उचित ज्ञान कराया **'गुरूरेव परं ब्रह्म गुरूरेव परं धनम् ......गुरूरेव पराविद्या गुरूरेव परा गतिः'।**

श्रीरामानुज को विषपान कराना

श्रीरामानुज के बढ़ते प्रभाव से श्रीरंगम के मुख्य अर्चक 'उत्तम नंबी' ने ईर्ष्या से इन्हें विषदेनी की योजना बनायी। भिक्षा के लिये अपने घर पर

बुलाकर पत्नी से भोजन में विष मिलवाकर स्वयं मंदिर चले गये परन्तु पत्नी ने श्रीरामानुज को सबकुछ बता दिया। दिन में विफल होने पर सायंकाल में जब श्रीरामानुज रंगनाथ भगवान के दर्शन को आये तो उन्हें विषमिश्रित तीर्थ दिया गया। श्रीरामानुज उसे भगवान का प्रसाद समझ पी गये परन्तु उन्हें कुछ नहीं हुआ। अंत में अर्चक ने क्षमा मांगी। इस घटना को सुनकर श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी चिन्तित हो गये तथा श्रीरंगम पधारे। स्वागत में आये श्रीरामानुज एवं अन्य श्रीवैष्णवों ने जब इन्हें कावेरी के तप्त बालू पर लेटकर साष्टांग किया तो इन्होंने सब को उठ जाने को कहा परन्तु श्रीरामानुज को लेटे ही रहने दिया। श्रीरामानुज का देह तपते बालू से जल रहा था। इसे देख सुन्दर कीदाम्बी से न रहा गया तथा वे जोर जोर से श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी के सामने श्रीरामानुज की दशा पर आर्तनाद करने लगे। श्रीवैष्णवों की इस तरह से परीक्षा लेकर श्रीगोष्ठीपूर्ण ने सुन्दर कीदाम्बी को श्रीरामानुज का सबसे बड़ा हितैषी समझा तथा **1054** ई में इन्हें श्रीरामानुज के रसोई घर का उत्तरादायित्व दिया।

यज्ञमूर्ति की पराजय

एकबार **1055** ई में यज्ञमूर्ति नामक एक अद्वैती विद्वान रामानुज से शास्त्रार्थ करने लगे। सतरह दिन तक कुछ निर्णय न होते देख श्रीरामानुज ने अपने आराध्य वरदराज भगवान से विनती की। रात में शुभ स्वप्न हुआ। दूसरे दिन शास्त्रार्थ शुरू होने के पूर्व ही यज्ञमूर्ति समर्पण कर बैठे और श्रीरामानुज को अपना गुरू बना लिये। श्रीरामानुज ने इनका श्रीवैष्णव नाम वरदराज भगवान के नाम पर '**अरूलाल पेरूमाल एम्पेरूमनार**' यानी '**देवराजमुनि**' रखा।

श्री अनन्ताळवार का तिरूमला में पुष्पसेवा

तिरूवायमोळी की व्याख्या करते समय एक बार **1056** ई में श्रीरामानुज ने वेंकटगिरि के प्रसंग में बताया कि यह पर्वत साक्षात नारायण स्वरूप है। यहाँ बसने वाले दिव्यस्वरूप का होकर परमधाम को जाते हैं। उपस्थित श्रीवैष्णवों से श्रीरामानुज ने किसी एक श्रीवैष्णव को वहाँ जाकर भगवान वेंकटेश्वर का पुष्प कैंकर्य करने की इच्छा जतायी। श्रीअनन्ताचार्य स्वेच्छा से

वहाँ जाकर कैंकर्य करने को तैयार हुए। उन्हें तिरूमला भेजने के बाद श्रीरामानुज भी **1057** ई में तिरूमला की यात्रा पर निकले। रास्ते में यज्ञेश नामक एक धनी शिष्य का घर आता था। श्रीरामानुज ने वहाँ श्रीवैष्णव भेजकर अपने आने की पूर्व सूचना भेजी। यज्ञेश सूचना पाकर स्वागत की तैयारी में लग गये तथा आगन्तुक श्रीवैष्णव का सत्कार भूल गये। लौटकर श्रीवैष्णव ने श्रीरामानुज को सब बात बता दी। श्रीरामानुज यज्ञेश के यहाँ न जाकर पास के एक दूसरे निर्धन भिक्षावृति पर निर्भर रहने वाले शिष्य वरदाचार्य या कर्पासाराम के यहाँ पधारे। घर में पत्नी लक्ष्मी स्नान के बाद एक ही कपड़े को सूखने की प्रतीक्षा कर रही थी। श्रीरामानुज ने पहुँचकर जब आवाज लगायी तो वह सबकुछ भूलकर दौड़ पड़ी। श्रीरामानुज ने उसपर अपनी चादर फेंककर उसकी मर्यादा की रक्षा की। जलप्रक्षालन से श्रीरामानुज के चरणामृत लेने के बाद वह स्वागत की मनसा से घर के भीतर जाकर दूसरे दरवाजे से अपने धनी पड़ोसी के यहाँ गयी और अपने को उसे सुपुर्त कर दिया। पड़ोसी लक्ष्मी पर कामातुर रहता था परन्तु उसे निराश होना पड़ा था। आज वह अपनी इच्छा की पूर्ति की संभावना देखकर भोजन की सारी सामग्री स्वयं उसके घर पहुँचा दिया। श्रीवैष्णवों के सम्मान में लक्ष्मी ने अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तथा नैवेद्य तैयार किये। भगवान को अर्पित करने के बाद श्रीवैष्णव मंडली प्रसाद ग्रहण कर तृप्त हो गयी। वरदाचार्य लौटकर घर आये तो अपनी पत्नि की आतिथ्य से अतिप्रसन्न हुए। पड़ोसी को भी जब वह दिव्यप्रसाद मिला तो उसे पाते ही उसके कामुक विचार बदल गये और वह लक्ष्मी को माँ कहते हुए श्रीरामानुज का दास हो गया।

श्रीशैलपूर्ण से रामायण का ज्ञान एवं तिरूपति में 'वेदार्थ संग्रह' की रचना

श्रीरामानुज कांची वरदराज भगवान एवं श्रीकांचीपूर्ण स्वामी का दर्शन करते हुए तिरूमला पर्वत के पास पहुँचे। उनकी हार्दिक इच्छा पर्वत पर पाँव रखने की नहीं थी। श्रीशैलपूर्ण से प्रसाद ग्रहण कर गोविन्द से मिलते हुए अन्य श्रीवैष्णवों के कारण ऊपर जाकर भगवान का दर्शन किये और अनन्ताचार्य के कैंकर्य की सराहना करते हुए श्रीपर्वत की तलहटी के तिरूपति में आकर

1057 ई में कार्तिक मास से प्रारम्भ कर एकवर्ष तक तिरूमला नंबी यानी श्रीशैलपूर्ण स्वामी से श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के गूढ़ार्थ का ज्ञान प्राप्त किया। वहाँ से पुनः कांचीपुरम होते श्रीरंगम वापस हो गये। तिरूपति के प्रवास में ही **1057** तथा **1058** ई में श्रीरामानुज ने '**वेदार्थ संग्रह**' की रचना की।

श्रीभाष्य एवं गीता भाष्य

ब्रह्म सूत्र पर संक्षेप में '**वेदान्त सार**' एवं '**वेदान्त दीप**' लिखने के बाद इसकी विशद व्याख्या लिखने के लिये श्रीरामानुज 'बोधायन वृत्ति' की खोज में लगे थे। अन्ततः वे अपने शिष्य श्रीकुरेश को साथ ले कश्मीर गये जहाँ शारदा पीठ में वहाँ के नियन्त्रको द्वारा मना कर दिये जाने पर भी उनकी अभिलाषा की पूर्ति करने में स्वयं विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती ने सहायता की। एक रात में वे स्वयं पुस्तक लेकर आयीं एवं श्रीरामानुज को सुपुर्त कर शीघ्र श्रीरंगम चले जाने को कहा। श्रीरंगम की ओर चलते हुए एक माह बीता कि शारदा पीठ के नियन्त्रक इनका पीछा करते आये और पुस्तक छीन कर ले गये। जब श्रीरामानुज दुःखी हुए तो श्रीकुरेश ने सांत्वना देते हुए बताया 'रात में जब आप विश्राम करते थे तो मैं उसका अध्ययन करता था।' श्रीकुरेश ने पाँच छः दिनों में संपूर्ण पुस्तक को अपनी अनोखी स्मृति से लिपिबद्ध कर दिया। श्रीरंगम लौटकर श्रीकुरेश ने लिपिक का काम किया और श्रीरामानुज ने व्याख्या का काम पूरा कर लिया। इसी व्याख्या का नाम 'श्रीभाष्य' है। तदुपरान्त 'गीता भाष्य' की रचना **1062** ई में हुई।

दिग्विजय यात्रा

श्रीरामानुज की श्रीवैष्णव मंडली चौहत्तर विद्वानों से सुशोभित होती थी। सबों को साथ ले वे **1059** ई में **52** वर्ष की अवस्था में संपूर्ण भारत की दिग्विजय यात्रा पर निकले। पहले कांचीपुरम में वरदराज भगवान का दर्शन किया और उसके पश्चात कुंभकोणम जाकर वहाँ विपक्षियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। मदुरै जाकर वहाँ के विद्वानों को अपने पक्ष में कर लिया। वानमामलै या तोतादरी से **15** कि मी पर अवस्थित तिरूक्कुरूंगुडी में जाने पर भगवान ने इनकी शिष्यता ग्रहण की जो नम्बीनारायण के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कुरूकापुरी या आळवारतिरूनगरी जाकर 'शठारी विग्रह' के दर्शन के पश्चात तिरूअनन्तपुरम में पद्मनाभ भगवान का दर्शन करते हुए द्वारिका, मथुरा, वृन्दावन, शालग्राम यानी मुक्तिनारायण, बदरीकाश्रम, अयोध्या, नैमिषारण्य , पुष्कर आदि तीर्थो के दर्शन करते हुए कश्मीर शारदा पीठ पहुँचे। वहाँ सरस्वती देवी ने इन्हें 'भाष्यकार' की उपाधि दी। वहाँ के विद्वानों को परास्त करने के कारण लोगों ने इनकी जीवन हानि के लिये अभिचार भी किये परन्तु उल्टा उन्हीं लोगों को भोगना पड़ा। फलस्वरूप वहाँ के राजा एवं पंडितगण इनके शिष्य हो गये। यहाँ इनको 'हयग्रीव भगवान' के विग्रह का दर्शन मिला। कश्मीर से लोटते हुए ये पूर्वीतट पर स्थित 'जगन्नाथपुरी' का दर्शन करने गये। विपक्षियों को परास्त करने के बाद भगवान जगन्नाथ को पांचरात्र पद्धति से आराधना कराना चाहा तो भगवान ने रात की निद्रावस्था में उठाकर कूर्मक्षेत्र लाकर छोड़ दिया। कुर्मक्षेत्र में कुछ दिन रहने पर इनकी श्रीवैष्णवमंडली जब आयी तब सिंहाचलम होते अहोबिलम में इन्होंने नरसिंह भगवान की पूजा अर्चना की। वहाँ से जब तिरूमला पहुँचे तो वहाँ भगवान के दिव्यविग्रह पर शैव एवं वैष्णवों में विवाद चल रहा था। श्रीरामानुज ने भगवान को विष्णु विग्रह बताते हुए शंख चक्र धारण करा दिया और सारा विवाद को शान्त किया। शैवराजा के अत्याचार से चिदम्बरम में गोविन्दराज भगवान के अर्चाविग्रह को समुद्र में फेंकवा दिया गया था। इसीलिए तिरूपति में गोविन्दराज जी के मन्दिर का निर्माण करवाकर गोविन्दराज की स्थापना में श्रीरामानुज की पहल हुई थी। दिग्विजय से लौटते समय विधिवत पूजा का शुभारंभ हुआ तथा गोदा देवी की सन्निधि में गोदा देवी की पूजार्चना शुरू की गयी। वहाँ से कांचीपुरम भगवान वरदराज की अर्चना करने आ गये। श्रीरंगम लौटते हुए रास्ते में श्रीनाथमुनि की जन्मस्थली कट्टुमन्नारकोईल का दर्शन करते अपनी दिग्विजय यात्रा पुनः श्रीरंगम में भगवान रंगनाथ की शरणागति से पूरी की।

तिरूवायमोळी की प्रथम व्याख्या 'आरयिरपदी'

एक बार एकांत बंद कमरे में श्रीरामानुज 'तिरूवायमोळी' की अभिनयपूर्ण प्रस्तुति कर रहे थे। इनके 'पिल्लन' नाम का एक शिष्य गुप्त रूप

से एक छेद से सब कुछ देख रहा था। बाद में जब श्रीरामानुज को पता चला कि 'पिल्लन' ने मात्र मेरा अभिनय देखकर 'तिरूमालिरूञ्जोलै यानी आळगार कोईल' के श्रीसुन्दरबाहु भगवान के प्रसंग का सही अनुमान किया था तो उसके ज्ञान से प्रसन्न होकर इन्होंने उसे अपने 'ज्ञानपुत्र' की संज्ञा दी तथा उसका नाम 'तिरूक्कुरूहैप्पिरान पिल्लन' कहकर सम्बोधित किया और 'पिल्लन' से 'तिरूवायमोळी' पर पहली टीका लिखवायी जो 'आरयिर पदी' कहलाया जिसमें कुल **6000** पद हैं। यह रचना **1074-76** ई के दो वर्षो में पूरी हुई थी।

धनुर्दास पर कृपा एवं उनकी उदात्त वैष्णवता

श्रीरंगम के पार्श्ववर्ती क्षेत्र निचुलापुरी में धनुर्दास एक पहलवान थे और वे रास्ते या घर में सदा अपनी प्रेयसी की ऑख ही देखते रहते थे। लोक लाज की उन्हें कोई चिन्ता न थी। एक दिन रंगनाथ भगवान की गरूड़ सवारी की भी उपेक्षा कर वे भीड़ में ऐसा ही करने में निमग्न थे। श्रीरामानुज ने उन्हें सायंकाल बुलाकर रंगनाथ भगवान के मूलस्थान के अचल विग्रह की ऑखों का दर्शन कराया। उस अलौकिक छटा को देखकर वे अपनी प्रेयसी की ऑख को तुच्छ मानने लगे तथा अपने प्रेयसी के साथ श्रीरामानुज के शिष्य हो गये। वे श्रीरंगम में ही श्रीरामानुज के मठ के पास रहने लगे। श्रीरामानुज जब कावेरी से स्नान कर लौटते तब वे धनुर्दास को अपने हाथ से पकड़े रहते थे। श्रीवैष्णवों ने इसबात के लिये श्रीरामानुज की आलोचना की।

श्रीरामानुज ने एक उदाहरण से धनुर्दास की निर्मलता को सिद्ध करना चाहा। एक दिन मठ में बाहर सूखती धोती से कोपीन के लिये कुछ अंश चुपके से किसी ने काट लिया। श्रीवैष्णवों में तू तू मैं मैं मच गयी। श्रीरामानुज ने बीचबचाव कर सब को शान्त किया। उसीदिन रात में श्रीरामानुज ने धनुर्दास को मठ में देर तक रोक लिया और कुछ श्रीवैष्णवों को धर्नुदास के घर जाकर उसकी शयन करती पत्नी के गहने चुराने को भेजा। जब वे लोग घर में प्रवेश किये तो वह समझ गयी कि गरीब वैष्णव लोग कुछ चोरी करने आये हैं। शयन का अभिनय कर वह शय्या पर ही रही। ये लोग उसको गाढ़ी निद्राग्रस्त समझ एक तरफ के गहने उतार लिये। जब उसने करवट

बदली जिससे कि दूसरी तरफ के गहने भी वे ले जायें तो उसे जागी हुई समझ ये लोग भाग गये तथा लौटकर श्रीरामानुज से सारी स्थिति बतला दी और गहने सुपुर्द कर दिये। जब धनुर्दास अपने घर गया तो श्रीरामानुज ने उन वैष्णवों को उसके पीछे से जाकर घर में होने वाले संवाद को सुनने के लिये भेजा। श्रीवैष्णव गण ने लौटकर श्रीरामानुज को बताया कि उसकी पत्नी ने जानकर गरीब श्रीवैष्णवों की सहायता की मनसा से ही स्वयं गहने उतरवाई थी। दूसरे दिन प्रातः काल श्रीरामानुज ने गोष्ठी में पूछा 'जब आपके कटिवस्त्र से किसी ने कोपीन भर कपड़ा लिया तो आपने तू तू मैं मैं कर लिया। जब धनुर्दास की पत्नी के गहने चुराये गये तो उनदोनों को अफसोस हुआ कि अगर करवट नहीं बदला गया होता तो श्रीवैष्णवगण पूरे लाभ से वंचित नहीं होते। आप ही बतायें कि आप श्रेष्ठ हैं कि धनुर्दास **?**' श्रीवैष्णवजनों ने अपनी गलती के लिये क्षमा मांगी तथा उसदिन से श्रीरामानुज की आलोचना भी बंद कर दी।

चोलराजा के बर्वरतापूर्ण कृत्य

कांचीपुरम में अपने विद्यार्थीकाल में जिस राजकुमारी की प्रेतबाधा को श्रीरामानुज ने दूर किया था उसका भाई तरूण होने पर राजा बना और कृमिकण्ठ के नाम से जाना गया। वह कट्टर शैव था तथा चाहता था कि श्रीरामानुज भी शैव हो जायें तो चोलराज से श्रीवैष्णवों का नामोनिशान मिट जायेगा। उसने इसी उद्देश्य से श्रीरामानुज को अपने यहाँ बुलवाया और उसकी यह भी योजना थी कि अगर श्रीरामानुज शैव नहीं बनते हैं तो उनको प्राणदण्ड दे दिया जाय। श्रीकुरेश को इसकी जानकारी मिल गयी। **1078** ई में जब राजा के दूत श्रीरामानुज को राजा के पास ले जाने के लिये आये तब श्रीकुरेश ने श्रीरामानुज को अपने तर्क से समझाकर उन्हें श्वेत वस्त्र में मठ के दूसरे रास्ते से बाहर भगा दिया तथा स्वयं श्रीरामानुज जैसा काषाय वस्त्र पहनकर राजा के पास गये। राजा के बहुत कहने पर भी जब वे शैव मत को स्वीकार नहीं कर सके तो उनकी ऑखे निकाल ली गयीं तथा उन्हें उसी भीषण पीड़ा में श्रीरंगम वापस भेज दिया।

यादवाद्रि आगमन एवं चेल्लुनारायण के नये मंदिर का निर्माण

इधर श्रीरामानुज **61** वर्ष की आयु में **1078** ई में बदले वेष में अपने दाशरथि आदि अन्य शिष्यों के साथ वन के रास्ते जाते जाते तमिलनाडु से बाहर कर्नाटक के होय्यसला राजा के क्षेत्र में प्रवेश कर ही विश्राम लिये। थके एवं भूखे श्रीरामानुज को भील एवं जंगली लोगों ने फल आदि समर्पित कर उनका सम्मान किया। उसके बाद उनलोगों ने इन्हें पास के हर्दनहल्ली यानी रामनाथपुरम गॉव के श्री रंगदास यानी तिरूवरंगदास नामक एक ब्राह्मण के यहॉ ले गये। श्री रंगदास की पत्नी 'कट्टैलवारी कौंगुप्पिरात्ती' ने श्रीवैष्णवों को अन्नादि पकाकर उनका तदीयाराधन कराया। वहॉ से श्रीरामानुज शालग्राम गॉव गये जहॉ एक तरूण ब्रह्मचारी मिला जिसका नाम आंधपूर्ण था तथा वह इनका शिष्य होकर सदा साथ रहने लगा। इस गॉव को पहले मिथिलापुरी कहा जाता था जो अद्वैतियों का गढ़ था परन्तु श्रीरामानुज ने उन्हें परास्त कर अपना शिष्य बना लिया।

1079 ई में नरसिंह क्षेत्र के पूर्ण यानी तोण्डूर नंबी नामक भक्त के आतिथ्य के समय श्रीरामानुज के आगमन की सूचना जैन राजा विट्ठलदेव को मिली और उसने श्रीवैष्णवमंडली के साथ श्रीरामानुज को अपने यहॉ निमन्त्रित किया। श्रीरामानुज ने राजा की बेटी को देखते ही पिशाचवाधा से मुक्त कर दिया। श्रीरामानुज की अलौकिक शक्ति देखकर राजाने अपने दरवार के पंडितों की सभा बुलायी। श्रीवैष्णव धर्म की महत्ता से उन्हें अवगत कराते हुए श्रीरामानुज ने पर्दे की ओट में रहकर सभी पंडितों को शास्त्रार्थ में भी पराजित किया। तत्पश्चात् राजा श्रीवैष्णव बन गये तथा उसदिन से 'विष्णुवर्ध न' नाम से विख्यात हुए। पत्थरों की सहायता से यहॉ का तिरूमलासागर पुष्करणी श्रीरामानुज की देन है।

श्रीरामानुज **1079** में यादवाद्रि पहॅुचे। यादवाद्रि का पुराना नाम 'दुकगरूड़नहल्ली' था। कुछ दिन रहने के बाद वहॉ तुलसीकानन के पास वालुकाराशि में छिपे चेल्लुनारायण के विग्रह को खोद निकाले तथा उनकी स्थापना कर विधिवत पूजा कराने लगे। वयवृद्धों ने बताया कि पहले

यादवाद्रिपति भगवान की यहॉ पूजा होती थी परन्तु मुसलमानों के आतंक से उन्हें भूमिगत कर अर्चक लोग चले गये थे। यादवाद्रिपति ही चेल्लुनारायण भी कहे जाते हैं। आज वही भगवान अपने परमभक्त श्रीरामानुज के कारण प्रकट हो गये। कुछ ही अवधि में **1080** ई में वहॉ एक विशाल मन्दिर बन गया जो आज मेलकोटे के नाम से जाना जाता है। इसे 'तिरूनारायणपुरम' भी कहते हैं। वहॉ वर्तमान विशाल कल्याणी सरोवर के जल से पूजा अर्चना चलती थी। इस सरोवर के उत्तरी भाग में श्वेत मिट्टी भी मिली जो श्रीवैष्णवों को उर्ध्वपुण्ड्र तिलक करने के लिये उपयोगी हुआ। इसके पूर्व भक्तग्राम की मिट्टी से तिलक किया जाता था।

श्रीसम्पतकुमार भगवान को यादवाद्रि लाना

एक रात स्वप्न में श्रीरामानुज को यादवाद्रिपति ने बताया 'मेरे उत्सव विग्रह सम्पत कुमार हैं जो रामप्रिया भी कहे जाते हैं तथा वे दिल्ली में सुल्तान के महल में हैं। उन्हें यहॉ ले आओ।' श्रीरामानुज दिल्ली सुल्तान के यहॉ पहॅुच गये। सुल्तान इनसे प्रभावित होकर अपने महल में संग्रहित मूर्तियों को दिखाया परन्तु सम्पत कुमार उसमें नहीं थे। जव राजकुमारी के कक्ष की मूर्ति को दिखाया गया तो श्रीरामानुज वहुत प्रसन्न हुए। सुल्तान ने मूर्ति दे दी और श्रीरामानुज बड़ी शीघ्रता से उसे लेकर यादवाद्रि की दिशा में चल दिये। मार्ग में चाण्डालों ने सम्पतकुमार के विग्रह को ढ़ोने में सहायता की। जव राजकुमारी अपने कक्ष से मूर्ति को अनुपस्थित पायी तव वह उद्विग्न हो गयी। सुल्तान ने सेना के साथ राजकुमारी को श्रीरामानुज का पीछा करने के लिये भेज दिया। श्रीरामानुज सुल्तान की सीमा पारकर गये और भगवद्कृपा से निर्वाध यादवाद्रि पहॅुच कर सम्पत कुमार की विधिवत स्थापना कर दी। राजकुमारी भी पीछा करते यादवाद्रि आ गयी तथा श्रीरामानुज ने उसे मन्दिर में प्रवेश की अनुमति दे दी। कहते हैं सम्पत कुमार भगवान ने राजकुमारी को अपने में विलीन कर लिया। आज भी वीवी नाचियार की प्रतिमा भगवान के चरणारविन्द को सुशोभित करते रहती है। दिल्ली से यादवाद्रि लौटने में सम्पत कुमार को ढ़ोने में चाण्डालों ने बहुत सहायता की थी अतः उसीकी

कृतज्ञता में श्रीरामानुज ने **1083** ई से वर्ष में तीनदिन चाण्डालों को भी मन्दिर में प्रवेश करने की छूट दे दी। कहते हैं सुल्तानी का प्रेमी कुवेर नामक व्यक्ति था और वह भी साथ साथ यादवाद्रि आया था परन्तु जब सम्पत कुमार भगवान में सुल्तानी तिरोहित हो गयी तब कुवेर श्रीरंगम रंगनाथ भगवान की शरण में आ गया। भगवान रंगनाथ ने उसे जगन्नाथपुरी जाने की प्रेरणा दी और पुरी में ही जाकर कुवेर ने अपना शेष जीवन भगवान जगन्नाथ को अर्पि त कर दिया।

1085 ई में तोण्डूर में श्रीलक्ष्मीनारायण मंदिर का निर्माण तथा **1089** ई में वेलूर में पंचनारायण की स्थापना श्रीरामानुज की देन है। **1090** ई में श्रीरंगम से आये एक भक्त से पहलीवार पता चला कि महापूर्ण स्वामी परमपद कर गये तथा श्रीकुरेश अंधे होकर मदुरै के पास आळगार कोईल में रहते हैं। श्रीरामानुज ने तिरूनारायणपुरम में ही श्रीमहापूर्ण के सम्मान में उनका श्रीचूर्ण परिपालन किया तथा दिव्यप्रवंधम का अध्ययन उत्सव कराया। अपने एक शिष्य मारूतिनन्दन को आडगार कोईल श्रीसुन्दरबाहु भगवान के यहॉ भेजकर श्रीकुरेश के क्षेमकुशल का भी पता कराया। इसी शिष्य के माध्यम से नये चोलराजा ने श्रीरामानुज को श्रीरंगम लौटने का निमंत्रण भी भेजा।

यादवाद्रि से श्रीरंगम के लिए प्रस्थान
एवं सुन्दरबाहु भगवान की गोदम्मा की मिन्नत की पूर्ति

यादवाद्रि में अपनी प्रस्तर प्रतिमा 'तामर उहन्त तिरूमेनी' का आलिंगन करके श्रीवैष्णवों को सुपुर्द किया तथा **1090** ई में श्रीरामानुज श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर गये। प्रस्थान के पूर्व तिरूनारायण पुरम की व्यवस्था को अपने **52** शिष्यों में बॉट दी। तिरूमालेरूञ्जोलै यानी मदुरै के पास आळगर कोइल में भगवान सुन्दरवाहु की मिन्नत पूरी करने आ गये। आण्डाल यानी गोदा देवी ने अपना परिणय सम्बन्ध की मनसा पूरी होने पर सुन्दरबाहु भगवानको एक सौ घड़े खीर तथा एक सौ घड़े मक्खन अर्पित करने का माना था। भगवान रंगनाथ से परिणय के वाद आण्डाल भगवान में ही तिरोहित हो गयी थीं अतः उनकी सुन्दरबाहु भगवान की मिन्नत पूरी नहीं हो सकी थी।

श्रीरामानुज ने उसी मिन्नत को पूरा किया तथा श्रीविल्लीपुत्तूर जाकर गोदा मॉ का दर्शन लाभ प्राप्त किये। इसी कारण श्रीरामानुज को गोदाग्रज भी कहा जाता है। यहॉ से आळवारतिरूनगरी में दर्शन करते श्रीरामानुज ने मार्ग में अन्यदिव्य स्थलों का दर्शन किया तथा तदुपरान्त श्रीरंगम आ गये जहॉ इन्हें श्रीकुरेश से भेंट हुई।

श्रीरंगम में अध्ययन उत्सव का शुभारंभ

1091 ई में नम्माळवार तथा अन्य आळवार की मूर्ति बनवाकर श्रीरंगम में 'अध्ययन उत्सव' का पुनः शुभारम्भ कराया। दिव्यप्रवंधम के विधिवत पाठ को ही अध्ययन उत्सव कहते हैं। पूर्व में आळवार तिरूनगरी से नम्माळवार की मूर्ति लाकर अध्ययन उत्सव मनाने का प्रचलन था।

श्रीशैलपूर्ण स्वामी एवं श्रीकांचीपूर्ण स्वामी का परमपद गमन

1091 ई में श्रीशैलपूर्ण स्वामी ने शरीर छोड़ दिया तथा **1092** ई में श्रीकांचीपूर्ण स्वामी भी वैकुण्ठ सिधार गये। श्रीशैलपूर्ण स्वामी के परमपद गमन पर श्रीरामानुज तिरूपती गये। इस बार की यात्रा में यहॉ इन्होंने श्रीगोविन्दराज भगवान के मन्दिर का विधिवत शुभारंभ कराया।

श्रीवरदराज स्तव का समर्पण एवं श्रीभाष्य का विस्ताार

श्रीकुरेश द्वारा विरचित 'श्रीवरदराज स्तव' के भगवान वरदराज के समपर्ण के लिए **1093** ई में श्रीरामानुज श्रीकुरेश के साथ कांचीपुरम पधारे। यहॉ से श्रीरंगम लौटकर इन्होंने 'श्रीभाष्य' का **1095** ई में विस्तार कर इस पुनीत कार्य की पूर्णाहुति की। इसके पूर्व यह 'वेदान्त सार' एवं 'वेदान्त दीप' नाम से अलग अलग विरचित हुआ था। श्रीभाष्य में ब्रह्मसूत्र के चार प्रारम्भिक सूत्र को संपूर्ण वेदान्त का सार माना गया है। ये चार सूत्र हैं **1**। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। **2**।जन्माद्यस्य यतः **3**।शास्त्रयोनित्वात्। **4**।तत्तु समन्वयात्।

संक्षेप में श्रीभाष्य की चार विशेषतायें हैं । **1**। ब्रह्मसूत्र की सहायता से 'अनुभव' एवं 'अनुमान' के आधार पर युक्तिसंगत शैली में इसमें उपनिषद का सार पस्तुत किया गया है। **2**। संपूर्ण सृष्टि को अपने में समाहित करते हुए परमनियामक के शरीर के रूप में जीव एवं जगत की

व्याख्या है। 3। सात्विक जीवन दर्शन के आधारपर परमनियामक की 'भक्ति' ही एक मात्र उपाय है। 4। वैकुण्ठ लोक में परमनियामक के शाश्वत कैंकर्य में जीव को जाकर लगजाना ही मुक्तजीव का पुण्य फल है।

महाप्रयाण

श्रीसुन्दरबाहु भगवान के मंदिर आळगर कोईल से लौटकर श्रीरामानुज भगवान रंगनाथ के चरणाश्रित होकर साठ वर्षो तक श्रीरंगम में रहे तथा कांचीपुरम के अतिरिक्त श्रीरंगम से बाहर कहीं अन्यत्र नहीं गये। संन्यास ग्रहण के समय कांचीपुरम में श्रीकांचीपूर्ण स्वामी ने पहली बार इन्हें यतिराज कहा था। **1117** ई से इन्हें सार्वजनिक रूप से 'यतिराज' कहकर सम्बोधित किया जाने लगा।

एक बार **1119** ई में जब श्रीपेरम्बुदुर में श्रीरामानुज की प्रतिमा 'तान उहन्त तिरूमेनी' में श्रीवैष्णवजन प्राणप्रतिष्ठा कर नेत्रउन्मीलन कर रहे थे तो श्रीरंगम में श्रीरामानुज की ऑखों से दो बूँद रक्त टपकते देखा गया था। अपने महाप्रयाण के कुछ दिन पूर्व श्रीरंगम में भी श्रीवैष्णवों के अनुरोध पर श्रीरामानुज ने अपनी प्रतिमा 'तान आन तिरूमेनी' का आलिगन किया था।यादवाद्रि में भक्तों की इच्छा से तथा श्रीपेरम्बुदुर में स्वयं की इच्छा से एवं श्रीरंगम में भगवद् इच्छा से अपनी प्रतिमा का आलिंगन किया था। **120** वर्ष की परमायु में श्रीरामानुज अपने मौसेरे भाई तथा प्रियशिष्य गोविन्द की गोद में शिर रखकर एवं आंध्रपूर्ण की गोद में चरणारविन्द रखते हुए **1137** ई के माघ शुक्ल दशमी शनिवार के मध्याह्न में परमपद के लिये महाप्रयाण कर गये।

श्रीरामानुज के नौ रत्न

श्रीरामानुज की नौ रचनायें हैं ः **1**।वेदान्त सार ।**2**। वेदान्त दीप ।**3**।नित्य ग्रंथ। **4**।शरणागति गद्य। **5**।श्रीरंगम गद्य। **6**। श्रीवैकुण्ठ गद्य। **7**।वेदार्थ संग्रह। **8**।गीता भाष्य। **9**।श्रीभाष्य।

स्मरणीय तनियन

श्रीमन् श्रीरङ्गश्रियमनुदिनम् संवर्धय।
श्रीमन् श्रीरङ्गश्रियमनुदिनम् संवर्धय। .... श्रीरामानुज

सर्वदेश दशाकालेषु व्याहत पराकमा।
रामानुजार्य दिव्याज्ञा वर्धताम् अभिवर्धताम् .... तिरूक्कुरूहैप्पिरान पिल्लन
रामानुजार्यदिव्याज्ञा प्रतिवासरमुज्वला।
दिगन्तव्यापिनी भूयात् सर्वलोकहितैषिणि ....मुदलि आण्डान्

4।4 श्रीगोविन्दाचार्य

पुष्ये पुनर्वसुदिने जातं गोविन्ददेशिकम् ।
रामानुजपदांभोजराजहंसं समाश्रये।।

श्रीरामानुज जब यादवप्रकाश के यहाँ विद्यार्थी थे उस समय इनके सगे मौसेरे भाई गोविन्द भी इनके साथ ही पढ़ते थे। ये श्रीरामानुज के समकालीन थे तथा इनका भी जन्म **1017** ई में हुआ था। काशीयात्रा में जब यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज की हत्या की योजना बनायी थी उस समय गोविन्द ने ही समय पर श्रीरामानुज को सावधान कर मंडली छोड़कर भाग जाने को बाध्य किया था जिसके परिणामस्वरूप श्रीरामानुज जीवित कांची लौट आये थे। काशीयात्रा से लौटने पर यादवप्रकश के कहने पर गोविन्द श्रीकालहस्ती में रहकर शिवार्चना में तल्लीन रहते थे।

श्रीयामुनाचार्य के वरीय शिष्य श्रीशैलपूर्ण स्वामी यानी तिरूमला नंबी ने श्रीरामानुज की प्रेरणा से गोविन्द को श्रीवैष्णव मत में लाया था। श्रीशैलपूर्ण स्वामी नाता में श्रीरामानुज तथा गोविन्द के अपने मामा भी थे। गोविन्द श्रीवैष्णवमत स्वीकार करने के बाद श्रीरंगम आये परन्तु पुनः अपने गुरू श्रीशैलपूर्ण स्वामी की सेवा में तिरूमला लौट गये।

अनन्ताचार्य के पुष्पकैकर्य दर्शन करने जब श्रीरामानुज तिरूपति तथा तिरूमला गये थे उस समय अपने एक वर्ष के प्रवास में गोविन्द के साथ रहने का अवसर मिला था। एक बार उन्होंने गोविन्द को अपने गुरू तिरूमला नंबी के लिये विछावन लगाकर उसपर सोते देखा। इस बात की जानकारी जब तिरूमला नंबी को दी गयी तो गोविन्द को बुलाकर नंबी ने पूछा ' गुरू के विछावन पर सोने का फल जानते हो।' गोविन्द ने बताया 'नरक मिलता है। शय्या कॉटा विहीन आरामदायक है इसकी जॉच तो उसपर लेटकर ही किया जा सकता है। अगर मेरे नरक जाने से हमारे गुरू सुखपूर्वक शयन करें तो इस

तरह का दण्ड हमें स्वीकार है।' गोविन्द के विचार से श्रीरामानुज बहुत प्रसन्न हुए और गोविन्द की सराहना करने लगे।

एक दिन श्रीरामानुज ने देखा कि गोविन्द एक सॉप के मुँह में अंगुली डाले हुए है। पूछने पर पता चला कि उसके गले में कोइ कॉटा लगजाने के कारण वह तड़प रहा था। दयावश गोविन्द ने उसके मुँह में अंगुली डाल कर कॉटा निकाला था।

श्रीरामायण का पाठ पूरा कर लेने पर जब श्रीरामानुज तिरूपति से चलने लगे तो उन्होंने तिरूमला नंबी से गोविन्द को मॉग लिया। गोविन्द उदास मन से उनके साथ शोलंगर नरसिंह भगवान का दर्शन करते कांची तक आये। कांची में श्रीरामानुज ने उनके उदास मुख को देखकर पुनः तिरूपति जाने की अनुमति दे दी। हर्षित गोविन्द तिरूपति अपने गुरू के पास पहुँच गये। गुरू ने इनकी ओर देखा तक नहीं और भोजन के लिये भी नहीं पूछा। गुरूपत्नी के हस्तक्षेप पर भी नंबी गोविन्द के प्रति उदासीन ही रहे। गोविन्द उनका भाव समझकर पुनः कांची लौट गये तथा श्रीरामानुज की ही शरण ग्रहण करते हुए **1058** ई में श्रीरंगम आ गये।

श्रीरंगम में श्रीरामानुज की सेवा में लगन से लगा देख श्रीवेष्णवों ने गोविन्द की प्रशंसा की। गोविन्द सेवाभाव की प्रशंसा से प्रसन्न रहत थे। लोगों ने इसे अहंकार कहा और इसकी शिकायत श्रीरामानुज से की गयी। पूछने पर गोविन्द ने श्रीरामानुज को बताया 'मैं तो जड़ बुद्धि हूँ। जो भी सदगुण मुझमें दिखता है वे सब आपके गुण हैं। जब कोई प्रशंसा करता हूँ तो मैं उसे आपके गुणों की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न रहता हूँ।' श्रीरामानुज ने प्रसन्न होकर गोविन्द को गले से लगालिया।

कुछ दिन के बाद गोविन्द की मॉ एवं श्रीरामानुज के चाहने पर भी जब गोविन्द अपने भार्या के साथ गृहस्थ जीवन विताने से दूर रहे तो श्रीरामानुज ने उन्हें संन्यास दिला दिया तथा अपना ही नाम 'मन्नाथ' या 'एम्पेरूमनार' कहकर सम्बोधित किया। गोविन्द को श्रीरामानुज का नाम पसंद न आया तब श्रीरामानुज ने नाम के प्रथम एवं अन्तिम शब्दों को मिलाते हुए इनका नाम 'एम आर' यानी एमार कर दिया। जगन्नाथपुरी में श्रीमन्दिर

के सिंह दरवाजा के पास जो 'एमार मठ' है उसकी स्थापना श्रीरामानुज ने ही श्रीगोविन्द के नाम पर की थी।

जब श्रीरामानुज का महाप्रयाण हुआ था तो गोविन्द को उनके श्रीपाद को अपने गोद में रखने का सौभाग्य मिला था। श्रीरामानुज के बाद श्रीगोविन्द को ही श्रीरंगम का स्थानाधीश बनाया गया था। शीघ्र ही गोविन्द भी परमपद हो गये एवं श्रीरंगम का प्रभार पराशर भट्ट को मिला।

4।5 श्रीकुरेश स्वामी

पौषे हस्तसमुद्भूतं श्रीवत्सांकगुरूं भजे।
श्रीरामानुजयोगींद्रपदपंकजषट्पदम्।।

कांचीपुरम से तिरूपति के रास्ते **5** कि मी पर अवस्थित कूरम गॉव के प्रधान परिवार होने के कारण इनका नाम कुरेश या कुरनाथ है। तमिल में 'कुरत आळवान' कहा जाता है तथा जब कभी भी श्रीवैष्णव जन मात्र 'आळवान' कहते हैं तो उसका प्रायः अभिप्राय कुरेश स्वामी ही होता है। कुरेश स्वामी द्वारा एकवार तिरूवायमोळी की अनोखी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुज ने प्रशंसावश इन्हें 'आळवान' कह कर पुकारा था और तभी से यह नाम प्रसिद्ध हुआ। अधिकांशतः सभी श्रीवैष्णव साहित्य में कुरेश स्वामी के लिये 'श्रीवत्सांकचिह्न मिश्र' नाम का उपयोग देखा जाता है। यद्यपि आळवान आचार्य दीर्घा में नहीं आते हैं परन्तु श्रीरामानुज के परमप्रिय शिष्य होने के कारण इनकी वन्दना आवश्यक है। श्रीभाष्य की रचना मे आळवान का अमूल्य सहयोग रहा था। आळवान अगर नहीं होते तो चोलराजा शायद श्रीरामानुज की हत्या कर दिया रहता।

कुरम के जमीन्दार ब्राह्ण कुल में आळवान का आविर्भाव **1008** ई में हुआ था। कुछ अन्य स्रोत से इनका जीवन काल **1016** से **1107** ई भी माना जाता है। इनका विबाह **1045** ई में हुआ था और पत्नी का नाम आन्डाल था। **1054** ई में पहली पुत्री एवं **1057** ई में दूसरी पुत्र का जन्म हुआ था। कुरम में आळवान के यहॉ निरन्तर श्रीवैष्णवों एवं दीन दुखियो के कल्याणार्थ दान पुण्य कार्य होते रहता था। केशवपेरूमाल आळवान के

कुलदेवता थे और आज भी कुरम में केशव भगवान की सुन्दर सन्निधि है तथा अर्चापूजा विधिवत चलती रहती है।

प्रातः काल खुलने के बाद कुरम में आलवान के घर का विशाल दरवाजा अर्द्धरात्रि के समय बन्द होता था। उसके खुलने बन्द होने की आवाज वरदराजभगवान की सहभागिनी 'तायर' लक्ष्मी जी को सुनाई पड़ती थी। एकबार उन्होंने वरदराज भगवान से इस आवाज के बारे में जानकारी लेनी चाही तब भगवान ने आलवान के घर एवं धर्म कर्म की विशालता के बारे में बताया। तायर के निवेदन पर भगवान ने श्रीकांचीपूर्ण स्वामी से आळवान को अपने यहाँ बुलवाया। उस समय तक श्रीरामानुज संन्यास ले चुके थे। आलवान अपनी पत्नी आण्डाल के साथ दर्शनार्थ कांची उपस्थित हुए तथा श्रीरामानुज के शिष्य भी हो गये। इसके बाद से वे कुरम वापस नहीं गये। कुरम से आते समय आळवान ने अपनी सारी सम्पति केशवभगवान को समर्पित कर एक अकिंचन की तरह कांची आ रहे थे। रास्ते में एक जंगल से पार करते समय पत्नी को भय लगने लगा। पूछने पर पता चला कि एक सोना का कटोरा आळवान के जल सेवन हेतु पत्नी साथ में रख ली थीं। 'धन के कारण ही भय होता है' ऐसा कह आळवान ने कटोरा जंगल में फेंकवा दिया। आज भी कांचीपुरम के पास उस स्थान को 'जहाँ सोना का कटोरा फेंका गया' कह कर ही सम्वोधित करते हैं।

जब श्रीरामानुज श्रीरंगम आये तब आलवान भी पत्नी के साथ श्रीरंगम आये थे। भगवान एवं श्रीरामानुज की सेवा में तल्लीन रहते हुए श्रीरंगम में भिक्षावृति से ही आळवान अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे। एक दिन बहुत मूसलाधार वर्षा के कारण आळवान भिक्षा के लिये बाहर नहीं गये। उस दिन दोनों ने उपवास ही किया परन्तु पति के लिये चिन्तित होकर पत्नी ने बीते रात रंगनाथ भगवान का स्मरण कर लिया। मन्दिर से एक भक्त पर्याप्त प्रसाद लेकर उपस्थित हो गया। दोनों ने रात में वह प्रसाद ग्रहण किया और आळवान ने पत्नी से पूछा 'लगता है प्रसाद के लिये भगवान से विनती कर दिये थे।' पत्नी का स्वीकारात्मक उत्तर सुनकर भविष्य में भगवान से इस तहर की विनती करने से मना कर दिया।

प्रसाद के प्रभाव से आळवान को **1062** ई में जुड़वा दो पुत्र प्राप्त हुए थे जो 'भट्टर' एवं 'रामपिल्लै' कहे जाते थे। श्रीरामानुज ने गोविन्द को भेज जातकर्म आदि कराया तथा छः महीने बाद एक का नाम पराशर रखा तथा दूसरे का नाम व्यास रखा। यही बालक पराशर भट्ट हुए तथा श्रीरंगम के स्थानाधीश भी बने। इससे श्रीयामुनाचार्य के देह दर्शन के समय श्रीरामानुज द्वारा की गयी तीसरी प्रतिज्ञा की पूर्ति हुई।

श्रीभाष्य की रचना के पूर्व श्रीरामानुज आळवान के साथ कश्मीर शारदा पीठ से 'बोधायन वृति' ले कर आरहे थे। रास्ते में जब श्रीरामानुज विश्राम करने लगते तो आळवान पुस्तक का अध्ययन करते थे। अपनी तीक्ष्ण मेधा तथा विलक्षण स्मरण शक्ति से आळवान को संपूर्ण पुस्तक कंठगत हो गयी थी। जब शारदा पीठ के व्यव्स्थापक श्रीरामानुज से रास्ते में आकर पुस्तक छीन ले गये तो आळवान ने संपूर्ण पुस्तक को लिपिबद्ध कर श्रीरामानुज को समर्पित कर दिया। तदुपरान्त श्रीरंगम आने पर श्रीरामानुज ने आळवान को ही लिपिक बनाकर श्रीभाष्य की रचना का कार्य अंततः **1095** ई में पूरा किया।

जब शैव राजा ने **1078** ई में आळवान को श्रीरामानुज समझ **'शिवात् परतरं नास्ति'** पर हस्ताक्षर करने को कहा तब आळवान ने **'द्रोणमस्ति ततः परम्'** लिख दिया। संस्कृत में ये शब्द वजन के पैमाना के रूप में भी माने जाते हैं जिसमें द्रोण शिव से दूगना होता है। शैव राजा ने फलस्वरूप अत्याचारी प्रवृति से अभिभूत होकर आळवान के दोनों ऑख निकलवा लिये थे। यह घटना आळवान के साथ कांचीपुरममें घटी थी क्योंकि कांची चोल राज की राजधानी थी। आळवान अंधे होकर श्रीरंगम में आकर रह रहे थे जबकि श्रीरामानुज तमिलनाडु छोड़कर कर्नाटक में मैलेकोटे जाकर यादवाद्रिपति के मंदिर निर्माण तथा उनकीपूजा अर्चना की व्यव्स्था में लग गये थे।

एक दिन वे पत्नि के साथ मदुरै से **19** कि मी पर अवस्थित आळगार कोइल के सुन्दरवाहु भगवान के दर्शन के लिये प्रस्थान किये। मार्ग में ही **101** पद वाली संस्कृत में श्रीवैकुण्ठस्तव की रचना की जिसका पहला पद श्रीरामानुज की वन्दना है **'यो नित्यमच्युत ...... रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये'**। इसमें

व्यूह स्वरूप परवासुदेव के स्वरूप एवं विभूति का वर्णन है। सुन्दरवाहु भगवान के यहॉं पहुचने के पहले ही इन्होंने विभवातार की महिमा की वन्दना करते हुए दूसरी संस्कृत में **61** पदवाली रचना 'अतिमानुषस्तव' को भी पूरा कर लिया। सभी अवतार के आदिकारण रंगनाथ भगवान की वन्दना में प्रारंभ में ही चार श्लोक समर्पित हैं और अतिमानुषस्तव का श्लोक **3** जो नीचे उद्धृत है आळवान की सर्वोत्तम रचना कौशल का परिचायक माना जाता है।

'वज्र ध्वजांकुश सुधा कलशात पत्र पङ्केरूहाङ्क परिकर्म परीतमन्त ः।
आपादपङ्कज विश्रृङ्खल दीप्रमौले श्रीरङ्गिणश्चरणयोर्युगमाश्रयामः।।'

तदुपरांत नरसिंहावतार तथा त्रिविक्रमावतार की वन्दना की गयी है। भक्तराज जटायु की गति से प्रारम्भ कर **17** पद रामावतार की वन्दना में समर्पित हैं। इसके बाद **25** पद कृष्णावतार की वन्दना में रचे गये हैं। अंतिम **3** श्लोक में आळवान ने भगवान की शरणागति मांगी है।

आळवान ने 'सुन्दरबाहुस्तव' नामक तीसरी रचना आळगार कोईल के लंबे प्रवास में रची है। यह **132** पदों में संस्कृत में अर्चावतार की वन्दना के लिये रची गयी। आळवान की पांच रचनायें हैं जिसे पञ्चस्तव कहा जाता है तथा 'सुन्दरबाहुस्तव' सबसे बड़ी रचना है।

जब श्रीरामानुज ने यादवाद्रि में आळवान की रचनाओं का अवलोकन किया तो उन्होंने आळवान को वरदराज भगवान के यहॉं जाकर उनकी स्तुति की रचना करने को संवाद भेजा। इससमय तक अत्याचारी शैव चोलराजा का कंठ के दुःखदायी घाव से मृत्यु हो चुकी थी। आळवान कांची पहुँच गये तथा उन्होंने **102** पदवाली संस्कृत में 'वरदराजस्तव' की रचना की। इसमें अंतिम पद में 'रामानुजाघ्रिंशरणोस्मि ......' से उपसंहार किया। इसतरह से आळवान के प्रथम चार प्रबन्ध को प्रवन्धचतुष्टय भी कहा जाता है और पहली रचना 'श्रीवैकुण्ठस्तव' का शुभारंभ '......रामानुजस्य चरणौशरणं प्रपद्ये' वाले श्लोक से है तथा चौथीरचना 'वरदराजस्तव' का अंतिम श्लोक भी श्रीरामानुज के चरणारविंद में शरणाश्रय की दुहाई ही है। कहा जाता है कि श्रीरामानुज ने वरदराज भगवान से आळवान की ऑंखों की ज्योति की पुनर्प्राप्ति के उद्देश्य से इसकी रचना करायी थी। परन्तु आळवान ने वरदराज से

चोलराजा एवं उनके सहयोगियों की परमगति मांगी परन्तु अपनी कोई चर्चा नहीं की। श्रीरामानुज के दबाव में उन्होंने पुनः वरदराज भगवान से जब अपनी दृष्टि का उल्लेख किया तो उनकी ज्योति वापस आ गयी जो श्रीरामानुज के लिये अतिहर्ष का विषय बना।

अन्त में आळवान ने जीव के कल्याणार्थ भगवान से सदा निवेदन करने वाली माता लक्ष्मी की स्तुति में **11** श्लोक वाली 'श्रीस्तव' की रचना करके 'पञ्चस्तव' को पूरा किया। आळवान की अन्य भी रचनायें थीं परन्तु वे अब अनुपलब्ध हैं। इस बात का संकेत पराशर भट्ट के श्रीविष्णुसहस्रनाम के भाष्य में मिलता है। भगवान के 'अविज्ञात' नाम की व्याख्या में पराशर भट्ट ने कहा है '**सर्वज्ञता मेव मुपालभामहे त्वं ह्यज्ञ एवाऽऽश्रितदोषजोषणः**' तथा साथ में यह उल्लेख किया है '**अयं श्लोकः तात पादैरनुगृहीत**'। पञ्चस्तव में उक्त श्लोक नहीं मिलता है इसलिये यह प्रतीत होता है कि आळवान की किसी अन्य रचना से यह उद्धृत है।

रहसयत्रसार में श्रीवेदान्त देशिक स्वामी ने चरमश्लोक के प्रसंग में ' पराशरभट्टार्याः श्रीवत्सचिह्नमिश्राश्च स्वस्वरचितेषु नित्येषु' का उल्लेख किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि आळवान ने 'नित्यग्रंथ' की भी रचना की थी। वेदान्तदेशिक स्वामी ने 'चरमश्लोक' की व्याख्या में आळवान के मत का उल्लेख किया है परन्तु आळवान के ये ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं हैं।

एक समय श्रीरामानुज भगवद्विषय पर श्रीवैष्णवों के बीच कालक्षेप कर रहे थे। पसंगवश 'आत्मनिरूपक धर्म' का प्रश्न उठा। श्रीरामानुज स्वयं सक्षम होते हुए भी इसकी व्याख्या स्वयं न कर आळवान को श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी से समझने को भेज दिया। श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने छः माह तक आळवान की जिज्ञासा नहीं सुनी। आळवान लौटकर आये और श्रीरामानुज को वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए पुनः वहॉं जाने को उद्धत हुए। उसी समय श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने स्वयं आळवान को बुला भेजा तथा 'तिरूवायमोळी' के अष्टम शतक के अष्टम दशक की द्वितीय गाथा 'अडिये नुळळान्' का संदर्भ देकर 'आत्मनिरूपक धर्म' को समझाया। परमात्मा जीवात्मा में प्रवेश करने के लिये प्यासे की तरह आतुर रहते हैं। नम्माळवार के भाव से अवगत

कराते हुए उन्होंने कहा कि 'भगवान के दासत्व' यानी 'शेषत्व' को ही आत्मबोधक कहा गया है।

एक बार भगवान रंगनाथ की पुरोहिती के लिये जब श्रीरामानुज ने अमुदनार से निवेदन किया तो अमुदनार ने श्रीवत्सचिह्नमिश्र का ही नाम प्रस्तावित किया और स्वयं को उसकार्य से मुक्त कर लिया। पुरोहिती का तात्पर्य है रंगनाथभगवान की सन्निधि में वेद पुराण पठन कैंकर्य तथा पञ्चांग श्रवण आदि को संपादित करना। तब से आळवान ने ही भगवान का पौराणिक कैंकर्य किया तथा उनके बाद पराशर भट्ट तथा उनके वंशज इस कार्य को संपादित करते रहे तथा इसीकारण से ये लोग 'श्रीरंगेशपुरोहित' कहे जाने लगे।

श्रीपरकाल स्वामी का कार्तिक महीने में वृश्चिक के सूर्य में कृत्तिका नक्षत्र में अवतार हुआ था। इस कृत्तिका से लेकर श्रीकुरेश आळवान के मकर के हस्ता तक की अवधि को ' तिरूकार्त्ति ' कहते हैं। इस अवधि में दिव्यप्रबंधम के मात्र 'तिरूपुळिळयेळच्चु' तथा 'तिरूप्पावै' के ही घरों में पाठ होते हैं। बाकी प्रबन्धों का देवगान की तर्ज पर मंदिरों में समूह में ही पाठ होता है जिसे 'अध्ययन उत्सव' कह जाता है। तिरूकार्त्ति का अंतिम दिन मंदिरों तथा घरों में दीप जलाकर किया जाता है जो यहाँ दक्षिण में उत्तर भारत की दीपावली की तरह मनाया जाता है।

4।6 श्री पराशर भट्ट

माधवे मास्यनुराधाजातं भट्टार्यदेशिकम्।
गोविंदगुरूपादाब्जभृंगराजमहं भजे।।

रंगनाथ भगवान के प्रसाद के स्वरूप जब **1062** ई में श्रीकुरेश स्वामी के दो पुत्र हुए तब श्रीरामानुज ने गोविन्द को भेजकर द्वय मंत्र से शिशुओं का संस्कार कराया था। बाद में श्रीरामानुज ने स्वयं इनका नामकरण किया। पराशर भट्ट के गुरू के रूप में सवजगह उल्लेख गोविन्द स्वामी का ही है। श्रीविष्णुसहस्रनाम की व्याख्या के प्रारम्भ में आचार्य अभिनन्दन में प्रथम नाम पराशर भट्ट ने 'वन्दे गोविन्द तातौ' उल्लेख किया है।

बचपन से ही पराशरभट्ट ने अपनी कुशाग्र मेधा का परिचय दिया था। एक बार सर्वज्ञ वेदान्ती श्रीरंगम में अपनी विद्वत्ता की डंका पिटवा रहे थे तब बालक पराशर ने एक मुट्ठी धूल लिया और सर्वज्ञ से पूछा 'आप तो सर्व ज्ञ हैं। बताईये मेरी मुट्ठी के धूल की संख्या क्या है।' सर्वज्ञ नतमस्तक हो गये तथा इन्हें गोद में उठाकर कहा ' आप ही मेरे गुरू हैं।'
गोविन्द स्वामी ने इन्हें बचपन में एकबार भगवान के अनन्तगुण बताते हुए कहा 'अणोरणीयान महतो महीयान्।' बालक पराशर ने पूछा 'एक ही भगवान के ये दो परस्पर विरोधी गुण कैसे हो सकते हैं।'
श्रीरामानुज तिरूवायमोळी की एक व्याख्या में तल्लीन थे। उसी व्याख्या के प्रसंग में भगवान द्वारा ब्रह्मा के चुनाव का प्रसंग उठा। श्रीरामानुज ने वहॉ उपस्थित अन्य लोगों से पूछने के बाद जब संतुष्ट न हुए तब उन्होंने पराशर से पूछा। इनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुज बहुत ही प्रसन्न हुए तथा इनको अपने सिंहासन पर बैठाकर फूल के मुकुट से अलंकृत करते हुए कहा 'पराशर भट्ट सदा मेरे समान ही सम्मान पाने के अधिकारी हैं।'

पराशर भट्ट की श्रीविष्णुसहस्रनाम पर टीका 'भगवद गुण दर्पण' के नाम से विख्यात है। इसके अलावे इन्होंने लक्ष्मी जी की स्तुति में 'गुणरत्नकोश' तथा 'श्रीरंगनाथस्तोत्र' जैसी भक्तिपूर्ण रचनायें लिखीं। इनके पूर्व से ही 'मूल मंत्र' 'द्वय मंत्र' एवं 'चरम मंत्र' के रहस्यार्थ को सार्वजनिक करने की परम्परा नहीं थी। इसे शिष्य अपने गुरू से ही कालक्षेप में प्राप्त करता था। 'द्वय मंत्र' के रहस्यार्थ को श्रीरामानुज स्वामी ने श्री पेरिया नंबी यानी श्री महापूर्ण स्वामी से सीखा था। श्री पेरिया नंबी ने ही 'मूल' एवं 'चरम' के रहस्यार्थ के लिये इन्हें गोष्ठीपूर्ण स्वामी के यहाँ भेजा था। श्रीरामानुज को अठारह बार के प्रयास के बाद श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी यानी श्रीकोट्टियूर नंबी ने मूल एवं चरम मंत्र का रहस्यार्थ बताया था। गुरू की आज्ञा का उल्लघंन करते हुए श्रीरामानुज ने इसे मौखिक रूप से सार्वजनिक कर दिया परन्तु इनको लिपिबद्ध कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं करने की परम्परा चलती रही। पहली बार श्रीपराशर भट्ट ने रहस्यार्थ को 'अष्टश्लोकी' के नाम से लिपिवद्ध कर प्रकाशित किया। इनकी अन्य संस्कृत की रचनायें हैं ः 'अध्यात्म खंड द्वय विवरणम' 'तत्व

रत्नाकर' 'दशावतार स्तोत्र' 'मुक्तक श्लोक' 'लक्ष्मी कल्याण' 'श्रीरंगराज स्तव' 'कियादीप या नित्यार्चना विधि' 'क्षमा षोड़षी'। गोविन्द स्वामी के बाद लम्बे समय तक पराशर भट्ट श्रीरंगम स्थान के स्थानाधीश रहे।

4।7 श्री वेदांति स्वामी

फाल्गुनोत्तर फाल्गुन्यां जातं वेदांतिनं मुनिम्।
श्रीपराशरभट्टार्यपादरेखामहं भजे।।

मीन के सूर्य में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में प्रादर्भूत श्रीपराशरभट्ट के शिष्य वेदान्तिमुनि की वन्दना करता हूँ। श्रीवेदान्ति स्वामी श्रीवैष्णवों के बीच 'नाञ्जीयर' के नाम से स्मरणीय हैं। इनका प्रादुर्भाव मेलेकोट के पास **1054** ई में हुआ था तथा **95** वर्ष की अवस्था तक इस धराधाम पर विराजमान रहे। पराशर भट्ट के बाद नाञ्जीयर ही श्रीरंगम के स्थानाधीश हुए थे।

इनका प्रथम नाम मध्वाचारी था और ये एक अजेय अद्वैत विद्वान थे और वेदान्ति के नाम से जाने जाते थे। इनकी ख्याति सुनकर श्रीरामानुज ने पराशर भट्ट को मेलेकोटा भेजा था। शास्त्रार्थ के पूर्व ये पराशर भट्ट का नाम एक ब्राह्मण से सुन चुके थे और स्वयं भट्ट से मिलने को आतुर थे। इसीबीच भट्ट स्वयं एक गरीब ब्राह्मण की तरह इनके यहाँ पहुँचे। जब मध्वाचारी ने गरीब ब्राह्मण के वेष में इन्हें द्वार पर खड़ा देखा तो इन्हें भोजन करते ब्राह्मणों के साथ भोजन करने को कहा। भट्ट ने कहा 'अन्न की भूख नहीं है शास्त्रार्थ की भूख से पीड़ित हूँ।' मध्वाचारी समझ गये कि ये पराशर भट्ट हैं। नौ दिन के शास्थार्थ में इन्हें पराजित कर भट्ट ने इन्हें अपना शिष्य बनालिया। तबसे ये विशिष्टिाद्वैत के एक सबल स्तंभ के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

मध्वाचारी एक उदार ब्राह्ण थे तथा अपने घर पर नित्य भूखे निर्ध न को भोजन दिया करते थे। इनकी दो पत्नियाँ थीं और एकदिन एक गरीब ब्राह्मण को इनकी पत्नियों ने भूखे लौटा दिया। मध्वाचारी ने दुःखी होकर अपनी संपति का तीन भाग किया जिसमें से दो भाग अपनी पत्नियों को दे दिया तथा तीसरा भाग पराशर भट्ट को समर्पित कर दिये। इसके बाद इन्होंने संन्यास ले लिया तथा श्रीरंगम के लिये प्रस्थान कर गये। मार्ग में इनकी भेंट तिरूमला वाले अनन्ताचार्य से हुई। इन्होंने बताया 'पराशर भट्ट की शरणागति

ले लेने पर परमपद निश्चित है। इस संन्यास की कोई आवश्यकता नहीं है। मूल मंत्र में जन्म हो जाने के बाद द्वय का नित्य अनुसंधान करते रहें।' मध्वाचारी ने जब श्रीरंगम पहुँच कर पराशर भट्ट को साष्टांग किया तब भट्ट ने इनका आलिंगन करते हुए इन्हें 'नाञ्जीयर यानी मेरे जीयर' कह कर सम्बोधित किया।

पराशर भट्ट के साथ नाञ्जीयर के बहुत ही गूढ़ गूढ़ प्रश्नों के समाधान से सत्संग हुआ करता था। श्रीरामानुज के प्रिय शिष्य तिरूक्कुरूकै प्पिरान पिळ्ळन ने तिरूवायमोळी की '**आरयिर पदी**' यानी छः हजार पदों में व्याख्या लिखी थी। नाञ्जीयर ने तिरूवायमोळी की '**ओनपदिनायिर पदी**' यानी नौहजार पदों में व्याख्या लिखी साथ ही साथ दिव्यप्रबन्धम के अन्य कई प्रबन्धों की भी टीका लिखी जो आज उपलब्ध नहीं हैं। इन्होंने एक सौ बार तिरूवायमोळी पर व्याख्यान दिये थे और सौवें व्याख्यान की पूर्णता के दिन इनके परमप्रिय शिष्य नामपिळ्ळै ने इनकी विशेष पूजा अर्चना से सम्मान किया था।

4।8 श्रीनम्बिळ्ळै स्वामी

कार्तिके कृत्तिकाजातं कलिजिद्दासमाश्रये।
वेदांतिमुनिपादाब्जश्रितं सूक्तिमहावर्णवम्।।

वृश्चिक के सूर्य में कृत्तिका नक्षत्र में कलिको जीतनेवाले वेदान्तिमुनि के शिष्य कलिवैरीदास स्वामी की वन्दना करता हूँ। श्री नम्बिल्लै ही कलिवैरीदास स्वामी कहे जाते हैं। तमिलनाडु में नम्बिल्लै के नाम से ही इनकी प्रसिद्दि है। इनको परकाल स्वामी का दूसरा अवतार माना जाता है और इनका एकनाम तीरूकलिकन्रिदासार भी है।

नम्बिळ्ळै का जन्म स्थान नाम्बूर था तथा इनका मूल नाम नाम्बूर वरदराज था। ये नाञ्जीयर के प्रियतम शिष्य थे। नाञ्जीयर ने जब तिरूवायमोळी की व्याख्या पूरी कर ली तब उन्होंने पाण्डुलिपि वरदराज को देते हुए कहा कि इसे रेशमी कपड़े पर लिपिवद्ध करना है। वरदराज को घर जाने के लिये कावेरी तैर कर पार करना होता था। रात में वरदराज इसे शिर पर कपड़ा से बांध कर कावेरी पार कर रहे थे। संयोगवश कपड़ा खुल कर

कावेरी की तेज धार में बह गया। वरदराज अपने गुरू नाञ्जीयर की पाण्डुलिपि को कावेरी से बचा कर निकाल नहीं सके। घर जाकर इन्होंने अपनी स्मरण शक्ति से जो कथा में नाञ्जीयर से सुनते थे उसे लिपिबद्ध किया। जब इसे इन्होंने नाञ्जीयर को समर्पित किया तो नाञ्जीयर पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए परन्तु वे वार्ता के अन्तराल जो बोले थे परन्तु लिपिबद्ध करना भूल गये थे उन प्रकरणों का भी उल्लेख देखा। वरदराज से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कावेरी की घटना से नाञ्जीयर को अवगत करा दिया। वरदराज की मेधा से प्रसन्न होकर नाञ्जीयर ने इन्हें गले लगाते हुए 'नम्बिळ्ळै' कहा यानी 'हमारा प्यारा बच्चा'। उसदिन से वरदराज नम्बिल्लै के नाम से ही पुकारे जाने लगे।

वडक्कुदीरूविथि पिळळै एवं पेरियवचनपिळळै इनके दो प्रमुख शिष्य थे। पहले शिष्य ही आचार्य परम्परा के संवाहक हुए और प्रसिद्ध पिळळै लोकाचार्य इन्हीं के बड़े पुत्र थे। इनके अनेकों शिष्यों को देखकर नाञ्जीयर बहुत प्रसन्न होते थे। इनकी बढ़ती लोकप्रियता से चिढ़कर एक दिन मुदलीअण्डान के प्रपौत्र कन्दाडै तोळप्पर ने भगवान के समक्ष इनको डॉटा। मदुलीअण्डान को ही दाशरथि कहा जाता है तथा ये श्रीरामानुज के प्रथम शिष्य थे। जब तोळप्पर घर गये तो मंदिर में नम्बिल्लै को अपमानित करने के कारण इनकी पत्नी ने इनसे बोलना बन्द कर दिया। बाद में तोळप्पर जब अपनी पत्नी के कहने पर नम्बिल्लै से क्षमा याचना के लिये घर से निकले तो इन्होंने नम्बिल्लै को अपने वरामदे में देखा। नम्बिल्लै इनके चरण पर गिरगये तथा तोळप्पर के हृदय को दुःखी करने के लिये क्षमा मॉगी। इनके व्यवहार से आश्चर्यचकित होते हुए तोळप्पर ने इन्हें उठाकर हृदय से लगाते हुए कहा कि आप मात्र श्रीरंगम के कुछेक वैष्णवों के ही गुरू नहीं हैं परन्तु समग्र संसार के गुरू हैं और इनको 'लोकाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया।

नम्बिल्लै ने अपने प्रखर एवं तेजस्वी शिष्य पेरियववनपिळळै से तिरूवायमोळी की व्याख्या लिखवायी जिसे **24000** पदोंवाला '**इरपत्तु नालायिर पदी**' कहा गया तथा यह श्रीमद्वाल्मीकि रामायण की तरह **24000** पदों में

विरचित है। पेरियवचनपिळळै ने श्रीमद्वाल्मीकि रामायण पर भी अलग से विशेष व्याख्या लिखी जो 'तनिश्लोकम' के नाम से प्रसिद्ध है। दिव्यप्रबन्धम के अन्य सभी प्रबन्धों पर भी पेरियवचन के रहस्यार्थ के साथ टीकायें श्रीवैष्णवों की अमूल्य निधि हैं। पेरिया तिरूमोळी के सातवें शतक का दसवां दसक दिव्यदेश तिरूकन्नमंगै के भगवान की स्तुति है। यह स्थान कुंभकोनम से **40** कि मी पर तथा तिरूवरूर से **6** कि मी पर स्थित है। फलश्रुति के अंतिम पाशुर **7।10।10** में आळवार संत ने बताया है कि भक्तों को तो पाठ करने से लाभ होगा ही भगवान को भी स्वयं इसके पाठ करने से उनका ज्ञान बढ़ेगा। ऐसी मान्यता है कि भगवान ने आळवार संत की वाणी को पेरियवचन पिल्लै के रूप में अवतार लेकर चरितार्थ किया। पेरियवचन पिल्लै स्वामी का अवतार नक्षत्र भगवान कृष्ण का जन्म नक्षत्र रोहिणी है। आळवार संत का अवतार नम्बिल्लै के स्वरूप में हुआ जिनका अवतार नक्षत्र कार्तिक मास का कृत्तिका है। नम्बिल्लै स्वामी पेरियावचन पिल्लै स्वामी के गुरू थे। इस तरह से भगवान ने पेरियवचन पिल्लै स्वामी के स्वरूप में पधारकर नम्बिल्लै स्वामी के स्वरूप में अवतरित आळवार संत का शिष्यत्व स्वीकार किया।

नम्बिल्लै द्वारा तिरूवायमोळी पर दिये गये व्याख्यान को वडक्कुदीरूविथि पिळळै ने लिपिबद्ध किया था जिसमें **36000** यानी '**मुपदआरायर**' पदी हैं तथा इसे '**इडु**' के नाम से जाना जाता है। इस प्रसंग में एक रोचक कथा सुनी जाती है। जब वडक्कुदीरूविथि पिळळै ने इसे नम्बिल्लै को समर्पित किया था तो इसका अवलोकन करके आचार्य बहुत प्रसन्न हुए परंतु उन्होंने यह कहते हुए इस रचना को अपने पूजा घर में रख दिया कि विना उनकी अनुमति के इसकी रचना हुई है। कुछ समय वाद नम्बिल्लै ने इस रचना को अपने प्रिय शिष्य इयुन्नी माधव को दे दिया। माधव स्वामी ने इसे अपने पुत्र पद्मनाभ को दिया। अळगर कोईल सन्निधि यानी मालीरूञ्जोलै में भगवान की सन्निधि में यह रखा रहा था और माधव स्वामी ने अपने पुत्र पद्मनाभ को दिया था। पद्मनाभ स्वामी ने इसे अपने शिष्य नालुर पिल्लै को दिया जिनका दूसरा नाम कोळवराह प्पेरूमाल भी था। जब पद्मनाभ

स्वामी इसे अपने प्रिय शिष्य को देना चाहे तो वे शिष्य के साथ कांची श्रीवरदराज स्वामी के समक्ष गये। पद्मनाभ स्वामी ने इसे आचार्य शिष्य परंपरा में गुप्त रखने की मंशा के साथ शठारी एवं ईडू को जब नालुर पिल्लै को दिया तो वरदराज भगवान की मुखाकृति बदल गयी एवं अर्चक ने पद्मनाभ स्वामी को बताया कि पेरूमाल चाहते हैं कि यह अब गुप्त न रहके वैष्णवों के बीच प्रसारित हो। पद्मनाभ स्वामी ने इस आदेश को स्वीकार किया एवं अपने शिष्य नालुर पिल्लै को इसे प्रसारित करने को कहा। नालुर स्वामी ने ईडू को लेकर वरदराज भगवान के मन्दिर की प्रदक्षिणा की एवं इसके प्रसार में लग गये। तदुपरांत नालुर स्वामी ने इसे अपने पुत्र अच्चन पिल्लै को दिया जिन्होंने उदारतावश इसे अपने शिष्यों में प्रसारित किया और इन्हीं शिष्यों में तिरूवायमोळी पिल्लै भी थे। स्मरण रहे कि तिरूवायमोळी पिल्लै ही वरवरमुनि स्वामी के आचार्य थे जिन्होंने रंगनाथ भगवान के समक्ष ईडू को पेरिया जीयर यानी वरवरमुनि स्वामी को समर्पित कर दिया था।

श्रीभाष्य की एक टीका श्रुतप्रकाशिका है जो **36000** श्लोकों में है। तिरूवायमोळी के **36000** पदों वाले व्याख्यान की रचना श्रुतप्रकाशिका के पूर्व हो चुकी थी परंतु बाद में विद्वज्जनों ने दोनों की तुलना की तथा तिरूवायमोळी के व्याख्यान को 'ईडु' से संबोधित किया यानी जो श्रुतप्रकाशिका के समान है। इसीलिए इसे ईडु कहा जाने लगा क्योंकि इडु का शाब्दिक अर्थ है 'समानता'।

4।9 वडक्कुदीरूविथि पिळळै यानी श्रीकृष्णपाद स्वामी

ज्येष्ठे स्वातिसमुद्भूतं जगदार्यपदाश्रयम् ।
उदकप्रतोलिनिलयं कृष्णपादं समाश्रये।।

ज्येष्ठ मास के स्वाती नक्षत्र में प्रादुर्भूत लोकाचार्य यानी श्रीनम्बिळळै के शिष्य श्रीकृष्णपाद स्वामी की वंदना करता हूँ। श्रीकृष्णपाद स्वामी यानी वडक्कुदीरूविथि पिळळै का जन्म कांचीपुरम के पास मुदुम्बे स्थान में हुआ था। बाद में ये श्रीरंगम में उत्तरवीथी के केशवपेरूमाल मंदिर में रहते थे। गृहस्थ जीवन में रूचि नहीं रहने पर भी माँ ने कम ही अवस्था में परिणयसूत्र

में बाँध दिया था। गुरू श्रीनम्बिळळै की प्रेरणा से इन्होंने गृहस्थ धर्म में रूचि दिखायी और दो पुत्र रत्न प्राप्त किये। गुरू श्रीनम्बिळळै की लोकाचार्य उपाधि के आधार पर बड़े पुत्र का नाम पिळळै लोकाचार्य रखा। दूसरे पुत्र का नाम रंगनाथ भगवान के नाम पर 'अळगिया मनवाल पेरूमाल नायनार' रखा। दोनों पुत्र की मेधा से श्रीनम्बिळळै बहुत प्रसन्न रहते थे और ये दोनों पुत्र श्रीवैष्णव परम्परा के दो प्रकाश स्तंभ के रूप में विख्यात हुए। कनिष्ठ पुत्र नायनार ने 'आचार्य हृदय' नामक पुस्तक की रचना की जो मणिप्रवाल में है तथा सूत्रों में सम्वद्ध है। इस पुस्तक में तिरूवायमोळी की विलक्षण व्यख्या प्रस्तुत करते हुए नम्माळवार के भक्तिमय हृदय का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।

श्रीकृष्णपाद स्वामी दिन में जो भी वार्ता अपने गुरू से सुनते थे उसे रात में लिपिवद्ध कर लेते थे। अंततः इसके सुखद परिणम के रूप में श्रीनम्बिळळै के तिरूवायमोळी पर दिये गये व्याख्यान को इन्होंने **36000** पदी में संचित किया जो 'ईडु' के नाम से विख्यात है।

4।10 श्रीपिळळै लोकाचार्य स्वामी

तुलायां श्रवणे जातं लोकार्यमहमाश्रये।
श्रीकृष्णपादतनयं तत्पदांभोजषटपदम्।।

तुला के सूर्य में श्रवण नक्षत्र में प्रादुर्भूत श्रीकृष्णपाद स्वामी के पुत्र श्रीपिळळै लोकाचार्य की वंदना करता हूँ। इनका जीवनकाल **1205** ई से **1311** ई तक का रहा है। ये कांचीपुर के वरदराज भगवान के अंश से अवतरित बताये जाते हैं। एक बार एक श्रीवैष्णव 'मनल पक्कत्तु नाम्बि' को वरदराज भगवान ने स्वप्न देकर श्रीवैष्णवमंत्र रहस्य को समझाते हुए विशद जानकारी के लिये कावेरी के बीच स्थित श्रीरंगम में बुलाया। श्रीरंगम आने पर उन्होंने श्रीलक्ष्मीनरसिंह मंदिर में श्रीपिळळै लोकाचार्य स्वामी को मंत्र रहस्यार्थ बताते सुना। जैसा स्वप्न में स्वरूप देखा था वैसा ही पाया। वे अपने स्वप्न की बात बताकर श्रीपिळळै लोकाचार्य के शिष्य हो गये।

यद्यपि पहली बार श्रीपराशर भट्ट ने 'अष्टश्लोकी' लिखकर मंत्रों के रहस्यार्थ

को प्रकाशित किया परन्तु रहस्यार्थ के ग्रंथों के श्रीपिळ्ळै लोकाचार्य एवं श्रीवेदान्त देशिक स्वामी ही प्रथम आचार्यपुरूष माने जाते हैं। हालांकि पिल्लैलोकाचार्य के पिता के समकालीन श्रीनम्बिळ्ळै के ही एक दूसरे शिष्य श्रीपेरियावाचनपिळ्ळै थे जो मेधावी प्रतिभा के धनी थे तथा उन्होंने संपूर्ण दिव्यप्रबन्धम के व्याख्यान के अतिरिक्त रहस्यमंत्रों पर भी पुस्तकें लिखीं थी परन्तु रहस्यार्थ की पुस्तकें अब उपलब्ध नहीं हैं। श्रीपिळ्ळैलोकाचार्य स्वामी की सभी रचनायें मणिप्रवाल में है जो संस्कृत एवं तमिल के शब्दों के सम्मिश्रण से बने हैं। 'श्रीवचनभूषण' तथा 'तत्वत्रयम' एवं 'मुमुक्षुपडी' इनकी अनमोल कृति हैं जो तमिल सूत्र की शैली पर आधारित हैं। 'मुमुक्षुपडी' रहस्यमंत्रार्थ के लिये अतिशय प्रसिद्ध है। मूल तमिल में होने के कारण उत्तर भारतीयों की सुविधा के लिये इनके संस्कृत एवं अंग्रेजी टीकायें उपलब्ध होती हैं। अयोध्या में लंबे समय तक निवास करने वाले श्रीरंगम के श्रीरंगनारायणजीयर की संस्कृत में 'मन्त्रार्थ दीपिका' बहुत प्रसिद्ध है जो 'मुमुक्षुपडी' की टीका है। ये श्रीवेदान्त देशिक स्वामी के समकालीन थे । श्रीवेदान्त देशिक स्वामी ने रहस्यग्रंथों एवं अनेकों स्तोत्रों का सृजन अधिकांशतः संस्कृत में किया इसके अतिरिक्त इनकी कुछेक रचनायें मणिप्रवाल में भी छपी हैं। श्रीपिळ्ळैलोकाचार्य ने सब मिलाकर निम्नांकित अष्टादश रहस्यग्रंथों का सृजन किया जो सभी तमिल या मणिप्रवाल में हैं।

1। मुमुक्षुपडी । **2**। तत्वत्रय। **3**। अर्थपञ्चक। **4**। श्रीवचनभूषण। **5**। अर्चिरादि। **6**। प्रमेयशेखर। **7**। प्रपन्न परितारणम् । **8**। सार संग्रह। **9**।संसार साम्राज्यम् । **10**। नवरत्नमालै। **11**। नवविध सम्बन्धम्। **12**। यादृशिखाडी। **13**। परन्दपडी। **14**। श्रियपतिपडी। **15**। तत्वशेखरम् **16**। तनिद्वयम् । **17**। तनिचरमम् । **18**। तनिप्रणवम्।

जब मुसलमानों ने श्रीरंगम पर आक्रमण कर यहाँ खून की धारा बहा दी वैसी विषम परिस्थिति में भी श्रीपिळ्ळै लोकाचार्य ने मंदिर के मूलस्थान को पत्थर की दीवारों से घेरकर सुरक्षित करते हुए स्वयं उत्सव मूर्ति नमपेरूमाल को ले कर श्रीरंगम से बाहर निकल गये। नमपेरूमाल की सेवा करते जंगलों में ही इनका अंतिम समय बीता। इनके परमपद होने पर शिष्यों ने नमपेरूमाल

को मुसलमानों के अत्याचार से **60** वर्षो तक तिरूमला आदि स्थानों पर रखते हुए सुरक्षित रखा।

4।11 श्रीशैलेश स्वामी

विशाखायां समुद्भूतं वैशाखे मास्यहं भजे।
श्रीशैलेशगुरूं लोकदेशिकांघ्रिसमाश्रितम्।।

वैशाख माह के विशाखा नक्षत्र में प्रादुर्भूत श्रीपिळ्ळै लोकाचार्य के शिष्य श्रीशैलेश स्वामी की वन्दना करता हूँ। इनका जन्म **1307** ई में हुआ था। निरन्तर तिरूवायमोळी पर वार्ता में रत रहने के कारण इनको 'तिरूवायमोळी पिळ्ळै' कहा जाता है। ये पिळ्ळै लोकाचार्य के शिष्य 'कुरूकुल उत्तम दास' के शिष्य थे। श्रीशैलेश का एक और नाम 'तिरूमला नंबी' भी था चूँकि तिरूमला से इनका गहरा सम्बन्ध था। इनका जीवनकाल आळवारतिरूनगरी में बीता। यहाँ श्रीरामानुज स्वामी का स्वतंत्र मन्दिर का निर्माण कर अपने शिष्य वरवरमुनि को अर्चक तथा व्यवस्थापक बना दिया था। वरवरमुनि बाद में श्रीवैष्णव मत के सबल आधार स्तम्भ के रूप में विख्यात हुए। श्रीशैलेश स्वामी का **1410** ई में आळवारतिरूनगरी में परमपद हो गया था।

4।12 श्रीवरवरमुनि स्वामी

तुलामूलार्कसंभूतं श्रीशैलेशपदाश्रयम्।
यतींद्रपादप्रवणं वंदे वरवरं मुनिम्।।

तुला के सूर्य में मूल नक्षत्र में प्रादुर्भूत श्रीशैलेश स्वामी के चरणाश्रित रामानुज स्वामी के पादसेवन में परायण श्रीवरवर मुनि की वन्दना करता हँ।

श्रीवरवरमुनि का जीवनकाल **1370** ई से **1443** ई तक का रहा है। जन्मस्थल आळवारतिरूनगरी के पास 'किदरम' गाँव है। वचपन का इनका नाम भगवान रंगनाथ के नाम पर था 'अळगिया मनवालन' या रम्यजामातृ। इनके अन्यनाम हुए 'मनवाल मामुनि' तथा 'वरवरमुनि'। इनके पिता तिळककुडनाथन या तारतअन्नन ने घरपर ही प्रारम्भिक शास्त्रगत ज्ञान देते हुए आळवारतिरूनगरी

में श्रीशैलेश स्वामी के पास भेज दिया था। उनसे दीक्षित होकर इन्होंने पूर्वा चार्य के मंत्ररहस्य ग्रंथों का गहरा अध्ययन किया तथा दिव्यप्रबन्धम के रहस्यार्थ से भी भली भाँति लाभान्वित हुए। आळवारतिरूनगरी में गुरू के आदेश पर श्रीरामानुज स्वामी की नवनिर्मित सन्निधि में अर्चक के रूप में काम करते हुए इन्होंने संस्कृत में 'यतिराजविंशति' लिखा।

कम ही अवस्था में ये परिणय सूत्र में बंध गये थे तथा अपने पुत्र का नाम रामानुज पिळळै रखा था। जब श्रीशैलेश स्वामी **1410** ई में परमपद कर गये तब ये आळवारतिरूनगरी से श्रीरंगम चले आये। इनके साथ इनके शिष्य रामानुज जीयर भी आळवारतिरूनगरी से श्रीरंगम आ गये थे जो बाद में वानमामलै यानी तोतादरी जीयर के नाम से विख्यात हुए।

इनके आठ अनन्य तथा प्रखर शिष्य हो गये थे जो अष्टदिग्गज के नाम से आठों दिशाओं को आलोकित करते हुए प्रसिद्ध हुए। ये अष्टदिग्गज हैं ः ।**1**।वानमामलै जीयर ।**2**।भट्टरपिरान जीयर ।**3**। तिरूवेंकटरामानुज जीयर ।**4**।कोईल कन्दाडै अन्नन ।**5**। प्रतिवादीभयंकर अन्ना। **6**।एरूम्बिअप्पा ।**7**।अप्पिलै ।**8**।अप्पिलार

जब इन्होंने संन्यास लिया तब इनका नाम 'मनवालमामुनि' हुआ। इनको संन्यास की दीक्षा श्रीआदिवन्न शठकोप महादेशिक ने दी थी। अपनी वाक्पटुता एवं प्रांजल भाषा के प्रयोग के कारण वरवरमुनि को 'विशद वाक्शिखामणि' तथा 'सर्वज्ञ सार्वभौम' कहा जाता था। श्रीरंगम में ये पेरिया जीयर के नाम से प्रसिद्ध थे।

जब ये साठ वर्ष के थे तो नमपेरूमाल की प्रेरणा से भगवान के समक्ष ही तिरूवायमोळी पर एक साल तक व्याख्यान दिये। पूरे वर्ष पर्यन्त श्रीरंगम में भगवान के सभी उत्सव निरस्त रहे। व्याख्यान पूरा होने पर भगवान स्वयं एक कम अवस्था के विद्यार्थी के रूप में प्रकट हुए तथा इनकी प्रशंसा में निम्नांकित श्लोक सुनाते हुए शीघ्र ही वहाँ से प्रस्थान कर गये।

श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्तयादि गुणार्णवम।
यतीन्द्र प्रवणं वन्दे रम्यजामतरमुनिम्।।

श्रीवरवर मुनि की कुल **16** रचनायें हैं जिसमें **3** संस्कृत में तथा बाकी सभी

तमिल में हैं। संस्कृत कृतियाँ हैं ः **1**। यतिराजविंशति। **2**।देवराजमंगलम्। **3**।श्रीराममंगलम्। इसके अतिरिक्त श्रीरामानुज की गीताभाष्य के आधार पर इन्होंने गीता के श्लोकों के शब्दों के तात्पर्य मात्र की एक पुस्तक लिखी जो 'तात्पर्य दीपम्' कही जाती है परन्तु मूल अब लुप्त है। जो पुस्तक कहीं कहीं उपलब्ध है उसे दक्षिण के तेंगल विद्वानजन वरवरमुनि के प्रामाणिक ग्रंथ नहीं मानते हैं।

इनकी तमिल कृतियों को दो भाग में बाँटा जा सकता हैः **1**। पूर्वा चार्य के मूलग्रंथ पर टीका। **2**। अपनी मूल कृति। पूर्वाचार्य के ग्रंथ की **8** टीकायें ः **1**।श्रीवचन भूषण। **2**।मुमुक्षुपडि। **3**।तत्वत्रयम्। **4**।ज्ञानसारम। **5**। प्रमेयसारम। **6**। श्रीआचार्य हृदय। **7**।पेरियाळवार तिरूमोळी। **8**।रामानुज नुट्रन्दादि। इसमें से प्रथम तीन श्रीपिळळै लोकाचार्य की कृति है। चौथा एवं पांचवा के मूल ग्रंथ श्रीअरूळाळप पेरूमाल एम्पेरूमान की श्रीसूक्ति हैं। छठा के मूल ग्रंथ के रचयिता पिळळै लोकाचार्य के कनिष्ठ भ्राता 'आळगिया मनवालपेरूमाल नायनार' रहे हैं। आठवीं कृति तिरूवरंगत्तु अमुदनार की है जो श्री रंगनाथ भगवान के मन्दिर की चावी के संरक्षक थे और बाद में इसे श्रीकुरेश स्वामी को दान में दे दिया था।

श्रीवरवरमुनि की स्वयं की तमिल में मूल **5** रचनायें ः **1**।उपदेशरत्नमालै। **2**।तिरूवायमोळी नुट्रन्दादि । **3**।तिरूवाराधनाकर्मम्। **4**।इयलक चारू । **5**।आरती प्रबन्धम्। इनमें से 'उपदेशरत्नमालै' आळवार एवं आचार्यो की पद्यात्मक अवतार गाथा है तथा तिरूवायमोळी के **1102** पदों को पाठ की सुविधा के लिये **100** पदों में सारगर्भित संक्षेप में प्रस्तुति 'तिरूवायमोळी नुट्रन्दादि' है। सांसारिक जीवन की उग्रता से आर्त होकर इन्होंने पद्यात्मक 'आर्तिप्रबन्धम' लिखा जिसमें श्रीरामानुज को अपने चरणकमलों की छाया में परमपद में बुलाने की आर्तभाव से प्रार्थना करते हैं।

4।13 श्रीरंगदेशिक स्वामी

तुलायां पनुर्वसौ जातं श्रीनिवासपदाश्रयम्।
वैष्णवानां गोवर्द्धननाथं वंदे रंगदेशिकम् ।।

अग्रगण्यं गोवर्द्धनवैष्णवेषु वंदे रंगदेशिकम्।।
दीपं गोवर्द्धनवैष्णवेषु वंदे रंगदेशिकम्।।
वृन्दावनगोवर्द्धन नाथम् गोदारंगमन्नार प्रवणं वंदे रंगदेशिकम्।।

श्रीरामानुज के प्रथम शिष्य श्रीदाशरथि थे जिन्हें तमिलक्षेत्र में श्रीवैष्णवजन 'मुदलीअण्डान' के नाम से जानते हैं। दासरथि श्रीरामानुज के भानजा थे जिनका प्रादुर्भाव श्रीपेरूम्बुदुर से मद्रास के रास्ते पुनमलै स्थान से पहले ही पेट्टै नामक गॉव में हुआ था। श्रीरंगम में मन्दिर के नित्यदिन की व्यवस्था श्रीदाशरथि के अधीन थी। इनके पुत्र कन्दाडै अण्डान के पुत्र कन्दाडै तोळप्पर ने नम्बिळळै को 'लोकाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया था। इस कुल में बाद में कन्दाडै अण्णन हुए जो कोइल अण्णन भी कहे जाते हैं और ये वरवरमुनि के अष्टदिग्गजों में से एक थे। कन्दाडै गोत्र का प्रतीक है। इन्ही अष्टदिग्गजों ने श्रीरामानुज के समय के सभी चौहत्तर गद्दियों का कार्यभार संभाला तथा उनका पुनरूद्धार किया। कोइल अण्णन का प्रादुर्भाव श्रीरंगम में कन्या के सूर्य में पूर्वाभाद्र नक्षत्र में हुआ धा।

भगवान श्रीकृष्ण के लीलाक्षेत्र गोलोक धाम वृन्दावन के गोवधर्न में कन्दाडै अण्णन ने श्रीवैष्णवमत के प्रसार हेतु गोवर्धन पीठ का पुनरूद्धार किया। गोवर्धन गद्दी पहले से ही दसवीं सदी के श्रीनाथमुनि द्वारा स्थापित थी जिसे इन्होंने पुनजागृत किया। इनके बाद के काल में श्रीशेषाचार्य आदि तथा श्रीनिवासा चार्य इस केन्द्र के संरक्षक हुए। दक्षिण भारत से श्रीरंगदेशिक स्वामी **1819** ई में पधारे और तत्कालीन संरक्षक श्रीनिवासाचार्य के शिष्य हो गये।

श्रीरंगदेशिक स्वामी का जन्म स्थान इनका ननिहाल 'तिरूविडविन्दै' था जो तमिलनाडु का एक दिव्यदेश है तथा यहॉं के पेरूमाल को 'नित्यकल्याण पेरूमाल' कहा जाता है और यहॉं प्रतिदिन भगवान का विवाहोत्सव मनाया जाता है। ये लक्ष्मीवराह स्वरूप में हैं तथा यह स्थल चेन्नै से महावलीपुरम के राजमार्ग पर बीच में अवस्थित है। ऐसी धारण है कि यहॉं के मिन्नत से कुमारी कन्याओं का विवाह शीघ्र हो जाता है। श्रीरंगदेशिक स्वामी का अवतार दिनांक **19** अक्टूवर **1810** ई है जो वि संवत् **1867** कार्तिक कृष्ण

सप्तमी शुकवार तुला सूर्य के पुनर्वसु नक्षत्र का दिन है। श्रीरंगदेशिक स्वामी के पैतृक गॉव का नाम तिन्नेरी अगरम है। श्रीरामानुज स्वामी के अवतार स्थल श्रीप्रेमबुदूर से कांची जाने के दो मुख्य रास्ते हैं। इनमें से एक नेशनल हाईवे है तथा दूसरा स्टेट हाईवे है। तिन्नेरी अरगम स्टेट हाईवे वाले रास्ते में विष्णुकांची से **13** कि मी पहले ही एक विशाल जलाशय के पास अवस्थित है। बचपन में इनको अकेला छोड़कर इनके माता पिता परमपद कर गये। इनके दो और सगे भाई थे पार्थसारथी तथा वेङ्कटाचार्य। कुछ दिन ननिहाल में रहकर ये घर आ गये तथा बड़े भाई द्वारा यज्ञोपवीत से सुसंस्कृत हो विद्याध्ययन करने लगे। तीक्ष्ण मेधा के कारण शीघ्र ही ये वेद में पारंगत हो गये। आगे अध्ययन का समुचित साधन न होने के कारण इनका चित्त घरेलू कार्यो में नहीं लगता था। एक बार स्वप्न में इन्होंने एक भैंसा को पीछा करते देखा। किसी भी दिशा में जाते वह इनका रास्ता रोक खड़ा मिलता था। जव ये उत्तर की दिशा में भागे तो भैंसा से पिंड छूट गया। इनके स्वप्न की घटना सुनकर एक ज्योतिषी ने कहा कि इनका भाग्योदय उत्तर दिशा में ही होगा। संयोग से उसी समय प्रतिवादभयंकर के श्रीअनन्ताचार्य जी कांची से वृन्दावन आ रहे थे। ये भी उनके साथ वृन्दावन आ गये। यहॉं ये तत्कालीन गोवर्धन पीठाधीश श्रीश्रीनिवासाचार्य के स्नेह भाजन हो गये। उन्होंने माण्डा विजयपुर के राजा से इनकी आर्थिक सहायता की व्यवस्था कर इन्हें काशी विद्याध्ययन के लिये भेज दिया। अपने मधुर वक्तृत्वकला तथा विद्वत्ता से ये काशी विद्वत्मंडली में प्रसिद्ध हो गये। अपनी वृद्धावस्था के कारण श्रीश्रीनिवासाचार्य ने इन्हें अनकों वर्षो बाद काशी से वृन्दावन बुला लिया तथा इनका समाश्रयण कर इन्हें अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

मथुरा के श्री लक्ष्मीचन्द्र जी सेठ के अनुज श्रीगोविन्द दास एवं राधाकृष्ण जी श्रीरंगदेशिक स्वामी से प्रभावित होकर इनसे समाश्रित हुए। इनलोगों के ही तन मन एवं धन के सहयोग से कांचीपुरम की शैली पर वृन्दावन में श्रीरंगजी मन्दिर का भीतरी तीन वृहत घेरा एवं बाहर का एक अतिविस्तृत घेरा एवं पुष्करणी आदि के साथ निर्माण कार्य पूरा होकर **1851** ई से श्रीगोदारंगमन्नार की अर्चना सेवा शुरू हो गयी।

श्रीविल्लीपुत्तुर की आन्डाल या गोदा जी जो लक्ष्मीजी की अवतार थी अपनी **30** पदों वाली तिरूप्पावै में धनुर्मास में वृन्दावन के यमुना स्नान का उल्लेख करती हैं। गोदाजी की वृन्दावन आने की ईच्छा की पूर्ति के लिये ही श्रीरंगमन्दिर के मूल विग्रह के रूप में श्रीगोदा जी के साथ श्रीरंगनाथ भगवान को विराजित कराया गया। जैसे श्रीविल्लीपुत्तुर की आन्डाल सन्निधि के मूल अचल विग्रह गोदाजी रंगनाथ भगवान एवं गरूड़ जी हैं उसीतरह से श्रीरंगजी मन्दिर वृन्दावन में भी तीनों विग्रह को मूल विग्रह के रूप में स्थापित किया गया।

श्रीरंगदेशिक स्वामी जी की वेदवती नामकी पहली पत्नी का देहांत तव हो गया जब इनके एकमात्र पुत्र श्रीनिवास पांच वर्ष की अवस्था के थे। भक्तों एवं संतों के दवाव से इन्होंने अपने **32**वें वर्ष में पहली पत्नी की आन्डाल नामकी छोटी बहन से दूसरा विवाह कर लिया। जब श्रीनिवास **16** वर्ष के हुए तो इन्होंने इनको वृन्दावन का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

श्रीरंगदेशिक स्वामी जी उदभट विद्वान थे और इन्होंने श्रीवैष्णव संप्रदाय के निम्नांकित रहस्यग्रन्थों का तमिल से संस्कृत में अनुवाद किया।**1**। नम्मळवार की तिरूवायमोळी यानी सहस्रगीति। **2**। श्रीकृष्णपाद स्वामी की ईडु। **3**। तिरूप्पावै। **4**। श्रीवचनभूषण। **5**।तिरूप्पलाण्डु। **6**।प्रमेयशेखर। **7**। प्रपन्नपरित्राण। **8**। निगमनपडि। **9**।मुमुक्षुपडि। **10**।परन्दपडि। **11**। अर्थपञ्चक। **12**। तत्वत्रय। **13**।तत्वशेखर। **14**।अर्चिरादिमार्ग **15**। वार्तामाला।

श्रीरंगदेशिक स्वामी के विद्वान शिष्यों की दो दीर्घा थी। एक वर्ग में शास्त्र एवं वाद ग्रन्थों के वेत्ता थे तो दूसरे में रहस्यगन्थों के जानकार। शास्त्र एवं वाद ग्रंथों के विद्वान थे ः **1**। श्रीसुदर्शनाचार्यशास्त्री वृन्दावन। **2**।श्रीकमलनयनशास्त्री जूनागढ़। **3**।श्रीनिवासाचार्यशास्त्री वृन्दावन। **4**।श्रीरामानुजाचार्य शास्त्री वृन्दावन। **5**।श्रीवंशीधरशास्त्री अमृतसर। **6**।श्रीवासुदेवाचार्य शास्त्री भिवानी ।**7**। श्रीमहावन शास्त्री भिवानी ।**8**।श्रीराममिश्रशास्त्री काशी। **9**।श्रीभागवताचार्यशास्त्री काशी। **10**। पं तुलसीरामशास्त्री अयोध्या। **11**।श्रीभागवताचार्यशास्त्री अयोध्या। **12**। श्रीचिरंजीलालशास्त्री मथुरा।

रहस्यग्रन्थों के विद्वान थे **1**। महन्त श्रीरामप्रपन्नाचार्य देवरा। **2**। स्वामी श्रीराजेन्द्रसूरि परमहंस तरेत पाली। **3**। श्रीपरमालेस्वामी वृन्दावन। **4**।श्रीरामानुजदास वृन्दावन। **5**।श्रीवलरामस्वामी वृन्दावन। **6**।श्रीमैथिली जी वृन्दावन। **7**।श्रीसूरदास वृन्दावन। **8**।श्रीसंकर्षणाचार्यशास्त्री वृन्दावन। **9**।श्रीगोविन्दाचार्य विलसी।

स्वामी श्रीराजेन्द्रसूरि परमहंस तरेत पाली पटना बिहार तथा स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य रीवॉ मध्यप्रदेश एवं स्वामीवलरामजी विजयराघवमठ अयोध्याा उत्तरप्रदेश इनके तीन बहुत ही विख्यात शिष्य हुए जिन विभूतियों ने उत्तरभारत में श्रीवैष्णव मत को गौरव प्रदान किया।

श्रीरंगदेशिक स्वामी जी **16** मार्च **1875** तदनुसार वि संवत् **1931** फाल्गुन शुक्ल **10**वीं मंगलवार मीन के सूर्य में पुनर्वसु नक्षत्र में महापयाण कर गये। इन्हें श्रीरंगाचार्य प्रथम कहा जाता था। इनके पुत्र श्रीश्रीनिवासाचार्य गोवर्धन पीठाधीश हुए जो श्रीरंगाचार्य द्वितीय हुए और मात्र **10** वर्षो तक ही पीठाधीश रहे। तत्पश्चात् श्रीश्रीनिवासाचार्य स्वामी के पुत्र श्रीगोवर्धनरङ्गाचार्य स्वामी **60** वर्षो तक पीठाधीश रहे। तत्पश्चात् श्रीगोवर्धनरङ्गाचार्य के दौहित्र यानी नाती पीठाधीश हुए जो अभी वर्तमान में श्रीरंगाचार्य तृतीय कहे जाते हैं तथा ये अपने उपनाम श्रीबालक स्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध हैं क्योंकि वचपन में ही ये पीठाधीश नियुक्त हो गये थे। श्रीवालक स्वामी जी का अवतार दिनांक **18** सितम्वर **1942** तदनुसार वि सं **1999** भाद्रशुक्ल अष्टमी मूल नक्षत्र कन्या का सूर्य दिन शुक्रवार है। आप आजन्म वृन्दावन वासी हैं। बचपन में इनके बदले इनकी नानी श्रलक्ष्मी अम्माजी तथा माता पट्टो अम्मा जी पीठ के दैनिक कार्य का संचालन करतीं थीं। इनके पिता जी का नाम श्रीनिवासाचार्य था जो जमाई स्वामी जी भी कहे जाते थे। बालक स्वामी जी शिक्षा प्राप्ति हेतु ये मद्रास तथा दक्षिण भारत के अन्य जगहों पर रह चुके हैं।

श्रीरङ्गदेशिक स्वामी ने महाप्रयाण के पूर्व कुछ परिसम्पति परिवार के जीवन निर्वाह के लिये अपने नाम रखे थे और बाकी समस्त संपत्ति तथा परिसंपत्ति उन्होंने गोदारङगमन्नार को अर्पित करते हुए ट्रस्टनामा लिखवा दी थी। विदित इतिहास के अनुसार सोलहवीं सदी से पीठाधीन अवधि के साथ गोवर्धन पीठाधीशों की संक्षित सूची निम्नवत है। **1**।श्रीशठकोप स्वामी **35** वर्ष ।**2**।श्रीवेङ्कटाचार्य **59** वर्ष। **3**।श्रीकृष्णाचार्य **65** वर्ष ।**4**।श्रीशेषाचार्य **67** वर्ष। **5**।श्रीनिवासाचार्य **77** वर्ष। **6**।श्रीरङ्गदेशिक स्वामी **37** वर्ष। **7**।श्रीनिवासाचार्य **10** वर्ष। **8**। श्रीगोवर्धनरङ्गाचार्य **60** वर्ष। **9**। वर्तमान में श्रीवालकस्वामी जी।

4।14 स्वामी श्रीराजेन्द्र सूरि परमहंस

फाल्गुनस्य सिते पक्षे मघायां द्वादशी तिथौ।
श्रीमद्रंगार्य सद्भक्तं राजेन्द्रार्यमहं भजे।।

फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को मघा नक्षत्र में प्रादुर्भूत श्रीरंगदेशिक स्वामी के चरणाश्रित राजेन्द्रसूरी जी की वंदना करता हूँ। सूरि वही हैं जो भगवान के स्वानुभूत आनन्द में सर्वदा निमग्न रहते हैं 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः'।

उत्तरप्रदेश में चक्रतीर्थ नैमिषारण्य से **40** कि मी उत्तर पश्चिम दिशा में अवस्थित मिश्र की मितौली नामक ग्राम में श्रीअयोध्या मिश्र के पुत्र के रूप में इनका जन्म वि संवत् **1909** फाल्गुन मास मीन के सूर्य में शुक्ल द्वादशी को मघा नक्षत्र में तदनुसार **22** मार्च **1853** ई मंगलवार को हुआ था। घर में साधु संत के सम्मान में एक बार माँ से छोटी त्रुटि हो गयी। अतिथियों द्वारा अरहर की दाल मांगने पर उसे रहते हुए चने की दाल दे दी गयी। साधु संत के प्रति इस तरह की उदासीनता से बालक राजेन्द्र का मन घर से उचट गया। इन्होंने घर छोड़ दिया एवं यत्र तत्र भ्रमण करते वृन्दावन पहुँच गये। श्रीरंगजी मन्दिर के स्थानाधीश श्रीरंगदेशिक स्वामी से समाश्रित होकर भतरौढ़ बिहारी जी के पास नरसिंह मंत्र की सिद्धि के अनुष्ठान में लग गये।

समयबीतने पर जब श्रीरंगदेशिक स्वामी परमपद कर गये तब इन्होंने वृन्दावन छोड़ दिया और भ्रमण करते पटना जिलान्तर्गत विक्रम के समीप महमतपुर गॉव के पास महुआ वृक्ष के नीचे एक दिन विश्राम कर रहे थे। ग्रामीणों के अनुरोध पर श्रीघिनावन शर्मा के घर पर रात बिताई और जगदीश यात्रा जगन्नाथपुरी के लिये प्रस्थान कर गये। जाते समय ग्रामीणों की विशेष विनती पर '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' के जप की राय दी तथा पुनः पुरी से लौटने का आश्वासन दिया। मृगचर्म आसन तथा दो कटिवस्त्र एवं लौका के तुम्बा के जलपात्र के अलावे कुछ भी द्रव्यादि पास नहीं रहता था। बिना किसी सवारी का आश्रय लिये काठ की पादुका से पैदल यात्रा करते थे। पुरी से लौटकर नौबतपुर तरेत के पास जंगल में पीपल वृक्ष के नीचे टिक गये तथा कंदमूलादि से भगवदराधना होने लगी। ग्रामीणों की

दृष्टि पड़ी तो लोग आने जाने लगे और महमतपुर गॉव वालो ने एकठाकुरवारी के लिये **6** विघा जमीन इनकी सेवा में समर्पित की। शिष्य बनाने लिये अनुरोध करने पर मात्र वासुदेव मंत्र ही दिया जाता था। तत्पश्चात परमहंस स्वामी बद्रीनारायण यात्रा पर गये। साथ में तरेत एवं हदसपुरा के भक्त भी गये थे। यात्रा से लौटने पर तरेत के पश्चिम में ही फूस की झोपड़ी बनवाकर तथा भगवान के लिये एक मिट्टी का घर बनवाकर भक्तों ने स्वामी जो को समर्पित किया। चेसी के रामखेलावन शर्मा एक समृद्ध व्यक्ति थे तथा स्वामी जी में बहुत श्रद्धा रखते थे। यहाँ निवास करते हुए स्वामी जी ने एक बगीचा लगाया था जिसका नाम 'कलमबाग' रखा गया था।

महमतपुर में लक्ष्मीनारायण भगवान तथा तरेत में राघवेन्द्र सरकार के लिये नूतन भवन का निर्माण हुआ तथा वहाँ भगवान की स्थापना के लिये परमहंस स्वामी जी ने वृन्दावन से यज्ञिकों को निमन्त्रित किया। दोनों जगह पर भगवान की विधिवत स्थापना हुई। इसी अवसर पर वृन्दावन से रंगदेशिक स्वामी की धर्मपत्नी अम्बाजी ने शंख चक्र भेजवाया तथा परमहंस स्वामी को वैष्णवों की विधिवत दीक्षा देने को कहा। तदुपरान्त पंचसंस्कार से लोगों को मूल मंत्र से समाश्रित करने का कार्य प्रारम्भ हुआ अन्यथा इसके पूर्व लोगों को मात्र वासुदेव मंत्र ही दिया जा रहा था।

तरेत में दक्षिणभारत से विद्वान आये तथा श्रीभाष्य के अतिरिक्त व्याकरण आदि भी पढ़ाने का कार्य चलने लगा। परियारी के श्रीरघुनाथाचार्य श्रीभाष्य के विद्वान बने। समयानुसार शिक्षाहेतु प्रारंभिक प्रयास ही राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। वृन्दावन से गोवर्द्धन पीठाधीश्वर एवं रीवॉ मध्यप्रदेश से परमहंस स्वामी के गुरूभाई महन्थ श्रीरामप्रपन्नाचार्य तथा कांचीपुरम से प्रतिवादभयंकर के श्रीअनन्ताचार्य प्रभृति संतविद्वान यहाँ पधारने लगे तथा उनके प्रवचन से यहाँ की धरती तीर्थस्थल बन गयी तथा यहाँ के लोग अपने को सौभाग्यशाली मानने लगे। तरेत धन्य हो गया और '**तरति इतः तरेतः**' यानी 'जो तार दे वही तरेत है' यह चरितार्थ हो उठा। अन्य मत के विद्वानों से हरिहर क्षेत्र मेला या अन्यस्थलों पर शास्त्रार्थ के आयोजन होने लगे तथा विपक्षियों को पराजित कर जोर शोर से

श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार होने लगा।

परमहंस स्वामी जी वि संवत् **1956** यानी ई सन् **1900** में सात वर्षो की महती तीर्थ यात्रा पर निकले और साथ में दो तीन सौ श्रीवैष्णवों की मंडली चली। इस यात्रा को जगदीश यात्रा कहते थे। मंडली के लोगों को किसी भी सवारी से चलने की छूट थी परन्तु स्वामी जी पैदल ही चलते थे। पहला चातुर्मास यानी आषाढ़ से कार्तिक की अवधि में स्वामी जी जगन्नाथ रथयात्रा से लेकर कार्तिक के अंत तक पुरी में श्रीराजगोपालाचार्य के बगीचा में विताये। यहाँ से दक्षिण भारत के दिव्यदेशों की यात्रा पर निकले और दूसरा चातुर्मास मार्ग में यात्रा में ही बीता। तीसरे चातुर्मास का विश्राम हैदराबाद में हुआ। चौथा चातुर्मास बम्बई के मटुंगा क्षेत्र में मनाया गया। बम्बई से चलकर द्वारिका नारायण सरोवर प्रभास क्षेत्र आदि होते पॉचवा चातुर्मास पुष्कर में बीता। वहां से चलकर विन्दुसरोवर आदि होते वृन्दावन आ गये एवं अगला चातुर्मास यहीं मनाये। वृन्दावन के स्थानाधीश्वर श्रीगोवर्द्धन रंगाचार्य द्वितीय थे। श्रीरंगजीमंदिर के प्रतिष्ठित पंच वरांव के राजा परमहंस स्वामी जी को सम्मानित करने के लिये स्वयं ही पधारे। वृन्दावन में अन्यस्थानों के संतों का परमहंसस्वामी जी ने उनके यहाँ जा जाकर उनको सम्मान दिया। इसतरह से यात्रा मंडली पुनः तरेत वापस आ गयी।

कुछ दिनों के बाद अगली यात्रा उज्जैन नासिक के लिये निकली। रास्ते में परमहंस स्वामी जी के गुरूभाई रीवॉ स्थानाधीश स्वामी रामप्रपन्नाचार्य भी इनके साथ हो लिये। नासिक में परमहंस स्वामी जी को एक स्वतंत्र मन्दिर दिया गया तथा इन्होंने स्थानीय भक्तों के आग्रह पर यहाँ की दैनिक व्यवस्था देखने के लिये अपने शिष्य श्रीवासुदेवाचार्य को यहीं छोड़ गये। श्रीवासुदेवाचार्य ही वाद में नासिक स्वामी के नाम से जाने गये तथा तरेत के उत्तराधिकारी भी वने। नासिक यात्रा से लौटने पर रीवॉ स्थानाधीश स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य भी चार्तुमास व्यतीत करने तरेत आ गये। इसी अवधि में रीवॉस्थानाधीश की प्रेरणा से वृन्दावन श्रीरंगजी मन्दिर की तरह तरेत में भी तरेत स्थान एवं इसकी अन्यत्र की शाखाओं महमदपुर वैदरावाद आदि के स्थान को एक पंचनामे के अधीन रजिस्टर्ड करा दिया गया।

परमहंस स्वामी जी के शिष्य श्रीभागवताचार्य जी ने कांचीपुरम में उत्तराधिमठ को बहुत कुशलतापूर्वक चलाया। तत्पश्चात् स्वामी वासुदेवाचार्य जी तरेत के विद्वान एवं कीर्तिमान स्थापित करने वाले शिष्य श्रीविष्वकसेन जी ने यहाँ का कार्यभार संभाला। युवावस्था में ये परमपद कर गये। इनके बाद इन्हीं के एक शिष्य श्रीवालमुकुन्द जी तथा स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी के शिष्य श्रीसुदर्शन जी ने एकजुट होकर यहाँ का कार्यभार संभाला। द्वयविभूतियों के सेवाभाव के ही कारण दक्षिण भारत में इस मठ का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है। आज ये दोनों सेवाविभूति नहीं हैं परन्तु कुछ दिन के चन्द अवरोध के बाद पुनः मठ की सेवा गरिमा जागृत होने लगी है। इसका श्रेय तरेत स्थानाधीश स्वामी धरणीधर जी के एक शिष्य उचिटा ग्रामवासी श्रीमनोज जी को जाता है जो बहुत ही लगनशील हैं तथा सेवा कैंकर्य में सर्वदा तत्परता से लगे रहते हैं।

परमहंस स्वामी जी एक दूसरे अनन्यभक्त श्रीसीतारामाचार्य जी ने ताम्रपर्णी के किनारे नम्माळवार के अवतार स्थल आळवारतिरूनगरी में एक उत्तराधिमठ की स्थापना की जहाँ वे परमहंस स्वामी जी की पादुका की सतत पूजा आराधना किया करते थे। यह पादुका आज भी वहाँ समादृत है और यह मठ अब श्रीरंगजीमंदिर वृन्दावन के अधीन है। वर्तमान में यहाँ विजयराघव मठ अयोध्या से समाश्रित श्रीवरदराज स्वामी श्रीवैष्णवों की सेवा में पूरे मनोयोग से लगे रहते हैं।

राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय तरेत से अनेकों श्रीवैष्णव विद्वान निकले जिन्होंने तरेत की कीर्तिध्वज को सुदूर दक्षिणभारत तक फहराया। इसमें वेदान्तीजी के नाम से प्रसिद्ध नासिक स्वामी के शिष्य श्रीविष्वसेनाचार्य जी का नाम सर्वोपरि हैं। कुछ काल तक ये कांचीपुरम में उत्तराधि श्रीवैष्णव मठ के संरक्षक के रूप में विराजमान थे।

वि संवत् **1972** यानी ई सन् **1915** के वैशाख मास के प्रारंभ में परमहंस स्वामी जी ने अपने प्रियतम शिष्य श्रीपरांकुशाचार्य जो बाद में सरौती स्थानाधीश हुए को बताया कि आतिवाहिक परमपद में ले जाने के

लिये आने लगे हैं। श्रद्धालु भक्तों को व्याकुल होते देख स्वामी जी सबों को यही बताते थे **'तरेत ही तीर्थराज है तथा राघवेन्द्र भगवान ही उभयविभूति नायक हैं। मात्र एकान्तिक निष्ठा चाहिये।'** परमहंस स्वामी के मुख से दिन में दो तीन बार तुलसीदास जी के पद के गुन गुनाने की ध्वनि मिलने लगी।

"कबहि दिखाइहों हरि चरण
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगल करन।
…………
कृपासिन्धु सुजान रघुवर प्रणत आरत हरन।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन"

एक दिन परमहंस स्वामीजी का आदेश हुआ और नाव की व्यवस्था से इनके साथ छः श्रीवैष्णव जन नहर के रास्ते सोन नदी के लिये प्रस्थान कर गये। जाने के पूर्व इन्होंने राघवेन्द्र भगवान के सामने प्रणिपात करते हुए कहा 'दास से आपका मन्दिर नहीं बन सका। अब अपने भक्तों से बनवा लीजियेगा।' उस दिन नाव गंगा के दीघा से थोड़ी दूर पश्चिम चलकर रात्रि विश्राम के लिये रूक गयी। बालुका की ऊंचीवेदी पर चांदनी तानी गयी तथा स्वामी जी महाराज ने अन्य श्रीवैष्णवों को तदीयाराधन का आदेश दिया परन्तु स्वयं तीर्थ ही ग्रहण किये तथा भगवान की कथा सुनाने के बाद शयन का आदेश मिला।

दूसरे दिन के नित्यक्रिया के बाद नाव गंगा के उत्तरी छोर से पश्चिम को बढ़ने लगी। कामवन के क्षेत्र में संतमहात्माओं की सेवा में अन्नादि दिया गया। पुनः वहाँ से बढ़कर नाव नृसिंह क्षेत्र हल्दी छपरा पहुँची। यहाँ भगवान के लिये मध्याह्नकाल के तदीयाराधान का आदेश हुआ। श्रीवैष्णवजन प्रसाद बनाकर भगवान को अर्पित कर पाये परन्तु परमहंस स्वामी जी ने अल्पमात्र वेल फल का प्रसाद ही ग्रहण किया।

यहाँ से नाव आगे बढ़ी और संध्या में गंगा सरयू के संगम पर जाकर टिकी। रात्रि में भगवान का तदीयाराधन हुआ परन्तु परमहंस स्वामी जी ने मात्र तीर्थ ही ग्रहण किया। भगवद कथा के बाद विश्राम हुआ।

ब्राह्ममुहूर्त में परमहंस स्वामी जी के मुखारविन्द से 'अतिमानुष स्तव' की स्तुति की ध्वनि सुनाई पड़ी जो धीरे धीरे मन्द होती गयी।

वज्रध्वजांकुश सुधाकलशातपत्र
पंकेरूहांक परिकर्मपरीतमन्तः।
आपादपंकज विश्रृंखल दीप्रमौले
श्रीरंगिणश्चरणोर्युगमाश्रयामः।।

बादमें द्वयमंत्र के उच्चारण के साथ कपालभेदन का शब्दगूँज उठा। संवत् **1972** के मीन के सूर्य में वैशाख कृष्णपक्ष षष्ठी सोमवार ज्येष्ठा नक्षत्र तदनुसार अप्रैल **5** ई सन् **1915** के ब्राह्ममुहूर्त में परमहंस स्वामी जी ब्रह्मरंध के मार्ग से निकलकर परमपद के लिये महाप्रयाण कर गये।

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि
परे श्रीवैकुण्ठे परमरूचिरे हेमनगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे
समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्।

परमहंस स्वामी जी की श्री सूक्तियाँ

परमहंस स्वामी जी की जीवनी चार भाग में प्रकाशित है जिसके रचयिता सरौती स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी हैं। पहले भाग में विपक्षियों से संघर्ष में सागरपुर तथा दतियाना आदि गाँवों की सभा में आर्य समाजी तथा श्रीवैष्णवमत विरोधी लोगों को शास्त्रार्थ में निरूत्तर किया गया है। उनके प्रश्न थे 'श्रीसंप्रदाय अवैदिक है'।जिज्ञासु पाठक को मूल जीवनी देखनी चाहिए।परमहंस स्वामी जी ने तीनों वेदों का उद्धरण दिया 'हे परमात्मा आप विश्व के नियामक रूप से सर्वत्र व्यापक हो।आपका सुदर्शन चक आस्तिक जनों की भुजा पर चिह्न रूप से विद्यमान रहता है। इस तप्त सुदर्शन चक को धारण करने वाले का पाप जल जाता है एवं वे परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं'।

आर्यसमाजी के प्रश्न मूर्ति पूजन के विरोध में थे। स्वामी जी ने सटीक वेद मंत्र के उदाहरण से उन्हें शांत किया। यजुर्वेद के मंत्र में 'सहस्रों का तु प्रभा है सहस्र की प्रतिमा है आदि मंत्र में मूर्ति का ही वर्णन है। एक प्रश्न था

कि निराकार के ध्यान से जब मुक्ति मिल सकती है तब मूर्तिपूजा क्यों। उत्तर में बताया गया कि ध्यान में ध्याता तथा ध्येय की भी आवश्यकता है। निराकर ध्येय कैसे हो सकता है। अन्य प्रश्न था कि साकार ईश्वर देखा क्यों नहीं जाता। उत्तर था कि अर्जुन ने तो साकार भगवान को देखा। **'नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि'** में वायु आदि रूपों में भगवान को प्रत्यक्ष बतलाया गया है। **'विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः'।**

एकबार खजुरी ग्राम निवासी पं बालमुकुन्द शर्मा ने पूछा कि स्त्रियों के लिये तो पति ही सबकुछ है तब आप उनलोगों को मंत्र क्यों देते हैं। परमहंस स्वामी की जीवनी के द्वितीय भाग में इसका विशद विवरण है। रामचरितमानस में सीता जी का गौरीपूजन तथा भागवत में भतरौढ़ ब्राह्मणियों का श्रीकृष्ण को भोजन कराना आदि अनेकों दृष्टांत से परमहंस स्वामी जी ने मंत्र देने के औचित्य को प्रमाणित किया।

पाली निवासी पं रामलखन शर्मा ने रामचरितमानस से शंकाजन्य प्रश्न किये '**शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर**' तथा '**यह मह राम रहस्य अनेका**'। ऐसे अनेकों प्रसंग का विशद विवरण परमहंस स्वामी जी की जीवनी के तीसरे भाग '**राम रहस्य**' में दिये गये हैं। '**शंकरभजन**' एक समास है तथा इसका तात्पर्य है कि शंकरजी की भक्ति के समान जब कोई भक्ति करेगा तभी वह रामजी को पा सकता है। रामचरितमानस में भक्ति एवं माया तथा ज्ञान को समझाते हुए 'भक्ति की शक्ति' के रहस्य को प्रकट किया गया है आदि आदि।

श्रीबडेमहाराज द्वारा ई 1912 में सरौती में स्थापित श्रीराघवेन्द्र सरकार एवं ई 1968 में उसी वेदी पर स्वामी पराङ्कुशाचार्य द्वारा स्थापित दायीं तरफ श्री बालाजी वेङ्कटेश भगवान।

श्रीमते रामानुजाय नमः
श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

पाचवां अध्याय ः स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज

5।1 अवतार

राजेन्द्रसूरि पदाम्भोज भक्तिसुधापायिनम्।
गोविन्दमासे मघाजातं पराङ्कुशमुपास्महे।।

परमहंस श्रीराजेन्द्रसूरि जी महाराज के चरणकमल का सेवामृत पान करने वाले फाल्गुन मास के मघानक्षत्र में अवतरित स्वामीपराङ्कुशाचार्य जी की उपासना करता हूँ।

बद्ध जीव एवं नुक्त जीव में अंतर यह है कि पहला कर्मवश संसार में जन्म एवं मृत्यु के चक्कर में फंसा रहता है जबकि दूसरा मात्र लक्ष्मीनाथ के कैंकर्य में परमपद वैकुण्ठ में लगा रहता है। नित्यसूरि मुक्तजीव की तरह हैं एवं प्रारम्भ से ही परमनियामक के कैंकर्य में लगे रहते हैं। निव्यसूरि एवं मुक्तजीव को संसार में आने की आवश्यकता मात्र लक्ष्मीनाथ के संकेत से होती है तथा यह संकल्प मात्र से ही धराधाम पर बद्ध जीवों के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम जगाने के लिये आते हैं। स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी नित्यसूरि श्रीविष्वकसेन जी के अंश से श्रीशठकोप स्वामी यानी नम्माळवार के बचे कार्य की पूर्ति हेतु भगवान के ही संकेत से मानव शरीर धारण कर पटना मंडल में पधारे।

श्रीस्वामी जी का अवतार स्थल महमत्पुर गॉव हैं जो विक्रम नौवतपुर के समीप अवस्थित है। **10** मार्च **1865** तदनुसार फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी शुक्रवार संवत् **1921** कुंभ के सूर्य में मघा नक्षत्र में नौवतपुर के समीप अवस्थित महमत्पुर गॉव के कौण्डिन्य गोत्रीय आथर्वणिक ब्राह्मण कुल में श्री रामधनी शर्मा एवं श्रीमति रामसखी देवी के द्वितीय पुत्र के रूप में आप अवतरित हुए। वचपन में आप 'पारस' नाम से पुकारे जाते थे। समयानुसार

बभनलई ग्राम के भारद्वाजगोत्रीय श्री नरसिंह नारायण शर्मा की पुत्री के साथ परिणय सूत्र में बंधकर आपका गृहास्थाश्रम में प्रवेश हुआ तथा एक पुत्ररत्न भी प्राप्त हुआ। इसतरह से गृहस्थाश्रम के मुख्य उद्देश्य पितृ ऋण से आप मुक्त हुए।

वचपन से ही संगीत के माध्यम से रामचरित मानस की सस्वर प्रस्तुति में आपकी अभिरूचि थी। एक दिन स्वामी परमहंस सूरि जी के स्वागत में गॉव मे मानस प्रस्तुति का आयोजन हुआ। आपकी जब बारी आयी तो जनकपुर फुलवारी में भगवान राम एवं सीता जी के प्रथम मिलन प्रसंग **"श्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ....बरनत छवि जहॅ तहॅ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू।।"** की प्रस्तुति से आपने परमहंससुरि जी को मुग्ध कर दिया। प्रस्थान के पूर्व स्वामी परमहंससूरि जी ने आपके बड़े भाई श्रीजुदागी शर्मा से आपको अपने लिया मांगा। घर गृहस्थी के कारण प्रारंभ में भाई को संकोच तो हुआ परंतु उन्होंने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा कि पारस भी आपका ही है।

कुछ समय वीता और स्वामी परमहंससूरि जी तरेत स्थान से दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल गये। इधर पारस जी का मन स्वामी जी में ही लगा रहता था। एक बार पारस जी अस्वस्थ हुए और पतिदिन रोग बढ़ता ही गया।चारमाह से शय्याबद्ध रहते हुए स्थिति ऐसी आ गयी कि सबलोग इनके जीवन से निराश हो गये। इनकी मॉ निराश होकर ऑसू वहाती हुई भगवान से निरोग होने के लिए प्रार्थनाा करती रहतीं। मॉ की स्थिति देखकर पारसजी ने उनसे कहा 'मुझे परमहंस स्वामी जी के शरण में दान कर देने से मेरा रोग हट जायेगा।' असहाय मॉ ने पारस के प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे दी। इसीवीच अचानक स्वामी परमहंससूरि जी का तरेत में पदापर्ण हुआ। पारस जी ने अपने पिता से स्वामी जी के दर्शन की ईच्छा प्रकट की। पिता ने तरेत ठाकुरवारी जाकर स्वामी परमहंससूरि जी को पारस की मरणासन्न स्थिति से अवगत कराया। स्वामी जी शीघ्र ही महमत्पुर पहॅुच गये एवं पारस जी के शरीर को अपने करकमल के स्पर्श से रक्षाकवच में बांध कर यह कहते हुए

तरेत लौट गये 'पारस ठाकुरवारी आ जाओ'। मरणासन्न स्थिति वाला ठाकुरवारी जायेगा यह सुनकर सब आश्चर्यचकित हो गये परंतु चमत्कार जैसा ही हुआ और पारस जी ने शीघ्र ही मरणशय्या छोड़दिया तथा लड़खड़ाते ठाकुरवारी पहॅुच गये। **"प्रभु पहिचानि परेउ धरि चरना"** और स्वामी परमहंससूरि जी ने पारस जी को श्रीवैष्णव धर्म के पंचसंस्कार से दीक्षित कर 'पराङ्कुशाचार्य' नाम दे दिया। बाद में यही स्वामी पराङ्कुशाचार्य हो गये तथा "सरौती के स्वामी जी" के नाम से विख्यात हुए। दैवसंयोग से पिता परमपद हुए। पत्नी तथा पुत्र भी शनैः शनैः संसार छोड़ते गये। पारिवारिक बंधन ढ़ीला पड़ गया और जीवित मॉ पहले ही इन्हें परमहंस स्वामी जी की शरणागति में दान कर चुकी थी। अतः श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने संत तुलसीदास जी के 'विनय पत्रिका' के पद से विनती करते हुए परमहंस स्वामी जी की सेवा को अपना एकमात्र आश्रय बना लिया।

देव
देहि सतसंग निज-अंग श्रीरंग ! भवभंग कारण शरण-शोकहारी।
ये तु भवदंघ्रिपल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत विगत संशय मुरारी।।**1**।।
असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।
संत-संसर्ग त्रैवर्गपर परमपद प्राप्य निःप्राप्यगति त्वयि प्रसन्ने।।**2**।।
वृत्र बलि वाण प्रह्लाद मय व्याध गज गृध्र द्विजबन्धु निजधर्म त्यागी।
साधुपद-सलिल- निर्धूत- कल्मष सकल श्वपच यवनादि कैवल्य भागी।।**3**।।
शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण शब्दब्रह्मैकपर ब्रह्मज्ञानी।
दक्ष समदृक स्वदृक विगत अति स्वपरमति परमरति विरति तव चक्रपानी।।**4**।।
विश्व-उपकारहित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्तमदमन्यु कृत पुण्यरासि।
यत्रतिष्ठन्ति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धिवासी।।**5**।।
वेद-पयसिंधु सुविचार मंदरमहा अखिल मुनिवृंद निर्मथनकर्ता।
सार सतसंगमुदधृत्य इति निश्चितं वदति श्रीकृष्ण वैदभिर्भर्ता।।**6**।।
शोक-संदेह भय-हर्ष तम-तर्षगण साधु सद्युक्ति विच्छेदकारी।
यथा रघुनाथ-सायक निशाचर-चमू-निचय-निर्दलन-पटु-वेग-भारी।।**7**।।
यत्र कुत्रापि ममजन्म निजकर्मवश भ्रमत जगजोनि संकट अनेकं।
तत्र त्वदभक्ति सज्जर्नसमागम सदाभवतु मे राम विश्राममेकं ।।**8**।।
प्रवल भवजनित त्रैव्याधि भैषज भगति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।

संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी।।9।।

5।2 दिव्यदेश भ्रमण एवं भगवदचरित का अवगाहन

परमहंस स्वामी जी की पदछाया में रहते हुए पैंतीस वर्ष की अवस्था में श्रीपराङ्कुशाचार्य जी परमहंस स्वामी जी के साथ दक्षिण भारत के श्रीवैष्णव दिव्यदेश के दर्शन के लिये प्रस्थान कर गये। जहाँ पाञ्चरात्र शास्त्र विधि का पालन करते हुए पूर्ण परम्परा का निर्वाह होता हो एवं तदनुसार मंदिर में भगवान की पूजा होती हो उसे दिव्य देश कहते हैं। **108** श्रीवैष्णव दिव्यदेश का विवरण पहले ही आळवार चरित नामक तीसरे अध्याय में हो चुका है। इस यात्रा का पहला लक्ष्य श्रीजगन्नाथ पुरी था। पहला चार्तुमास वहीं बीता। आंध्रप्रदेश के सिहाचलम अहोविलम मंगलगिरि तथा तिरूपति तिरूमला के दिव्यदेश का दर्शन करने में दूसरा चातुर्मास रास्ते में ही बीता। वहाँ से तमिलनाडु के मद्रास कांचीपुरम श्रीरंगम तथा आळवार तिरूनगरी के समीपस्थ स्थित सभी दिव्यदेश का दर्शन पूरा करने में तीसरा एवं चौथा चातुर्मास रास्ते में बीता तथा पांचवा मुम्बई में बीता। वहाँ से छठे वर्ष में द्वारिका विन्दुसरोवर पुष्कर आदि की यात्रा पूरी हुई एवं सातवें वर्ष पुनः वृन्दावन का दर्शन करते तरेत पाली लौट आये।

इस यात्रा में तिरूमला वेङ्कटेश भगवान तथा कांची के वरदराज भगवान एवं श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान से विशेष सम्बन्ध बन गया। आळवार तिरूनगरी से लेकर श्रीरंगम तथा कांचीपुरम तक आळवार तथा पूर्वाचार्यो की भूमि होने के कारण श्रीवैष्णव परम्परा को गहराई से समझने का अवसर मिला जो सदा के लिये इनके मानसपटल पर अंकित हो गया। इसी स्वानुभूत आनन्द का बीज बाद में अर्चागुणगान रूपी सौरभपूर्ण कमल के रूप में प्रस्फुटित हुआ। रंगनाथ, वरदराज, तथा वेङ्कटेश भगवान के दिव्यदेश की महिमा रूपी बाग बाटिका एवं वन में आळवार एवं पूर्वाचार्यो रूपी विहंगों के विहार करते सुमधुर वाणी से प्रफुल्लित हो श्रीपराङ्कुशाचार्य जी जीवन भर भगवद चरित के बाग बाटिका को दत्तचित्त माली की तरह

सींचते रहे।

पुलक बाटिका बाग वन सुख सुविहंग विहारू।

माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारू।।

इनके जीवन के बाद के वर्षो में प्रत्येक वर्ष इन दिव्यदेशों की अनेकों बार अनगिनत यात्राऐं हुई तथा इस तरह से श्रीपराङ्कुशाचार्य जी स्वयं एक चलन्त एवं जीवन्त तीर्थपुरी हो गये। ये जहाँ रहते समीपस्थ भक्तों को नित्य नवीन भगवदचरित के ही फूल के सुगंध एवं मृदु फल के सुस्वाद का आनन्द मिलते रहता।

सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।

फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास।।

5।3 सरौती ठाकुरवारी

ई सन् **1910** की बात है। यातायात के साधन में प्रायः घोड़ा या बैल का ही प्रयोग होता था। व्यापारी लोग बैल के माध्यम से सामान एक जगह से दूसरे जगह ले जाते थे। एक दिन एक व्यापारी 'श्रीराम लक्ष्मण एवं सीता जी' के प्रस्तर विग्रह बेचने सरौती पहुँचा। गाँव के भक्तों में 'श्रीराघवेन्द्र सरकार' को गाँव में ही रखने का विचार आया। पैसा चन्दा कर विग्रह खरीद लिये गये। श्रीराघव जी नामक एक भक्त ने कुछ जमीन ठाकुर जी के नाम दे दी। ठाकुरवारी के लिये मिट्टी एवं खपड़ा के दो तीन घर बनाये गये। ठाकुर जी की प्राणप्रतिष्ठा के लिये सुयोग्य संत का अन्वेषण होने लगा तथा तरेत के परमहंस स्वामी जी से इस पुनीत कार्य के लिये निवेदन किया गया। परमहंस स्वामी जी पधारे तथा अपने नियमवश गाँव के बाहर ही बगीचा में ठहर गये। उन्होंने ने ही वृन्दावन से याज्ञिक तथा पुजारी आदि की व्यवस्था कर दी थी। ई सन् **1912** में ठाकुर जी अपने ठाकुरवारी में विराज गये तथा विधिवत नित्य पूजा का शुभारंभ हो गया। परमहंस स्वामी जी ने एक 'यमुना गाय', प्रसाद पकाने का एक बड़ा टोकना ठाकुर जी के लिये एक पर्दा तथा श्रीरामप्रपन्नाचार्य नामके एक पुजारी ठाकुर जी को अपनी तरफ से भेंट स्वरूप अपिर्त किये।

ई सन् **1915** में परमहंस स्वामी जी का महाप्रयाण हो गया। श्रीपराङ्कुशाचर्य जी उदास रहने लगे। परमहंस स्वामी जी के श्रीवासुदेवाचार्य नामके एक अन्य शिष्य जो 'नासिक स्वामी जी' के नाम से प्रसिद्ध थे कालान्तर में तरेत के स्थानाधीश बनाये गये। श्रीपराङ्कुशाचर्य जी पूर्व से ही गान एवं वादन विद्या में कुशल थे। इनका अधिकांश समय भगवान के भजन कीर्तन में ही बीतने लगा। सरौती के भक्तों को ठाकुरवारी के लिये एक अच्छे व्यवस्थापक की खोज थी। ये लोग मुकामा स्वामी जी के सम्मिलित प्रयास से श्रीपराङ्कुशाचर्य जी के पास पहुँचे तथा उन्हें सरौती लाने में सफल हो गये। श्रीपराङ्कुशाचर्य जी अव '**सरौती स्वामी जी**' के नाम से जाने जाने लगे।

पहले का ठाकुरवारी गॉव से बाहर था तथा ठाकुर जी के पूर्वाभिमुखी होने के कारण गॉव ठाकुर जी की पीठ की तरफ पीछे पड़ जा रहा था। कुछ भक्तों के मन में इसे गॉव की प्रगति के लिये बाधक होने का भान होने लगा। इन लोगों ने श्रीस्वामी जी से अपनी मनसा प्रकट की। पहले वाले ठाकुरवारी के पास ही ई सन् **1930** में तरेत स्थान की तरह यहाँ भी उत्तराभिमुख नये ठाकुरवारी का निर्माण हुआ तथा इस बार का ठाकुरवारी मिट्टी का न होकर ईंट एवं छत में लोहे की शहतीर आदि से पटाई करके विस्तृत जगमोहन के साथ पक्का बना। राघवेन्द्र सरकार अव नये ठाकुरवारी में पधारे। यही ठाकुरवारी आज भी विराजमान है।

समय वीतने के साथ श्रीस्वामी जी श्रीवैष्णव परम्परा में प्रगाढ़ होते गये तथा प्रतिवर्ष दक्षिण भारत के तिरूमला तिरूपति कांचीपुरम् तथा श्रीरंगम की यात्रा अवश्य करने लगे। धीरे धीरे तिरूमला तिरूपति के वेंकटेश भगवान से अधिक जुड़ गये। फलतः ई सन् **1968** के वैशाख शुक्लपक्ष में सरौती में भी श्रीवेंकटेश भगवान के विग्रह को विधिवत प्राणप्रतिष्ठा के साथ पधरवाया गया। नये विग्रह पूर्व से विराजते हुए राघवेन्द्र सरकार के साथ उसीगर्भगृह में उसी वेदी पर लक्ष्मणजी की वाईं ओर विराज कर भक्तों को दर्शन लेगे। दर्शन की यही व्यवस्था आज भी यहाँ विराजमान है।

भारत में मुगलों ने हिन्दु मन्दिरों तथा हिन्दु संस्कृति को सर्वाधिक

क्षति पहुँचायी। हिन्दु मन्दिरों को तोड़फोड़ कर नष्ट किया गया तथा गॉव के गॉव हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया गया। मुगलों के अत्याचार ने सर्वाधिक उत्तर भारत को प्रभावित किया। दक्षिण में भी श्रीरंगम की व्यवस्था को इनलोगों ने नष्ट ही कर दिया था तथा हजारों की संख्या में यहाँ श्रीवैष्णव जन भगवान रंगनाथ की रक्षा में अपनी जान गंवा दिये थे। उत्तर भारत में ऊँचे शिखर के साथ दूर से दिखने वाले मन्दिर को आसानी से चिह्नित कर नष्ट किया जाता था। परिणाम स्वरूप यहाँ नये मन्दिरों के निर्माण में सावधानी बरती जाने लगी तथा मन्दिर भी आवासीय घरों की तरह बिना शिखर के बनने लगे। इसी शैली पर तरेत तथा सरौती के ठाकुरवारी भी बने थे। गर्भगृह के ऊपर मात्र एक बंगलानुमा संरचना बना दी जाती थी तथा उसमें सार्वजनिक प्रवेश वर्जित रहता था। श्रीस्वामी जी के ई सन् **1980** में महाप्रयाण के बाद सरौती के भक्त गण **1990** के दशक में सरौती के ठाकुरवारी में भी गर्भगृह के ऊपर शिखर आदि जोड़कर इसका जीर्णोद्धार किया। ठाकुरजी के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर श्रीस्वामी जी की प्रतिमा भी स्थापित की गयी। इसतरह से श्रीस्वामी जी के काल के धरोहर संरचना में काफी परिवर्तन कर दिया गया।

हुलासगंज के स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य उपनाम स्वामी श्रीरूपदेव जी सरौती श्रीस्वामी जी के सर्वोपरि विरक्त ख्यातिलव्ध शिष्य हैं। इन्होंने ई सन् **2011** में श्रीस्वामी जी की पुरानी प्रतिमा के स्थान पर नयी मार्वल प्रतिमा की स्थापना करायी तथा जय विजय द्वारपाल एवं गरूड़ जी की प्रस्तर प्रतिमा को भी विधिवत स्थापित कराया। जगमोहन के बाहर मन्दिर के शिखर की ऊंचाई के बराबर लगभग **60** फीट ऊँचा एक रेन्फोर्स्ड कंक्रीट के गरूड़ स्तम्भ का भी निर्माण हुआ।

बढ़ौना के श्री परशुराम शर्माजी सेवानिवृत्त मुख्य अभियंता हैं। आप यज्ञादि एवं भवन निर्माण में सेवाभाव से कैंकर्य किया करते हैं। सरौती में आपका सहयोग स्मरणीय है।

सकरी खुर्द निवासी श्री नारायण जी **1957** में श्री स्वामी जी समाश्रित हुए। धनबाद पोलीटेकनीक से अभियांत्रिकी डिग्री लेने के बाद आप सरौती,

हुलासगंज, मेहन्दिया, में आजीवन विविध कैंकर्य, समस्त यज्ञादि एवं विधि व्यवस्थादि कैंकर्य में सर्वदा क्रियाशीलता के साथ भाग लेने वाले सहृदय सज्जन हैं।

5।4 सरौती की प्राचीनता

दुर्वासा ऋषि उपमन्यु से शास्त्रार्थ में हार गये थे। फलतः क्रोधित हो गये। सरस्वती देवी यह देखकर हँस पड़ी। दुर्वासा ऋषि ने सरस्वती देवी को शाप दे दिया कि तू स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर चली जा। सरस्वती देवी के दुःखी होने पर ब्रह्मा ने सांत्वना देते हुए कहा कि जाओ वहाँ एक पुत्र उत्पन्न कर तू शाप से मुक्त हो जायेगी तथा पुनः अपने मूल स्थान स्वर्ग को प्राप्त कर लोगी। ब्रह्मा ने साथ में सावित्री को भी लगा दिया। तदनुसार अरवल के पास सोननदी के किनारे स्वर्ग से सरस्वती देवी पधारीं और च्यवन ऋषि के आश्रमक्षेत्र के अन्तर्गत मधुसरमा के पास आश्रम बनाकर रहने लगीं।

ब्रह्मा के मानस पुत्र भृगु ऋषि के पुत्र च्यवन ऋषि का प्रादुर्भाव सोन नदी के किनारे हुआ था।पुलोमा राक्षस एक बार ऋषि पत्नी का अपहरण कर लिये जा रहा था। गति की तीव्रता के कारण गर्भस्राव हो गया। इससे एक तेजपूर्ण बालक जन्मा और उसकी तेज से ही राक्षस भस्म हो गया। भृगऋषि की पत्नी का गर्भस्राव होने के कारण यानी गर्भ से च्युत होने के कारण जातक का नाम 'च्यवन' पड़ा। वधू के गर्भस्राव के कारण ही स्थान का नाम 'वधुश्रवा' हो गया जो आज अपभ्रंश होकर 'मधुसरमा ' कहा जाता है। प्राचीन काल में घनघोर जंगल होने के कारण च्यवन आश्रम एक विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था जिसके अन्तर्गत कलेर के पास का देवकुण्ड तथा मधुसरमा आदि आज अवस्थित हैं। च्यवन आश्रम के बारे में एक श्लोक प्रसिद्ध है जो कीकट क्षेत्र एवं मगध की महत्ता को प्रदर्शित करता है।

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्।
च्यवनस्य आश्रमं पुण्यं पुण्यानदी पुनः पुना।।

च्यवन ऋषि लम्बी अवधि तक तपस्या रत हो गये जिसके कारण उनके शरीर के चारो ओर दीमक आदि ने वावी बना दिया। राजा शर्याति अपनी पुत्री सुकन्या के साथ एकबार यहाँ घूमते आये तथा चपल स्वभाव

वश सुकन्या ने उस दीमक बावी के भीतर से दो चमकते विन्दुओं को कुश से खोद दिया। फलस्वरूप च्यवन ऋषि की आँख फूट गयी। राजा सुकन्या को ऋषि की सेवा में छोड़कर चले गये। च्यवन ऋषि ने देवाताओं के वैद्य अश्विनी कुमार को आमंत्रित कर अपना दिव्य स्वरूप प्राप्त करने हेतु एक यज्ञ कराया। अश्विनी कुमार ने एक कुण्ड का निर्माण किया और इसके जल में औषधियों को डालकर स्वयं भी ऋषि के साथ स्नान किया। स्नान करते ही उस जल से तीन दिव्यस्वरूपधारी मनुष्य के स्वरूप में प्रकट हुए। सुकन्या अपने पति को न पहचान सकी परन्तु उनलोगों के शरण में गिरने पर उसे च्यवन ऋषि मिल गये। यही यज्ञकुण्ड आज 'देवकुण्ड' के नाम से कलेर के पास अवस्थित है जो अपभ्रंश होने के कारण 'देकुड़' कहा जाता है।

सुकन्या एवं च्यवन ऋषि से भार्गववंशीय दधीचि की उत्पत्ति हुई। सरस्वती देवी भी इस बीच इसी क्षेत्र में निवास कर रही थी। उसे कुमारावस्था से संपन्न दधीचि से प्रेम हो गया। फलस्वरूप एक पुत्र का जन्म हुआ जो 'सारस्वत' कहा जाने लगा। पुत्र उत्पत्ति के साथ ही सरस्वती देवी के शाप का अन्त हो गया तथा वह पुनः स्वर्ग में चली गयी। सरस्वती देवी के चले जाने से दधीचि उदास रहने लगे। अक्षमाला नामक एक मुनिकन्या को सारस्वत के पालन पोषण का भार दे वे तपस्या करने चले गये। अक्षमाला को भी अपने पति से एक 'वत्स' नामक पुत्र था। दोनों वच्चों का पालन पोषण का भार अक्षमाला के उपर ही था। दोनों बच्चे सहोदर भाई की तरह पाले पोसे गये तथा बाद में इन्हीं दोनों से 'सारस्वत गोत्रीय' तथा 'वात्स्यायन गोत्रीय' कुलपरंपरा चली।

वात्सयायन गोत्र में इसी क्षेत्र में 'बाणभट्ट' जैसे विद्वान का प्रादुर्भाव हुआ जिनकी 'कादम्बरी' नामक रचना संस्कृत साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखता है तथा विश्व का यह पहला उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास का नाम इसकी नायिका के नाम पर है। 'बाणभट्ट' इसको पूरा करने के पहले ही संसार से चल बसे थे। इनके वेटा भूषणभट्ट ने इसे पूरा किया जो 'कादम्बरी' का 'उत्तरभाग' कहा जाता है और 'बाणभट्ट' द्वारा रचित भाग को 'पूर्वभाग' कहते हैं। संसार में प्रसिद्ध लंदन के रायल एसियेटिक सोसायटी के

पुस्तकालय में इसकी प्राचीन प्रति तथा अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त संसार के अन्य प्रसिद्ध पुस्तकालयों में इसकी प्रतियाँ उपव्ध हैं।

वभूव वात्स्यायनवंश संभवो द्विजो जगद्जीत गणोऽग्रणी सताम्।
अनेक गुप्तार्चित पादपंकजः कुवेरनामांश एव स्वयम्भुवः वाणरचित कादम्बरी।

बाणभट्ट सातवीं शताब्दी के राजा हर्षवर्धन के राजपंडित थे। इनकी अन्य रचनायें हैं 'हर्षचरित' तथा 'पार्वतीपरिणय' आदि। विहार प्रांत के औरंगावाद जिला के हसपुरा प्रखंड में पीरो नामक एक गांव है जहाँ की बहुतायत आवादी मुसलमानों की है जो ऐसा सुना जाता है अपने को 'भूमिहार ब्राह्मण पठान' कहते हैं तथा इस गाँव के पुस्तकालय में वाणभट्ट की रचनाओं की पांडुलिपि संरक्षित है। सरौती में स्वामी जी ने एकवार 'वात्स्यायन गोत्रीय बाणभट्ट' की जयंती मनाने हेतु विद्वान इतिहासकारों की सभा बुलायी थी जिसमें पटना विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार ने भी भाग लिया था। इस सभा ने वाणभट्ट का जन्मस्थान सरौती के ही आसपास निर्धारित की थी। इससे यह अनुमान लगाना सही होगा कि यह स्थान प्राचीनकाल से ही उत्कर्ष बौद्धिक् सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक धरोहर का प्रतीक रहा है। 'वेब' दुनिया के 'वाइकीपेडिया' में 'सर्च ' करने पर 'सरौती' नामक का इस धराधाम पर अकेला स्थान मिलता है।

प्राचीन काल के 'सरस्वती आश्रम' का केन्द्रविन्दु होने के अनुमान के कारण सरौती का प्राचीन नाम 'सरस्वती' माना जाता है जो वाद में अपभ्रंश होकर 'सरौती' पुकारा जाने लगा। ऐसे भी श्रीस्वामी पराङ्कुशा चार्य जी के यहाँ पदार्पण से तथा इस स्थान को अपने कर्मक्षेत्र का केन्द्र बनाने से इसकी पवित्रता एवं महत्ता प्रमाणित होती है। अब तो यह '**अवलोकत अपहरत विषादा**' को चरितार्थ करता है तथा '**स्रवति इति सरौती**' यानी '**जहाँ पाप का स्वतः स्राव हो जाय**' यानी 'जहाँ स्वयंमेव पाप बह जाये' वह 'सरौती' है यह स्वतः सिद्ध हो गया है। इस संदर्भ में स्वामी जी के एक पद का उल्लेख भी प्रासंगिक है।

बसो रे मन स्वामी वेङ्कटनाथ।
अशरण शरण नाथ करूणाकर चरण दिखाते हाथ।।1

माता पिता बंधु गुरू शेषी चरण कमल दे माथ।
माशुच प्रणतपाल चिन्तामणि सदा चतुर्भुज साथ।।2
अवधनाथ व्रजनाथ नाथमुनि जगन्नाथ मम नाथ।
बद्रीनाथ रंगवरदनाथ हरि मुक्तिनाथ श्रीनाथ।।3
ईश्वर मुनिनन्दन यामुनमुनि राममिश्र यतिनाथ।
देवदनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवश अनाथ।।4
अधम अधीन अनाथ अकिंचन चरण शरण ही सनाथ।
शबरी गीध अजामिल गणिका सूरतनाथ यदुनाथ।।5
गीतामृत प्रपन्न अर्जुन हित अर्चा रूपनाथ रघुनाथ।
कृष्णवसन रूप नटनागर धाये धाम द्वारिकानाथ।।6
तिरूपति जन्ममरण पालन प्रभु निर्गुण सगुण रूप हरिनाथ।
महापूर्ण कांची मुनिवाहन मधुर शठारिनाथ।।7
श्रीश्रीनिवास सरनौती स्वामी श्रीपराङ्कुश पारसनाथ।
मगध विष्णुपद बलि वामन मिस गयागदाधर नाथ।।8
नारायण परब्रह्म परमपद पतितपावन दीनानाथ।
बसो रे मन स्वामी वेङ्कटनाथ।।9

उपर्युक्त पद में 'सरौती' को '**सरनौति**' कहा गया है। इसमें 'न' का लोप होने से यह सरौती हो जाता है। अतः जहाँ सवों को '**शरण' मिले वही 'सरौती'** है।

5।5 ठाकुरवारी की व्यवस्था

ई सन् 1912 में जव पहली वार 'श्रीराघेवन्द्र सरकार' को ठाकुरवारी बनाकर पधरवाया गया था उस समय ही भक्तप्रवर सरौती ग्रामीण श्रीराघव जी ने ठाकुरजी के नाम 3 विगहा जमीन समर्पित की थी। उसी जमीन पर आज का वर्तमान परिसर है जिसमें विद्यालय गौशाला तथा ठाकुरवारी स्थित हैं। ठाकुर जी के नाम उस समय जमीन की विधिवत रजिस्ट्री नहीं हुई थी इसलिये यह जमीन्दारी कुप्रथा का शिकार हो गया था तथा सरौती के अन्य भूभाग के साथ यह भी निलाम हो गया। श्रीस्वामीजी को जमीन्दारों से इसे खरीदना पड़ा था।

खैरा विद्यालय के बन्द होने में विद्यालय की अपनी किसी परिसम्पत्ति का नहीं होना भी एक कारण था क्योंकि चन्दा पर ही सवकुछ निर्भर था। इस कटु अनुभव को ध्यान में रखते हुए रजनधारी वावू के सौजन्य से श्रीस्वामी जी ने सरौती ठाकुरवारी के लिये और जमीन खरीद लिये। इस

तरह से शीघ्र ही ठाकुरवारी के पास अपनी अस्सी पचासी बिगहा जमीन हो गयी। फलस्वरूप ठाकुरवारी तथा सरौती में संस्थापित विद्यालय का संचालन स्वतंत्र रूप से सुगम हो गया।

5।6 वृन्दावन में ठाकुरवारी

ई सन् **1942** में अपने परमप्रिय शिष्य गदाधर जी के परमपद प्राप्त होने के कारण श्रीस्वामी जी बहुत विचलित एवं उदासीन दिखने लगे। संयोग से डेढ़सैया के ब्रह्मचारी जी नामके इनके एक शिष्य जो विरक्त स्वरूप में राजस्थान जयपुर में रहा करते थे एकबार सरौती आये। श्रीस्वामी जी ने इन्हें सरौती को भी अपना ही मानने का प्रस्ताव दिया और वे इसे स्वीकार कर श्रीस्वामी जी महाराज की सहायता करने लगे। श्रीब्रह्मचारी जी का मुख्यालय यद्यपि जयपुर में ही रहा परन्तु धीरे धीरे ये सरौती से भी जुड़ने लगे। एकबार **1965** ई में उन्होंने श्रीस्वामी जी को वृन्दावन में भी एक ठाकुरवारी बनाने का प्रस्ताव दिया। श्रीस्वामी जी के समस्त शिष्यमंडली ने मनोयोग से सहयोग कर आपस में चन्दा किया तथा साठ हजार रूपये में वृन्दावन में श्रीरंगजी मंदिर के समीप ही 'गवाने की हवेली' नामक एक बना बनाया **22** कमरे का भवन खरीद लिया गया। श्रीस्वामी जी ने इसी भवन में भगवान की स्थापना के अतिरिक्त संस्कृत विद्यालय की स्थापना करनी चाही और इसीलिए इसकी रजिस्ट्री में स्वामी रूपदेव जी के नाम को भी सम्मिलित करना चाहते थे।परन्तु श्रीब्रह्मचारी स्वामी जी ने रजिस्ट्रि अपने नाम करा ली। बड़ेबगीचा के पास जो जमीन श्रीस्वामी जी ने श्रीरंगमंदिर से प्राप्त की थी उसपर श्रीब्रह्मचारी स्वामी जी ने एक नये भवन का निर्माण कर उसमें श्रीवेङ्कटेश भगवान को **1986** ई में पधरवाया तबतक श्रीस्वामी जी महाराज परमपद कर चुके थे। श्रीस्वामीजी का संस्कृत विद्यालय वाली भावना की उपेक्षा हो गयी। ई सन् **1987** में **72** वर्ष की अवस्था में श्रीब्रह्मचारी स्वामी जी का देहावसान हो गया। वृन्दावन की व्यवस्था श्रीब्रह्मचारी स्वामी जी के जिम्मे थी इसलिये यह सरौती स्थान की मुख्यधारा से अलग थलग ही पड़ा रहा।

5।7 सरौती में उत्तराधिकार का विवाद

वृन्दावन में संस्कृत विद्यालय बनाने की श्रीस्वामी जी की आंतरिक

ईच्छा की पूर्ति की उपेक्षा की गयी क्योंकि श्रीब्रह्मचारी जी का सोचप्रवाह अलग था। इससे श्रीस्वामी जी महाराज श्रीब्रह्मचारी जी के तरफ से उदासीन रहने लगे। ई **1968** में सिमरी भोजपुर यज्ञ के निमंत्रण से सरौती लौटने पर स्वामी रामप्रपन्न जी ने स्वामी जी से रात्रि के विश्रामकाल में कहा 'अब ब्रह्मचारी स्वामी जी को काम करने दीजिये।' श्रीस्वामी जी महाराज ने कहा 'उन्हें किसने मना किया'। इससे श्रीस्वामी जी को लगा कि शायद ये लोग चाहते हैं ' मैं अब सरौती छोड़ दूं।' प्रातः उठकर श्रीस्वामी जी ने माधव जी को रात्रि की बात बताते हुए कहा 'अब मैं बद्रिकाश्रम जा रहा हूँ। विद्यार्थियों को बुलाओ और मेरी सभी पुस्तकें उनलोगों में बॉट दो क्योंकि ब्रह्मचारी को इन पुस्तकों की आवश्यकता तो है नहीं।' माधव जी यह सुनकर अवाक् रह गये परन्तु उन्होंने तुरत कहा ' सरकार **!** हजारों श्रीवैष्णवों का क्या होगा **?** उनकी जानकारी बिना आप कैसे स्थान छोड़ देंगे।' पंडित श्री श्यामसुन्दर शर्मा जी भी सरौती में ही थे और उनको इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने श्रीस्वामी जी से निवेदन किया कि श्रीवैष्णवों की एक सभा बुलाकर इसका निर्णय लिया जाय। ऐसे सभी को अनाथ करते हुए सरकार कैसे चले जायेंगे **!'** श्रीवैष्णव शिष्यमंडली को भी इस बात का आभास हो ही रहा था फलस्वरूप श्रीस्वामी जी महाराज की सहमति से एक सुयोग्य उत्तराधिकारी के अन्वेषण के लिये सरौती में एक सभा हुई। श्रीस्वामीजी महाराज की उपस्थिति में मिर्जापुर के श्रीठाकुर बाबू के सभासंचालन में श्रीवैष्णव भक्तों ने सर्वमतेन श्रीरूपदेव स्वामी जी को सुयोग्य पाया। रामपुर चौरम के पं कन्हैया जी एवं रघुनाथपुर के पं रामनन्दन शर्मा जी आदि कार्यान्विन समिति के सदस्य बनाये गये। भक्तों की ईच्छा को मुखर करने वाले पंडित माधव शर्मा जी एवं पंडित श्यामसुन्दर शर्मा जी हुए। श्रीब्रह्मचारी स्वामी एवं स्वामी रामप्रपन्नाचार्य जी को यह प्रस्ताव मंजूर नहीं हुआ अतः यह विवाद का कारण बन गया।

तरेत स्थान के तरफ से **1972** ई में जलपुरा में यज्ञ हुआ था। श्रीस्वामी जी वहाँ अस्वस्थ हो गये। सरौती लाये गये परन्तु मूर्छा चार दिन तक बनी रही। श्रीस्वामी जी को स्वस्थ होने के लिये पंडित श्रीश्यामसुन्दर जी

दिव्यचरितामृत स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज

ने वेङ्कटेश भगवान को एक मन शुद्ध घी के लड्डू की मिन्नत मान दी। **107** वर्षीय श्री स्वामी जी भगवत कृपा से स्वस्थ हो गये। एक मन लड्डू वाला भगवान की मिन्नत पंडित श्यामसुन्दर जी ने पूरी की। **1969** में ही श्रीस्वामी जी ने **9** एकड़ जमीन वेङ्कटेश भगवान एवं स्वामी श्री रूपदेव जी को सेवाईत बनाते हुए रजिस्ट्रि कर दी। बाद में **19** दि **1973** मे दो डीड की रजिस्ट्री हुई जिसमें एक डीड में श्री स्वामी जी ने जो जमीन अपने नाम से पूर्व में खरीद की थी वो सब सरौती महाविद्यालय तथा बनारस महाविद्यालय के नाम रजिस्ट्री करते हुए सब का सेवाईत स्वामी रूपदेव जी यानी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य को बना दिया। दूसरे डीड में **11** गन्यमान्य श्रीवैष्णवों को सदस्य बनाते हुए सरौती एकवारी तथा बरविगहा आदि के सभी स्थानों का स्वामी रूपदेव जी को सेवाईत बना दिया।

1973 ई के फागुन महीने के मधुसरमा यज्ञ में श्रीब्रह्मचारी स्वामी एवं स्वामी रामप्रपन्नाचार्य ने नये ट्रस्ट आदि पर आपत्ति प्रकट की। स्वामी रूपदेव जी ने उनलोगों को आश्वस्त किया ' मैं अपना अधिकार रजिस्ट्री से निरस्त करने को तैयार हूँ।' इस पर उनलोगों ने रामनवमी में सरौती में श्रीवैष्णवों के निर्णय के लिये छोड़ दिया। रामनवमी में श्रीवैष्णवों की बैठक में वाद विवाद के माहौल हो जाने के कारण मामला अनिर्णित रह गया। बाद में वे लोग **1975** ई में मामले को सरकारी अदालत में ले गये। श्रीस्वामी जी के तरफ से मुख्य रूप से पंडित श्यामसुन्दर शर्मा जी अदालत के कार्य को देख रहे थे। पंडित श्रीश्यामसुन्दर शर्मा बनारस में मीमांसा के विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत थे। ई **1976** के दिसम्बर में बनारस में ही उनकी हत्या कर दी गयी जिसके मूल में सरौती का विवाद ही था। बनारस के अदालत से अभियुक्तों को सजा भी हो गयी।अभियुक्त जेल गये फिर वेल मिला और मामला जब उच्चन्यायालय इलाहाबाद में गया तो श्रीरूपदेव स्वामी जी ने सोचा ' मैं तो कई वर्षो से सरौती छोड़कर हुलासगंज श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान की शरण ले चुका हूँ। जब विरक्त जीवन अपना ही लिया तो अब यह अदालत एवं न्यायालय का चक्कर सधुआई के अनुकूल नहीं है।' अपने

तरफ से इन्होंने सबकुछ भगवद ईच्छा पर ही समर्पित कर उदासीन रहने लगे।

1987 ई में श्रीब्रह्मचारी स्वामी की मृत्यु के बाद स्वामी रामप्रपन्न जी ने स्वयं को अदालत में उनका उत्तराधिकारी घोषित किया परन्तु यह उत्तराधिकार भी विवादित हो गया। श्रीब्रह्मचारी जी के भतीजा ने अपना दावा अदालत में पेश किया। इस तहर से स्थिति उलझती गयी परन्तु स्वामी रामप्रपन्न जी को पर्याप्त समय मिला एवं स्वामी रूपदेव जी से समझौता की शुरूआत हुई। फलस्वरूप ई **1989** में सरौती एवं बनारस के संरक्षक स्वामी श्री रूपदेव जी हो गये तथा जयपुर एवं वृन्दावन श्रीब्रह्मचारी जी एवं स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी को रह गया।

5।8 सरौती में शिक्षण संस्थान

खैरा विद्यालय के बन्द होने पर पंडित श्रीगदाधार जी के अथक प्रयास से सरौती में ही नये विद्यालय का शुभारंभ हुआ। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण 'परमपदप्राप्त परमप्रिय विरक्तशिष्य पंडित श्री गदाधर जी' नामक अध्याय के अवालेकन से मिल जायेगा। उस समय संस्कृत विद्यालय 'टोल पद्धति' पर खोले जाते थे जिसके अन्तर्गत एक ही विद्यालय में प्रथमा से लेकर आचार्य तक की शिक्षा दी जाती थी। अब ई सन् **1975** से लागू नवीन पद्धति के अनुसार पूर्व के विद्यालय को महाविद्यालय कर दिया गया परन्तु वहाँ मात्र 'शास्त्री' की शिक्षा को ही सीमित कर दिया। प्रथमा मध्यमा आदि आधुनिक स्कूल के आधार पर हो गये जहाँ संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विषयों को भी अनिवार्य कर दिया गया। इसी नवीन पद्धति के कारण आज सरौती में श्रीस्वामी जी के समय का विद्यालय ही महाविद्यालय बनगया है जहाँ शास्त्री में शिक्षा लेने का विधिवत प्रावधान है। आचार्य की शिक्षा के लिये कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय पर ही निर्भर होना पड़ता है। इस संदर्भ में हुलासगंज के महाविद्यालय का उल्लेख ध्यातव्य है कि संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय बनारस से जुड़े रहने के कारण हुलासगज में आचार्य तक की शिक्षा की विधिवत सुविधा उपलब्ध है।

पंडित माधव शर्भा जी के अतिरिक्त गुरू जी के नाम से प्रसिद्ध श्री रामदेव झा जी का सरौती संस्थान में स्मरणीय योगदान रहा है। गुरूजी न्याय

एवं व्याकरण के उद्भट विद्वान थे। इनकी शिष्यावली बहुत ही विशाल है। स्वामी रूपदेव जी, पंडित श्याम सुन्दर शर्मा जी आदि इनके शिष्य रह चुके हैं। बीच में ये दरभंगा चले गये थे परन्तु पुनः ई **1971** से ई **1978** तक इन्होंने सरौती मे अध्यापन कार्य किया। इस अवधि में हरेराम स्वामी आदि अन्य विद्यार्थीगण इनसे न्याय पढ़े। ई **1978** में ये पुनः 'शास्त्र चूड़ामणि योजना' में दरभंगा वि वि चले गये।

5।9 मातृ प्रेम

श्रीस्वामी जी अपनी माँ से अंत तक जुड़े रहे। श्रीस्वामी जी महमतपुर जाते थे परन्तु अपने घर नहीं जाते थे। माँ वृद्धा हो गयीं थीं। माँ को जब एकबार इनके आगमन का पता चला तो लड़खड़ाते दीवार के सहारे इनके ठहराव स्थल पर पहुँच गयीं एवं बोलीं 'माँ को क्यों भूल गये बेटा'। श्रीस्वामी जी ने माँ को साष्टांग प्रणाम कर घर पहुँचाया तथा इसके बाद जवकभी भी इस क्षेत्र में आते तो अपनी माँ का दर्शन अवश्य करते थे। माँ जब परमपद कर गयीं तो स्वयं आचार्य बनकर इन्होंने नारायणवलि संपन्न कराया। रघुनाथपुर निवासी श्रीराजदेव शर्मा जी ने बताया कि श्रीस्वामी जी कहा करते थे '**गऊ एवं माँ में कोई दोष नहीं होता है।**'

स्वामी जी ने अपनी माँ का श्राद्ध बिन्दुसरोवर में भी किया था। बिन्दुसरोवर गुजरात के पाटन जिलें में है जो सिद्धपुर के पास है। सिद्धपुर अहमदावाद से **103** कि मी उत्तर में है। इसी के पास अन्हिलवाद है जो पूर्व में गुजरात की राजधानी हुआ करती थी और **10**वीं सदी में सोलंकी राजा की राजधानी के लिये प्रसिद्ध हो गयी थी। **15**वीं सदी से अहमदावाद राजधानी हुई। सिद्धपुर सरस्वती नदी के बायें तट पर है। विन्दु सरोवर को 'मातृ गया' या 'मातृ गया क्षेत्र' तथा 'मातृ श्राद्ध' कहा जाता है। यहाँ कपिल मुनि का आश्रम है और इस आश्रम के पास ही तीन कुंड हैं ः 'ज्ञान वापिका' 'अल्प सरोवर' एवं 'बिन्दु सरोवर'। माँ के श्राद्ध के लिये पृथ्वी पर यह अकेला स्थल है। परशुराम जी ने भी अपनी माँ का श्राद्ध यहाँ किया था। कार्तिक माह में श्राद्ध करने का विधान है और इसे श्राद्धमास कहते हैं। बिन्दुसरोवर को 'श्रीस्थल' भी कहते हैं। इस पृथ्वी पर पांच सरोवर प्रसिद्ध हैं ः 'मान सरोवर

तिव्वत में' 'पुष्कर सरोवर राजस्थान में' 'नारायण सरोवर कच्छ गुजरात में' 'पंपा सरोवर हम्पी कर्नाटक में' एवं 'बिन्दु सरोवर सिद्धपुर गुजरात में'। भगवान विष्णु के अश्रुबूँद इस सरोवर में गिरे थे इसीलिये इसे बिन्दुसरोवर कहते हैं। यहाँ 'गया गदाधर' 'कपिलमुनि' 'देवहूति' एवं 'कर्दम मुनि' के अलग अलग मंदिर हैं।

श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के अंतिम चार अध्यायों में इसका संदर्भ द्रष्टव्य है। मनु शतरूपा ने अपनी बेटी देवहूति का कर्दम मुनि से विवाह किया। देवहूति से नौ कन्या तथा दसवीं सन्तान पुत्र के रूप में कपिल मुनि आये जो भगवान के ज्ञानावतार माने जाते हैं। इन्होंने देवहूति को भक्तियोग तथा वैराग्य का ज्ञान देकर उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर दिया। कर्दम मुनि ने देवहूति के साथ बिन्दुसरोवर के पास ही तपस्या की थी तथा कपिलमुनि का अवतार भी इसी स्थल पर हुआ था। माँ देवहूति को भगवान कपिल के उपदेश से मुक्ति मिली थी इसीलिये यह स्थान मातृ श्राद्ध क्षेत्र हो गया।

5।10 श्रीस्वामी जी के धार्मिक कृत्य एवं पुस्तकों का प्रणयन

श्रीवैष्णव मत में संस्कार करने के अतिरिक्त श्रीस्वामी जी गाँवों में 'श्रीमद्भागवत्' तथा 'हरिवंश' की कथा सुनाया कराते थे। श्रीस्वामी जी की कृपा से अनेकों निःसंतान लोगों को 'हरिवंश' की कथा सुनने से संतान की प्राप्ति हुई है। भक्तों के बीच श्रीस्वामी जी ने कथा सुनाने में 'भागवत सप्ताह' का बंधन नहीं रखा। सुविधानुसार वे सबको एक दो या तीन दिनों की भागवत कथा सुनाया करते थे। इनके पास भागवत की संस्कृत मूल वाली ही पुस्तक सदा विराजमान रहती थी।

तरेत स्थानाधीश श्री वासुदेवाचार्य जी के परमपद के पूर्व हरिहरक्षेत्र का बाड़ा तरेत से ही आयोजित हुआ करता था। उनके बाद कुछ परिस्थिति बदली और पालीगंज के पास के रघुनाथपुर ग्राम के श्रीस्वामीजी के प्रियशिष्य श्रीदामोदर जी के विशेष आग्रह पर हरिहर क्षेत्र तथा प्रयागराज में सरौती स्थान का भी पृथक बाड़ा लगने लगा। श्रीस्वामी जी के बाड़ा एवं यज्ञादि में रूकुन्दी एवं गया के निवासी श्रीरामाधार शर्मा जी का उल्लेखनीय सहयोग

रहा है। संप्रति श्रीजगन्नाथपुरी में परमहंस स्वामीजी की स्मृति में आप एक अतिथिशाला बनाने में सर्वभावेन सेवारत हैं।

श्रीस्वामी जी ने अपने आध्यात्मिक अनुभव का लाभ अपने तक सीमित नहीं रखकर निम्नांकित पुस्तकों का प्रणयन किया जिससे भक्तगण भी पूर्णतया लाभान्वित हुए तथा होते रहेंगे।

1। ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायण वलि पद्धति। **2**। अर्चागुणगान।**3**। श्रीपरमहंस स्वामी राजेन्द्रसूरि जी महाराज की संक्षिप्त जीवनी प्रथम भाग। **4**।साम्प्रदायिक पश्नोत्तर स्त्री एवं मंत्र परमहंस स्वामी जी की जीवनी द्वितीय भाग। **5**। राम रहस्य एवं हिंसा।परमहंस स्वामी जी की जीवनी तृतीय भाग **6**। महाप्रयाण परमहंस स्वामी जी की जीवनी चतुर्थ भाग। **7**। श्रीसीताराम परिचय एवं मानस शंका समाधान। **8**। एक नारायण ही उपास्य क्यों। **9**। ध्रुव प्रह्लाद चरित्र । **10**। सुदामा चरित्र।

'अर्चागुणगान' एक अत्यंत उच्च कोटि की रचना है जिसमें श्रीस्वामी जी का भगवान से अंतःसंवाद का सजीव चित्रण है। इस पुस्तक के बारे में 'दिव्यचरितामृत' का नौवां अध्याय द्रष्टव्य है। ये सभी पुस्तकें 'श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद' हुलासगंज से स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी के सौजन्य से प्रकाशित हैं।

5।11 श्रीनिवास भगवान से लगाव

जीवन पर्यन्त श्रीवैष्णव दिव्यदेश की अनगिनत यात्रा के अन्तराल श्रीस्वामी जी तिरूमला के श्रीनिवास भगवान से विशेष रूप से जुड़ गये तथा इन्हें अपना इष्टदेव बना लिया। श्रीनिवास भगवान ही श्रीवेङ्कटेश भगवान या श्रीबाला जी भी कहे जाते हैं। सरौती में स्थानाधीश बनने के पूर्व से ही राघवेन्द्र सरकार सीताजी एवं लक्ष्मणजी के साथ विराजमान थे जिनका प्राणप्रतिष्ठा परमहंस स्वामी जी ने ग्रामीणों के आग्रह पर कराया था। इसी गर्भगृह में श्रीस्वामी जी ने भी अपने परमप्रिय श्रीनिवास भगवान की स्थापना ई **1968** के वैशाख शुक्लपक्ष में बहुत उल्लास एवं धूम धाम से करायी। कभी कभी भक्तों से भावविभोर हो श्रीस्वामी जी कहते थे 'श्रीनिवास भगवान माखन चुराने वाले एक नटखट बालक हैं।'

जब भी स्वामीजी बालाजी के दर्शन को जाते थे तो वहाँ बीसो मन लड्डू का भोग लगवा कर स्थानीय मठों में बाँटते थे तथा सरौती लाते थे। तिरूमला के संत लोग स्वामी जी की श्रद्धा देखकर अवाक् रहते थे तथा इस बात का उल्लेख करते थे कि स्वामी जी के चश्मा रखने वाले कवर में साक्षात लक्ष्मी वसती हैं। पता नहीं एक छोटे चश्मे के खोल से कितने रूपये स्वामी जी खर्च करते रहते थे क्योंकि लड्डू भोग में ही उस जमाने में पन्द्रह सोलह हजार रूपए लगा देते थे। बाकी श्रीवैष्णव संत के सम्मान के खर्च अलग ही रहता था। सरौती लौटने पर समस्त श्रीवैष्णव गाँवों मे श्री स्वामी जी बालाजी के लड्डू का प्रसाद निश्चित रूप से उपलब्ध कराते रहते थे।

5।12 श्रीस्वामी जी के बारे में भक्तों के संस्मरण सुमन

आथर्वणं सुमनसां प्रवरमहान्तं कौन्डिन्यवंशमनधं करूणालयन्तम्।।
राजेन्द्रदेशिकपदे विनिवेशयन्तं श्रीमत् पराङ्कुडामुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्।।

श्री रंगदेशिक स्वामी के चरणाश्रित परमहंस स्वामी श्री राजेन्द्रसूरि जी के पदछाया में रहने वाले अथर्ववेदी पुण्यवान कौडिन्य ऋषि के अथरव कुल के पुष्प सा सुकोमल गुरू स्वामी पराङ्कुश जी की सदा वन्दना करता हूँ।

सरौतीस्वामी जी ने हजारो गाँवों को श्रीवैष्णव मत में समाश्रित कर लाखों भक्तों का उद्धार किया। इनके सभी भक्तों के अपने अपने दिव्य संस्मरण हैं। सबों को एकत्रित करना संभव नहीं है। कुछेक संस्मरण सुमन ही यहाँ अर्पित हो सके हैं।

5।12।1 पंडित श्रीमाधव शर्मा जी द्वारा संग्रहित संस्मरण

विद्याज्ञानवयः पूज्यं श्रीपराङ्कुशमाश्रितम्।
शिष्योपशिष्यान् पाठयन्तं माधवार्यं नमाम्यहम्।।

श्रीमाधव शर्मा जी का जन्म ई सन् **1921** में जलालपुर गाँव में हुआ था। बचपन में ही सरौती स्वामी जी से श्रीवैष्ण्व संस्कार से सुसंस्कृत हो खैरा संस्कृत विद्यालय में पढ़ने आ गये थे। इनको पंडित गदाधार जी का स्नेह प्राप्त था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा खैरा में हुई तथा खैरा विद्यालय बंद हो जाने के बाद ये पंडित गदाधर जी के साथ पटना गये और वहीं से व्याकरण में आचार्य की शिक्षा पूरी की। गृहस्थजीवन स्वीकार करते हुए सकूराबाद

अनन्तर ये सरौती संस्कृत विद्यालय में शिक्षक के रूप में कार्यरत हो गये तथा अपनी कर्मठता एवं गुरूभक्ति के कारण सरौती स्वामी जी के स्नेहभाजन बन गये। इनका संपूर्ण जीवन सरौती में ही बीता है और आज **92** वर्ष की अवस्था में भी ये भगवद कैंकर्य तथा श्रीवैष्णवों की सेवा करते हुए सरौती ठाकुरवारी में ही निवास करते हैं। इन्होंने '**लघु कर्मकाण्ड चन्द्रिका**' तथा '**श्रीविष्णुसहस्रनाम भाष्य**' की रचना की है जो 'श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद' हुलासगंज से प्रकाशित है।

पंडित जी या गुरूदेव के नाम से प्रसिद्ध ये श्रीस्वामी जी से सम्बन्धित इतिहास के एक प्रामाणिक एवं जीवन्त स्रोत हैं। सरौती से पढ़कर निकलने वाले सभी विद्यार्थी इनके शिष्य रहे हैं चाहे वो हुलासगंज के स्वामी जी हों या परमपद प्राप्त पंडित श्यामसुन्दर शर्माजी या स्वामी रामप्रपन्नाचार्य जी या छोटे स्वामी हरेरामजी। व्याकरण के अतिरिक्त कर्मकाण्ड एवं ज्योतिष के व्यवहारिक ज्ञान बाँटने में ये सर्वोपरि रहे हैं।

कुंडली बनाने एवं कर्मकाण्ड में प्राप्त दक्षिणा की राशि के संग्रह से सरौती में मंदिर के पीछे मंदिर परिसर ही में महाविद्यालय के भवन के निर्माण का श्रेय पंडित जी को है। स्थानीय जनों से भी इस निर्माण में इन्हें सहायता मिली। **1989** तक ये महाविद्यालय के प्राचार्य रहे उसके वाद सेवानिवृत्त हो गये। इसी महाविद्यालय को **2011** में हुलासगंज स्वामी जी ने श्री परशुराम शर्मा जी सेवा निवृत्त मुख्य अभियंता के सहयोग से नये भवन में स्थानान्तरित कर दिया जो मंदिर परिसर के प्रवेश द्वार के वाहर है। इससे मंदिर परिसर के भीतर का अनुशासन पर नियंत्रण रखने में सहायता मिली है। गुरूदेव की उपस्थिति से सरौती में पढ़ाई लिखाई का कार्यक्रम सुचारू रूप से चलते रहा है।

सरौती में उत्तराधिकार के विवाद में पंडित जी एक ''**खैरा पीपर कभी न डोले**'' की तरह एक दृढ़प्रतिज्ञ अचल स्तंभ के रूप में सर्वदा सरौती में विराजते रहे। अगर पंडित जी न होते तो विवादी लोगों के कारण सरौती स्थान आज किस दयनीय स्थिति में रहता इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सभी तरह के जानलेवा समाचार एवं प्रतिकूल अफवाह से ये कभी

भयभीत नहीं हुए तथा निर्भय होकर विबाद को एक शुभ परिणति तक पहुँचाये।

इनके पुत्र युवावस्था में परमपद कर गये परन्तु उनके श्राद्धकर्म में इनकी भगवत श्रद्धा देखते बनती थी। एक सच्चे श्रीवैष्णव परिजन की मृत्यु से शोकाकुल न होकर उसे परमपद प्राप्ति का सोपान मानते हैं और इसी व्यक्तित्व का परिचय आपने उस समय दिया था।

पंडित जी द्वारा पढ़ाये गये हजारों हजार विद्यार्थी रहे हैं उसमें से कुछेक गण्यमान्य का उल्लेख किया जा रहा है।

1। पंडित चक्रपाणी शर्मा, अकरौंजा, आचार्य व्याकरण एवं न्याय।
2। श्रीकेशव प्रपन्न शर्मा, पंडुकी गोह, केरल गुरूवायूर विद्यापीठ में प्राध्यापक।
3। डा कमलनयन शर्मा, सरवानी चक, राजस्थान जयपुर विद्यापीठ में रीडर। इन्होंने कईलोगों को पीएचडी कराया तथा स्वयं व्याकरण धर्मशास्त्र मीमांसा में आचार्य।
4। श्रीगोवर्धनधारी शर्मा, कलेन ओबरा, वाराणसी वेङ्कटेश पराङ्कुश महाविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में अध्यापान, श्रीसीतराम आश्रम बिहटा के उच्चविद्यालय में अध्यापन कार्य।
5। श्रीनंदकिशोर शर्मा, पंडुकी गोह, अकवरपुर वासुदेव संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन कार्य, दरभंगा संस्कृत विश्विद्यालय के तीन वर्षो तक कुलपति रहते हुए परमपद हो गये। ये आजीवन अविवाहित रहे।
6। श्रीनरेन्द्र शर्मा, सलारपुर, आचार्य द्वय, सरौती में प्राध्यापक
7। श्रीपरशुराम शर्मा, सरवानीचक, हुलासगंज संस्कृत उ वि में अध्यापन
8। श्रीनन्दकिशोर शर्मा, ओड़विगहा प्राधनाध्यापक उ वि हुलासगंज।
9। श्रीधर शर्मा, आचार्य, सोहसाचंदा, वाराणसी एवं जहानाबाद में अध्यापन।
10। श्रीवेङ्कटेश शर्मा, आचार्य, वरूणा, प्राध्यापक म वि हुलासगंज।
11। श्रीवेदनिधि शर्मा, आरा ब्रह्मर्षि उ वि विद्यालय अध्यापन।
12। श्रीवलराम शर्मा ओड़विगहा, हाटी उ वि में अध्यापन। आचार्यभाव से ओतप्रोत तथा पंडित जी का वात्सल्यभाजन एवं चन्दा संग्रह में समर्पित भाव से कार्य रत।

13। श्रीविजय शर्मा, कुंड़िला, साहित्याचार्य, वाराणसी वें प्रा म वि में प्राध्यापक तथा वाराणसी में प्रेस के माध्यम से श्रीपराङ्कुश संस्कृत सस्कृति संरक्षा परिषद हुलासगंज से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों पंचांग एवं पत्रिका में सहायता।

14।श्रीविजय कुमार, सोहसाचंदा, प्राचार्य वें प्रा म वि वाराणसी।

15।श्रीनिवास जी, वरूणा, व्याकरण शास्त्री, वृन्दावन में आश्रमवासी।

श्रीस्वामी जी के निम्नांकित संस्मरण पंडित माधव शर्मा जी द्वारा संग्रहित हैं।

आचार्य लक्षण

सरौतीस्वामी जी एक आदर्श आचार्य के सभी गुणों से संपन्न थे। सदगुरू से सम्बन्ध बनने पर पापी भी तर जाते हैं। स्वामी यामुनाचार्य ने स्तोत्र रत्न में कहा है कि **'अत्र परत्र चापि यदीय चरणौ शरणं मदीयम्'** यानी गुरू का चरणाश्रय इस लोक तथा परलोक दोनों में कल्याणकारी होता है।

'आचार्य के लक्षण' को परखने में श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी द्वारा विरचित 'न्यासविंशति' का श्लोक ध्यातव्य है।

सिद्धं सत्संप्रदाये स्थिरधियमनघं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।
सत्वस्थं सत्ववाचं समयनियतया साधुवृत्यासमेतम्।।
दम्भासूयादि मुक्तं जितविषयिगणम् दीर्घबन्धुं दयालुम।
स्वालित्ये शासितारं स्वपरहितपरं देशिकं भूष्णुरीप्सेत्।।

आचार्य या गुरू वही हो सकते हैं जो ः

सिद्धं सत्सम्प्रदाये ः भगवान से लेकर पूर्वाचार्य की परम्परा में प्रवृत्त।

स्थिरधियम् ः विशेषार्थ के ज्ञान से संपन्न स्थिर बुद्धिवाले ।

अनघम् ः पापाचरण से विरत।

श्रोत्रियम् ः शास्त्र के गहन अध्ययन द्वारा तत्वज्ञान से सम्पन्न।

ब्रह्मनिष्ठम् ः अपारनिष्ठा के साथ भगवान को ही उपाय मानने वाले।

सत्वस्थम् ः सात्विक आहार एवं सदाचार वाले

सत्यवाचम् ः सत्य परायण यानी मन वचन कर्म से सत्य में रत रहने वाले।

समयनियतया ः शास्त्र निर्देशित समयानुकुल आचरण वाले।

दम्भ असूयादि मुक्तम् ः दिखावटी धर्माचरण एवं गुण में दोष देखने की प्रवृत्ति से मुक्त रहने वाले।

जितविषयिगणम् ः इन्द्रियसुख पर विजय प्राप्त करने वाले।

दीर्घबन्धुम् ः दूसरे के कल्याण के लिये सदा सचेष्ट रहने वाले।

दयालुम् ः स्वार्थ रहित हो दूसरे के दुःख को दूर करने वाले।

स्खालित्ये शासितारम् ः पथभ्रष्ट लोगों को दया या दंड से सदाचार बताने वाले।

स्वपरहितपरम् ः अपने या दूसरे के मोक्ष के लिये सदा तत्पर रहने वाले।

देशिकंभूष्णुरीप्सेत ः उपर्युक्त मंगलकारी से युक्त रहने वाले।

ख। **गुरूसेवा ः**

सरौती स्वामी जी अपने गुरू परमहंस स्वामी जी के अनन्य भक्त थे तथा अपना जीवन उनके लिये समर्पित कर दिया था। **'गुरूमुखमनधित्यप्राह वेदान् शेषान् ....'** को चरितार्थ करते हुए आपने सभी शास्त्रों का ज्ञान गुरूमुख से सुनकर ही प्राप्त कर लिया था।

ग। कुछ विलक्षण घटनायें ः

रात्रि में दैवी सहायता

एक बार वर्षात की रात में आठ नौ वजे के लगभग श्रीस्वामी जी अकेले ही गया से टिकारी आ गये थे। यहाँ से पाँच छः कोस यानी **10** कि मी दूर जलालपुर गाँव जाना चाहते थे परन्तु रास्ता पता नहीं था। द्वन्द में थे कि क्या करना चाहिए। इतने ही में एक व्यापारी बैल पर सामान लादे हुए आते दिखा। पूछने पर बताया कि वह जलालपुर जा रहा था। देर रात श्रीस्वामी जी जलालपुर आ गये तथा माधवजी उस समय अपने गाँव में ही थे। इन्होंने श्रीस्वामी जी का स्वागत सत्कार किया तथा इसे भगवत् कृपा ही मानी कि देर रात व्यापारी के रूप में कोई सहायक मिल गये जो जलालपुर तक साथ आये।

छूतक निर्णय

जलालपुर गाँव में ही किसी की मृत्यु हो गयी थी तथा एकादशह श्राद्ध के दिन गोतिया में ही दूसरी मृत्यु की घटना घट गयी। असमंजस की स्थिति हो गयी

कि द्वादशाह संपन्न किया जाय या स्थगित कर दिया जाय। कोई सही जानकारी वाला था नहीं। जाड़े का समय था तथा रात्रि में माधव जी के पिता जी खलिहान में ही थे कि श्रीस्वामी जी के आगमन की सूचना उनके घोड़े की धैवत ध्वनि सुनकर हुई। श्रीस्वामी जी का घोड़ा भी उनका प्रिय भक्त था तथा किसी परिचित गॉव में जैसे ही पहुँचता था कि धैवत ध्वनि से लोगों को श्रीस्वामी जी के आगमन का ज्ञान करा देता था। श्रीस्वामी जी ने समाचार पूछने के अन्तराल यह जाना कि एक के वाद दूसरी मृत्यु के असमंजस में लोग थे। सबों को समझा कर बताया कि द्वादशाह संपन्न होगा तथा वे पंडित भेज कर उसे संपन्न कराने का आश्वासन देते हुए गॉव से रात्रि में ही चले गये। दूसरे दिन पंडित भेज दिया तथा स्वयं भी पधार गये। द्वादशाह के दिन तीन ब्राह्मण को जेवनार कराया गया तथा तेरहवें के दिन संपूर्ण भोज हुआ। विना सूचना के भी श्रीस्वामी जी अपने शिष्यों पर कृपा दृष्टि रखते थे यह थी उनकी विलक्षणता।

भवन निर्माण में निपुणता

वास्तुकला के ज्ञान सम्वन्धि एक घटना है। सरौती ठाकुरवारी में **18** फीट लंबा एवं **18** फीट चौड़ा जगमोहन का निर्माण होना था। श्रीस्वामी जी ने **12** पत्थर के पाये के सहारे अपने निर्देश में इसका निर्माण कराया। गया से एक कारीगर फर्श में संगमरमर लगाने आया था परन्तु वह देर से काम करके ज्यादा समय लगाकर ज्यादा मजदूरी का लालची हो गया था। श्रीस्वामी जी ने सरौती के पास से ही किसी अब्दुल नामके कारीगर को बुलाया और अपनी देखरेख में संगमरमर विछाने का काम पूरा कराया। इसीतरह से जगमोहन के ऊपर एक बंगला बनना था परन्तु किसी कारीगर को उसकी छावनी कैसे की जाय समझ मे नहीं आर हा था। श्रीस्वामी बाहर गये हुए थे। सरौती लौटने पर उन्होंने स्वयं ही उसका उपाय निकाल कर छावनी का कार्य पूरा कराया।

घोड़े की सवारी

सरौती स्वामी जी एक बार अपने गुरू परमहंस स्वामी जी के साथ भारत यात्रा पर थे। महाराष्ट्र में किसी भक्त ने परमहंस स्वामी जी को एक घोड़ा समर्पित किया। परमहंस स्वामी जी तो पैदल ही चलते थे इसलिये घोड़े का उपयोग

मात्र सामान वगैरह ढ़ोने में हो रहा था। एक दिन परमहंस स्वामी जी ने पराङ्कुशाचार्य जी को घोड़े पर बांह पकड़ कर बैठा दिया और कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। उसदिन से घुड़सवारी करना श्रीस्वामी जी को अपने गुरू का प्रसाद हो गया एवं सरौती स्थानाधीश के रूप में ये 'घोडावाले स्वामी' जी के नाम से भी प्रसिद्ध हो गये थे। रात के समय को अनावश्यक सो कर या जाग कर व्यतीत करने से बचने के लिये श्रीस्वामी जी अधिकांशतः रात में ही चलते थे। इसका दूसरा पक्ष यह भी था कि दिन में भक्तों के बीच रहकर उनको लाभान्वित करते थे। इनके घोड़े की विशेषता थी कि जब श्रीस्वामी जी रात में राह भूल जाते थे तो अपने घोड़ा पर ही छोड़ देते थे और स्वयंमेव ईच्छित स्थल पर पहुँच जाते थे। घोड़े की दूसरी विशेषता थी कि जव श्रीस्वामी जी अपने गंतव्य स्थल पर पहुँचते थे तो घोड़ा 'धैवत ध्वनि' से गॉववाले को श्रीस्वामी जी के आगमन की सूचना दे देता था।

नये घोड़े का नियंत्रण

ओड़विगहा गॉव की एक अनोखी घटना है। एक भक्त नया घोड़ा खरीदा था। संयोग से श्रीस्वामी जी वहॉ पधार गये और उसने श्रीस्वामी जी को घोड़े पर चढ़कर आशीर्वाद देने का निवेदन किया। श्रीस्वामी जी जैसे ही घोड़े पर सवार हुए कि वह वायु गति से भागने लगा। सभी कसनी आदि विखरने की स्थिति में आ गये। लोगों को लगा कि आज श्रीस्वामी जी को घोड़ा से गिरकर अवश्य ही गंभीर चोट लगेगी परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। घोड़ा थककर जब रूका तो लोगों ने देखा कि श्रीस्वामी जी उसके गर्दन के पास चिपके हुए हैं। घोड़ा से उतरकर श्रीस्वामी जी ने अपने गुरू बड़ेमहाराज परमहंस स्वामी के आशीर्वाद का स्मरण किया।

प्रेत का कल्याण

एक बार रात्रि में घोड़ा पर सवार होकर श्रीस्वामी जी नहर किनारे किसी गॉव को जा रहे थे। वहॉ एकान्त में एक फूस की झोपड़ी दिखी। श्रीस्वामी जी के साथ पैदल चलने वाले विद्याथी का दल कुछ दूर पीछे छूट चुका था। फूस की झोपड़ी से एक महिला बीमार बच्चे को गोद में लेकर आई और श्रीस्वामी जी से उसके लिये दवा मांगने लगी। इन्होंने बच्चे को घोड़ा के समीप लाने को

कहा परन्तु महिला ने वैसा नहीं किया। जव श्रीस्वामी जी ने घोड़ा मोड़ा तो महिला गायव हो गयी एवं फूस की झोपड़ी सब अदृश्य हो गये।

हित अनहित पशु पक्षी जाना

सरौती ठाकुरवारी के सभी जानवरों से श्रीस्वामी जी अपना निजी सम्बन्ध बनाये रहते थे। घोड़े के पास जा कर उसे प्यार से 'वेवकूफ' 'वेवकूफ' कहकर पुकारते थे और वह पास आकर इनके वस्त्र या हाथ को अपने मुँह में लेकर चवाने लगता था परन्तु इससे कोई छति नहीं होती थी। स्थान के खेत से हजारो मन अन्न की उपज होती थी परन्तु एक छटाक भी वेचा नहीं जाता था। सव या तो स्थान के पशु या सैकड़ो विद्यार्थी के उपयोग में आते थे। ठाकुर जी की खेती के लिये पन्द्रह वीस वैल रहते थे। सव पशु अन्नादि खाकर मस्त रहते थे। जवकभी भी वैलगाड़ी वदरावाद या अरवल जाता था तो ठाकुरवारी के मस्त वैल को देखकर लोग दंग रहते थे। एकबार एक गाय का वच्च्या अत्यन्त कमजोर हुआ था। इसकी सेवा सुश्रुषा पर स्वामी जी का निजी ध्यान रहता था और वच्चा स्वस्थ होकर श्रीस्वामी जी के इर्द गिर्द घूमा करता था। जव कभी वे छत पर चले जायें तो वह भी सीढ़ियों के रास्ते ऊपर चला जाता था। एकवार किसी विद्यार्थी ने उसे मार दिया तो वह श्रीस्वामी के कमरे में जाकर हुँकरने लगा। 'हित अनहित पशु पक्षी जाना'।

एक कुत्ते को सद्गति

कुत्ता के लिये ठाकुरवारी में कोई स्थान नहीं था क्योंकि इससे स्थल अपवित्र हो जाता है। एक बार श्रीस्वामी जी कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक कुत्ता विद्यार्थियों के साथ हो लिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसने साथ नहीं छोड़ा। बहुत दिनों तक वह श्रीस्वामी जी की मण्डली के साथ रहा और श्रीस्वामी जी उसके भोजनादि पर विशेष ध्यान रखते थे। जहाँ भी श्रीस्वामी जी टिकते थे वह भी वहाँ रहकर कथा आदि का शांत भाव से श्रवण किया करता था। **"सतसंगति संसृति कर अन्ता" .... "जब द्रव हरि दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये।"** भगवान के प्रसाद से अवश्य ही उसका कल्याण हुआ होगा। वाद में कुछ दिनों के वाद उसने मण्डली का साथ छोड़ दिया। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में एक कथा है कि एक कुत्ता ने भी भगवान के

दरवार में आकर किसी ब्राह्मण के विरूद्ध शिकायत की थी और भगवान ने स्वयं इस पर निर्णय लेकर ब्राह्मण को दण्डित किया था।

आश्चर्यजनक वास्तु शान्ति

विहटा खगौल के बीच सदीसोपुर एक रेलवे स्टेशन है। महमतपुर निवासी श्रीवृजदेव जी के अनुरोध पर श्रीस्वामी जी स्टेशन के पास के घनश्यामपुर गॉव में गये। वहाँ एक घर में निरन्तर आधिव्याधि का उत्पात चल रहा था। एक वृद्धा अचानक अंधी हो गयी थी। श्रीस्वामी जी ने घर का निरीक्षण किया और आँगन को दो भाग में बॉटने वाली एक दीवाल को हटाने की राय दी। शुरू में घर वालों ने इसे उदासीन भाव से लिया परन्तु श्रीवृजदेव के समझाने पर दीवाल शीघ्र ही गिरा दी गयी। श्रीस्वामी जी ने लोटिया में जल मंगवाया एवं अभिमंत्रित कर घर में भेजा तथा वृद्धा से पूछने को कहा। पता चला कि वृद्धा की दृष्टि वापस आ गयी और वह अंगुली आदि गिन कर वताने लगी।

निर्भीक भ्रमण

एक बार वर्षात में श्रीस्वामी जी अरई गये थे। वहाँ पता चला कि खैरा में हैजा फैल गया है। रात में ही श्रीस्वामी जी खैरा के लिये चल दिये और साथ में किसी को भी नहीं आने दिये। **"करहीं सदा सेवक पर प्रीति"** वहाँ जाकर लोगों से मिलकर हवनादि से उपचार की व्यस्था करा दिया और रात में ही अरई वापस आ गये। जनहित में ऐसे समर्पित थे श्रीस्वामी जी कि अपने निजी सुख सुविधा पर कोई ध्यान नहीं देते थे।

संत का उपहार

अपने गुरू के अनुग्रह से दैविक एवं आध्यात्मिक बल से संपन्न श्रीस्वामी जी एक अच्छे चिकित्सक भी थे। बड़े महाराज परमहंस सूरि जी अपने पास सोंठी चूर्ण रखते थे। जो कोई भी किसी भी रोग की शिकायत करता था तो सोंठी चूर्ण पर अंगुलियों से स्पर्श कर उसे दे देते थे और उसे तत्काल लाभ मिलता था। एक वार किसी को विषैले सांप ने काट लिया था। उसे बड़े महाराज जी के पास लाया गया। सामने वेल का फल रखा था। बड़े महाराज जी ने एक फल देते हुए उसे घोल कर पिला देने को कहा और वह स्वस्थ हो गया। सिद्ध

संत का इसी तरह से उपचार हुआ करता है। ऐसा देखा जाता था कि जबकभी भी बड़े महाराज परमहंस स्वामी जी को अपने शरीर पर वायुदोष उत्पन्न होने का आभास होता था तो वे ऊंचे स्वर में भजन गाते थे। इससे शरीर पर कुपित वायुदोष शांत हो जाता था।

आयुर्वेद

वर्षात के चार माह साधु संत एक ही स्थान पर टिक जाते हैं और इसे चातुर्मास करना कहा जाता है। श्रीस्वामी जी भी सरौती में चार माह रहकर आयुर्वेदिक रस रसायन चूर्णादि औषधियों का भी निर्माण कराते थे। इसके लिये आयुर्वेद की पुस्तके पहले से ही मंगा कर रखते थे। सहयोगियों को ककहरा की तरह आयुर्वेद के गूढ़ तत्वों को बताते थे। सरौती में 'रसराज सुन्दरम' 'निघन्टु रत्नाकर' 'पारद संहिता' 'सुश्रुत संहिता' 'चरक वाग्भट संहिता' 'वैद्यकशब्द निघन्टु' 'सम्पूर्ण मदनपाल निघन्टु' 'अष्टाकर रहस्य' 'धनवन्तरि भावप्रकाश' 'सम्पूर्ण भैषज्य रत्नावली' 'माधव निदान' 'शार्गंधर संहिता' 'चिकित्सा चन्द्रोदय' 'भैषज्य रत्नावली' आदि पुस्तकें से लोगों को पढ़ाते थे। वैद्यों को अथवा रोगियों को औषधियॉं निःशुल्क वांटी जाती थी। मिर्जापुर के च्यवन बाबू श्रीस्वामी जी की देखरेख में बारह वर्षो में 'मकरध्वज' नामकी एक दवा बनाये थे जो मरनासन्न व्यक्ति को भी कुछ देर के लिय पुनः होश में लाने में समर्थ थी। जिसका आयुर्वेद की पुस्तकों में उल्लेख नहीं था वैसी दवायें भी श्रीस्वामी जी अपनी मनीषा से बनवाते थे। आठ दस तरह के नमक के रस से सरौती में 'मदनविलास' नामकी एक ऐसी ही औषधि बनती थी जो विषम अपच में भी लाभ करती थी। बाहर भ्रमण के अन्तराल साथ के विद्यार्थियों को रास्ते में मिलने वाली जड़ी बूटी की पहचान कराते हुए उनके गुणदोष से अवगत कराते चलते थे।

सन्निपात से छुटकारा

गोह थानान्तर्गत पुनपुन नदी के किनारे के अॅकुरी गॉव के सामाजिक प्रकृति प्रवृति प्रधान श्रीवैष्णव श्रीलक्ष्मीनारायण जी विषम सन्निपात से ग्रस्त हो गये थे। कोई उपचार काम नहीं कर रहा था। मरणासन्न स्थिति हो गयी थी। अनुभूत रस रसायन के साथ श्रीस्वामी जी वहॉं पधारे और **15 । 20**

दिन अपनी देखरेख में उपचार चलाये। स्थिति सुधरी और पथ्य पड़ा। धीरे धीरे पूर्णतया स्वस्थ हो गये। गॉव के लोग श्रीस्वामी जी के नतमस्तक हो गये तथा आस पास के कई गॉव के लोग भी श्रीस्वामी जी के शिष्य बनने लगे।

अनोखा उपचार

मनुस्मृति में ऐसा उल्लेख है कि गुरू की कृपा से शिष्य में भी गुरू के गुण स्थापित हो जाते हैं। बड़े महाराज परमहंस जी जैसा श्रीस्वामी जी भी आशीर्वादात्मक उपचार करते थे। एक बार कनाप गॉव के श्रीहनुमान जी नामक व्यक्ति ने सरकार के चरणों में संतान लाभ के लिये निवेदन किया। श्रीस्वामी जी ने 'जयसियाराम' नाम से सार्वजनिक अखंड कीर्तन करने को कहा। आदेशानुसार श्रीहनुमान जी ने विधिवत अखंड कीर्तन पूरा किया। समयानुसार उन्हें पांच संतान की प्राप्ति हुई। पुनः उन्होंने श्रीस्वामी जी के चरणों में निवेदन किया कि अव और संतान नहीं चाहिये। श्रीस्वामी जी ने पुनः उसी अखंड की पुनरावृति करने को कहा। ऐसा ही किया गया और जो चाहते थे वह पूरा हुआ। अनोखा होता है संत का आशीर्वादात्मक उपचार

समाज सेवा

जब भगवान राम जंगल जा रहे थे तो जड़ भी चैतन्य हो गये थे **'सरितासर गिरि घट और घाटा।पति पहिचान देही वर वाटा।।'** जंगल के कोल किरात भी भगवान की सेवा में लग गये **'यही हमारी मनवहु सेवकाई।'** भगवान के सामने आते ही सब पाप भाग जाते हैं एवं हृदय शुद्ध हो जाता है **'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।'** इसीतरह से श्रीस्वामी जी के सामने हृदय शुद्ध हो जाता था। तेजबिगहा के श्रीरामचन्द्र शर्मा गया डिस्ट्रिकबोर्ड के चेयरमैन थे और श्रीस्वामी जी के प्रिय शिष्य थे। एक बार उन्होंने इनसे अपनी पुत्री के लिये सुयोग वर के बारे में पूछा की। श्रीस्वामी जी ने उन्हें बताया कि खुटहा निवासी श्री जगनारायण तिवारी के पुत्र सुयोग वर हो सकते हैं। श्रीस्वामी जी ने मध्यस्थता की और सम्बन्ध बन गया। तिवारी जी ने आदर्श शिष्य का परिचय देते हुए श्रीस्वामी जी के सम्मान में तिलक दहेज की मॉग को नकार दिया था। आदर्श परिणय संपन्न हुआ।

पैदल यात्रा

श्रीस्वामी जी आलस से दूर रहते थे। आवश्यकता होने पर सोन पैदल पार कर जाते थे। एक बार गर्मी में पैदल ही सोन नदी पार कर गये। विश्राम के कुछ देर बाद दो बाल्टी शीतल जल में घंटा भर अपना दोनों चरणारविंद को डुबाये रखा और इस तरह से उन्होंने अपनी थकान मिटाई। एक बार अकेले ही श्रीस्वामी जी पुरी गये हुए थे। वहाँ संयोगवश साधु मंडली में विद्रोह के कारण नगर में ऐसा उपद्रव हुआ कि पुरी छोड़ने के लिये कोई सवारी भी नहीं मिल रही थी। श्रीस्वामी जी वहाँ से पैदल ही चल दिये। साथ में जलपात्र चम्बुक था और रास्ते में चावल दाल मिलाकर उसी चम्बुक में भगवान के सेवार्थ भोग प्रसाद बनता था। इस तरह से चौदह दिन में पैदल ही सरौती चले आये।

निःस्वार्थ भाव

श्रीस्वामी जी की अध्यक्षता में सोन पार सहार में ज्ञान यज्ञ हुआ था। इस यज्ञ के सूत्रधार श्री शंकर राय सरकारी पुलिस अधिकारी थे। यज्ञ सम्पन्न होने के बाद श्रीस्वामी जी अपने घोड़ा से सरौती के लिये प्रस्थान कर गये। जब श्री शंकर जी को पता चला कि श्रीस्वामी जी प्रस्थान कर गये हैं तो वे पीछे पीछे तेजी से आये और करीब बीच सोन नदी में श्रीस्वामी जी का दर्शन मिला। क्षमा याचना करते हुए उन्होंने विदाई समर्पित करने की इच्छा प्रकट की। श्रीस्वामी जी ने उनको परीक्षित एवं शुकदेव जी के प्रसंग से अवगत कराते हुए बताया कि शुकदेव जी राजा परीक्षित को दक्षिणा एवं विदाई की अपेक्षा से कथा नहीं सुना रहे थे। कल्याण का रास्ता बताना ही साधु का काम है।

कुरान शरीफ

अरवल थाना में एक मुसलमान दारोगा पदासीन थे। श्रीस्वामी जी का नाम सुनकर वे इनसे वार्ता सुनने आते थे। एक बार उन्होंने बताया कि कुरान शरीफ में भी मांस एवं मदिरा से दूर रहने को बताया गया है नहीं तो वहिसा यानी मुक्ति नहीं मिलती।

परदुःख द्रवहिं संत सुपुनीता

अरवल के पुराने जमीन्दार शाह उमैर एवं शाह जुहैर दो भाई थे। बड़े भाई

कांग्रेसी थे तथा छोटे भाई कम्युनिस्ट नेता थे। दोनों भाई श्रीस्वामी जी का सम्मान करते थे। छोटे भाई को कोई संतान नहीं थी। बड़े भाई ने राय दी कि एक स्कूल खोल दो और सारे विद्यार्थी तुम्हारे सन्तान हो जायेंगे। उन्होंने बड़े भाई की सलाह पर हाईस्कूल खोल दिया जो आज भी उमैराबाद हाई स्कूल के नाम से जाना जाता है। यहाँ के एक शिक्षक ने अक्षम्य अपराध किया था और उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया था। पुनः कार्यरत होने के उनके सभी प्रयास विफल हो गये। अन्ततः उन्हें श्रीस्वामी जी के बारे में पता चला और वे विनती कर यहाँ से एक पत्र ले गये। पत्र मिलते ही शाहजुहैर श्रीस्वामी जी के समक्ष आ गये और उस शिक्षक को भी बुलाया गया। कुछ देर वार्ता चली और '**अनुचित उचित विचार तजि जो पाले पितु बैन**' के अनुसार शाहजुहैर श्रीस्वामी जी की बातों से प्रभावित हो शिक्षक को फिर से बहाल कर लिया।

भिक्षा से गुरू सेवा

एक बार बड़े महाराज परमहंस स्वामी जी अपनी पैदल यात्रा के अन्तराल विषम स्थिति वाले स्थान से पार कर रहे थे। कोई अन्न फलादि की उपलब्धि कठिन हो गयी थी। श्रीस्वामी जी आसपास से भिक्षाटन कर अन्न की गठरी लिये आ रहे थे कि बड़े महाराज जी ने देख लिया। पूछने पर भिक्षाटन की वृति का पता चला तो उन्होंने इस तरह का काम करने से श्रीस्वामी जी को मना किया और बताया कि शरीर पोसने के लिये किसी से कुछ मांगना नहीं चाहिये।

अनन्य गुरू भक्ति

जाड़े की रात थी और बड़े महाराज जी तरेत में विराजमान थे। एक श्रीवैष्णव जड़ते हुए बड़े महाराज जी के चरणों में नमन कर रहे थे कि बड़े महाराज जी ने अपनी उनी लोई उनके शरीर पर डाल दी। श्रीस्वामी जी शीघ्र ही रात्रि में ही विक्रम गये और दुकान खुलवाकर उसी तरह की लोई ले आये। बड़े महाराज शयनावस्था में थे और इन्होंने उनके ऊपर से लोई ओढ़ा दी। ऐसी थी श्रीस्वामी जी की गुरूभक्ति।

निर्हेतुकी कृपा

पुनपुन किनारे एक बस्ती नेमा है। एकबार श्रीस्वामी जी वहाँ पधारे और

चलते समय गाँव वाले से एक बालक की मांग रखे। इनका नियम था कि सभी गाँव से एक बालक मांगते थे कि उसे विद्वान बनाकर लौटा देंगे। नेमा के श्री फतेबहादुर जी कम्युनिस्ट विचारधार के व्यक्ति थे और उन्होंने 'अखिलेश' नाम का अपने दस बर्षीय बेटा को श्रीस्वामी जी को सुपुर्त कर दिया। श्रीस्वामी जी रात में ही प्रायः चलते थे। चलते चलते मार्ग में गेहूँ की खूंटी वाला क्षेत्र आया। उन्होंने 'अखिलेश' को अपने घोड़ा पर पीछे बैठा लिया और सरौती ले आये। अखिलेश कुशाग्र बुद्धि के बालक निकले। अमरकोश के दो दो पृष्ठ एक दिन में ही याद कर लेते थे। एक बार वे रोगग्रस्त हो गये जिसका उपचार बकरी का दूध ही था। ठाकुरवारी में बकरी रखने की अनुमति न रहने पर भी श्रीस्वामी जी ने एक बकरी की व्यवस्था कर दी और अखिलेश स्वस्थ हो गये। व्याकरण एवं न्याय की पढ़ाई पूरी कर वे नौबतपुर कौलेजियट स्कूल में शिक्षक हो गये। इनका समूचा परिवार कम्युनिस्ट था परन्तु श्रीस्वामी जी से जुड़े हुए रहे। इनका परिवार संयुक्त परिवार का एक आदर्श उदाहरण है। परिवार का कोई भी सदस्य उद्यमविहीन बैठकर नहीं खाता है। सबों के बीच सुमति है एवं सौहार्दपूर्ण जीवन यापन करते हैं। अखिलेश जी ने नौबतपुर में भी एक आवास बना लिया तथा परिवारवालों के साथ सेवानिवृत्ति के बाद यहीं रहने लगे।

पंडित श्री अखिलेश जी की वाक्पटुता

श्री अखिलेश जी की जिह्वा पर सरस्वती बसती थी और ये एक कुशल वक्ता थे। एक बार यज्ञ के अवसर पर एक सभा चल रही थी। ऊंटवालिया साहब न्यायाधीश सभा के अध्यक्ष थे तथा इसका संचालन तरेत संस्कृत महाविद्यालय के श्री प्रसिद्ध नारायण शर्मा कर रहे थे। शर्मा जी उच्चकोटि के विद्वान थे और कम्युनिस्ट विचार धारा से प्रभावित थे। सभा में दस पन्द्रह वक्ता यज्ञ की उपयोगिता पर बोलगये थे। जब अखिलेश जी की बारी आयी तो पंडित प्रसिद्धनारायण जी ने इन्हें यज्ञ के विरूद्ध बोलने को कहा। अखिलेश जी के बोलने की शैली से श्रोता मुग्ध हो गये। ऊंटवालिया साहब ने इनके समय सीमा बीत जाने की सूचना दी। श्रोता के तरफ से इन्हें और बोलते रहने के लिये आवाज आने लगी क्योंकि इनकी बात अभी पूरी नहीं हुई थी।

ऊंटवालिया साहब ने श्रोता की मांग को नकारते हुए अखिलेश जी को बैठ जाने को कहा। बैठने के पहले इन्होंने अध्यक्ष महोदय से एक नम्र निवेदन किया 'मैं भी एक शिक्षक हूँ तथा विद्यार्थियों की यदाकदा परीक्षा लिया करता हूँ। परीक्षा की अवधि समाप्त होने के **10** मिनट पूर्व उनलोगों को समय समाप्ति की सूचना देता हूँ। यहाँ मेरे साथ इसतरह से कुछ नहीं हुआ।' इनके तर्क से प्रभावित होकर अध्यक्ष महोदय ने इन्हें और समय दिया। सभा की समाप्ति के समय अध्यक्ष महोदय ने इन्हें लिखित प्रशस्ति पत्र से सम्मानित करते हुए यह बताया 'अगर आप चाहें तो फौज छावनी दानापुर के देवमन्दिर में पुजारी पद पर आपको पदासीन करा दिया जायेगा। यद्यपि आप कद में छोटे हैं परन्तु मेधा के विचार से इसकी छूट मिल जायेगी।' यही श्री अखिलेश जी नौबतपुर में पंडित जी के नाम से प्रसिद्ध थे तथा **74** वर्ष की अवस्था में ये **22** नवम्बर **2013** को परमपद कर गये।

विद्यार्थियों पर वात्सल्य

सरौती ठाकुरवारी में एकसमय डेढ़सैया के श्रीनारायण जी कोठारी थे। इनका मितव्ययी स्वभाव होने के कारण प्रायः भोजन प्रसाद घट जाता था। करीव एक सौ विद्यार्थी के अतिरिक्त चार पांच आगन्तुक भी रहते थे। श्रीअखिलेश जी उस समय वहाँ विद्यार्थी थे। इन्होंने अन्य विद्यार्थियों को गोलबन्द कर श्रीनारायण जी की व्यवस्था के विरोध में सामूहिक अनशन का आयोजन किया। श्रीस्वामी जी स्थान से बाहर थे और संयोग से उस दिन एकायक पधार गये। जब वे प्रसाद पाने चौका में गये तो कठौत प्रसाद से भरा देखकर पूछा 'विद्यार्थी लोग अभी प्रसाद नहीं पाये हैं क्या ?' उनलोगों की अनशन की सूचना सुनते हुए उन्होंने अपना पत्तल यह कहते हुए उठाकर फेंक दिया 'विद्यार्थी ही हमारे भगवान हैं' तथा तुरत बाहर आ गये। आंगन में विद्यार्थि यों को बुलाया तथा श्रीनारायण जी से भंडार की कुञ्जी ले कर उनलोगों को दे दिया। ऐसा था श्रीस्वामी जी का विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य स्नेह।

निःसंकोच उदारता

कलेर का एक विद्यार्थी सरौती की पढ़ाई पूरी कर बनारस उच्चतर शिक्षा के

लिये जा रहा था। श्रीस्वामी जी के पास जो भी पैसे उपलब्ध थे सब उसको दे दिये। संयोगवश श्रीस्वामी जी को भी तुरत बाहर जाना आवश्यक हो गया। इनके पास पैसे नहीं थे। कलेर वाला विद्यार्थी अभी स्थान में ही था। वे तुरत उसके पास गये और पांच रूपये ऋण के रूप में मांगा। यह थी श्रीस्वामी जी की विद्यार्थियों के प्रति उदारता।

अनोखी सजा

किसी विद्यार्थी को दंड देने का भी श्रीस्वामी जी का अनोखा तरीका था। ॲकुरी गॉव का रामदेव मालवीय नामक एक विद्यार्थी ठाकुरवारी के दक्षिण विद्यालय में एक बार किसी संत की शिकायत कर रहा था। श्रीस्वामी जी ने सुन लिया तथा माधव पंडितजी के माध्यम से उक्त विद्यार्थी को घर वापस भेज दिया। एक सप्ताह बाद उसे पुनः आदमी भेजकर सरौती वापस बुला लिया और उससे पूछा 'किसी संत की शिकायत के अपराध का तुम्हारा प्रायश्चित पूरा हुआ या नहीं' उसके सकारात्मक उत्तर से उस पर बहुत पसन्न हुए।

जागो बाभन

सरौती गॉव के अनल जी दो भाई थे। उनके यहॉ किसी की मृत्यु हो गयी थी। श्राद्व का आयोजन था। बड़े भाई ने श्रीस्वामी जी से अनुरोध कर खैरा से विद्यार्थियों को ब्राह्मण के रूप में निमन्त्रित किया। जब भोजन का अवसर आया तो दोनों भाई में विद्यार्थियों को पहले भोजन न कराके पुरानी परम्परा के 'बाबाजी ब्राह्मणों' को भोजन कराने पर अनबन हो गयी। दोनों अपनी बात पर अड़ गये और अंत में दोनों ने पूड़ी मिठाई भोजनादि सामग्री तौलकर बांट ली तथा अलग अलग अपने आमंत्रितों को एकही बार भोजन कराये। यह था पाखंडी ब्राह्मणों के विरोध में समाजसुधार का असर।

जन कहुँ कछु अदेय नहीं मोरे

सच्चे साधु स्वर्ण एवं मिट्टी में भेद नहीं देखते। चार पांच महीनों के लिये बंगाल का एक विद्यार्थी सरौती में अध्ययन रत था। उसने ठाकुरवारी में कुछ साधु को सूती वस्त्र के अतिरिक्त रेशमी चादर धारण किये देखकर एक कीमती

अंडी रेशमी चादर खरीदकर श्रीस्वामी जी को समर्पित किया। कुछ दिन के बाद श्रीस्वामी जी ने उस चादर को किसी विद्यार्थी को दे दिया। यह देखकर वह श्रीस्वामी जी से पूछ बैठा 'कीमती चादर आपने एक साधारण विद्यार्थी को क्यों दे दिया ? ' श्रीस्वामी जी ने उसे साधु की परिभाषा से अवगत कराते हुए बताया 'साधु के लिये स्वर्ण एवं मिट्टी में कोई अन्तर नहीं दिखता।' वह बहुत प्रसन्न हुआ और स्वीकार किया 'जीवन में सदाचार एक साधु से ही सीखा जा सकता है।'

श्रीस्वामी जी का तरेत से लगाव एवं स्नेहभाजन पंडित श्रीकन्हैया जी

श्रीवैष्णव मत के प्रचार प्रसार में श्रीस्वामी जी का निरन्तर अथक प्रयास जारी था परन्तु जिस गॉव में तरेत के शिष्य थे या तरेत के तत्कालीन स्थानाधीश स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी के शिष्य थे उस गॉव में श्रीस्वामी जी ने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाने का एक अडिग संकल्प ले लिया था। इसका ज्वलन्त उदाहरण सरौती के समीप अवस्थित रामपुर चौरम गॉव है। यह गॉव स्वामी श्रीवासदेवाचार्यजी के प्रभाव क्षेत्र में था अतः भक्तों के निवेदन पर श्रीस्वामी जी इस गॉव में जाते अवश्य थे परन्तु ग्रामीणों के अनुरोध करने पर भी किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। इस गॉव के एक 'श्रीवैष्णव दास' नामके ग्रामीण थे जो सरौती से आत्मियरूप से जुड़े हुए थे। इनके तीन पुत्र थे जिसमें श्रीकन्हैया जी बीच वाले थे। श्रीकन्हैया जी तरेतस्वामी जी के शिष्य थे परन्तु सरौतीस्वामी जी के अतिशय प्रिय थे। श्रीकन्हैया जी व्याकरण में आचार्य के अतिरिक्त वेदान्त के भी आचार्य थे। सरौतीस्वामी जी को वेदान्त का अध्ययन बहुत प्रिय था। कन्हैया जी को साधुवाद।

कन्हैया जी से प्रेम

एक बार किसी ने अफवाह फैला दिया कि श्रीकन्हैया जी का परमपद हो गया। श्रीकन्हैया जी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय पटना में अध्यापन का कार्य करते थे। सुनते ही श्रीस्वामी जी पटना के लिये प्रस्थान कर गये। वहॉ उनके आवास पर जब पहुँचे तो श्रीकन्हैया जी इनके चरणपखारने लगे परन्तु श्रीस्वामीजी इतना भावविह्वल थे कि कन्हैया जी को नहीं देखरहे थे तथा

बार बार कन्हैया जी से ही कन्हैया जी के कुशलक्षेम पूछ रहे थे तथा उनको बुलाने कह रहे थे।

न रहे बांस न बाजे बांसुरी

तरेत के ट्रस्ट में श्रीस्वामी जी तथा कन्हैयाजी भी सदस्य थे। तरेत के स्वामी जी श्रीवासुदेवाचार्य जी से इतनी घनिष्ठता थी कि दोनों एक दूसरे को देख लेने पर छोटे बड़े का विचार छोड़ साष्टांग करने लगते थे। कौन पहले साष्टांग करते थे यह कहना मुश्किल था। जब कभी भी किसी कठिन स्थिति आती थी तो तरेत स्वामी जी इनका स्मरण करते थे। एकबार तरेत गॉव के लोगों ने उदण्ड बच्चों को उकसाकर ठाकुरवारी की जमीन को खेल का मैदान बना दिया। तरेत स्वामी जी ने सरौती स्वामी जी से राय विचार किया। सरौती स्वामी जी ने कहा कि ठाकुरवारी के निर्माण हेतु बालू की प्रायः आवश्यकता पड़ती है इसलिये उक्त जमीन के बीच से **100** ट्रैक्टर बालू खोदकर निकलवाया जाय। ऐसा ही हुआ और सारा विवाद शांत हो गया।

तरेत विवाद

जब श्रीवासुदेवाचार्य जी परमपद कर गये तो तरेत में उत्तराधिकार का विवाद उठ खड़ा हुआ। श्राद्ध समवन्धित सभी कर्मकाण्ड नारायण वली एवं वैकुण्ठोत्सव श्रीस्वामी जी ने आचार्य के रूप में स्वयं संपन्न किया था। वैकुण्ठोत्सव की समाप्ति पर सरौती स्वामी जी ने रात **10** बजे श्रीकन्हैया जी की उपस्थिति में श्रीधरणीधराचार्य को चदरा देकर स्थानाधीश बना दिया। सरौती स्वामी जी के निर्णय से सब विवाद शांत हो गया एवं श्रीधनेश्वर जी वहाँ से प्रस्थान कर गये। रात्रि में ही सरौती स्वामी जी भी प्रस्थान कर गये।

5।12।2 पंडित श्री रामनन्दन शर्मा जी द्वारा संग्रहित संस्मरण

रघुनाथपूः वास्तव्यो दैवज्ञः कर्मठस्तथा।

पराङ्कुशाश्रितो नित्यः स्मर्तव्यो रामनन्दनः।।

श्री रामनन्दन पंडित जी पालीगंज के पास रघुनाथपुर के निवासी थे। इनका प्रादुर्भाव ई सन् **1915** में हुआ था तथा इनकी प्रारम्भिक शिक्षा खैरा में हुई थी। बनारस रहकर इन्होंने अध्ययन किया तथा क्रमशः साहित्य में आचार्य किया तथा हिन्दी में भाषारत्न पूरा किया। तत्पश्चात ये स्वामी सहजानन्द

सरस्वती के 'सीताराम आश्रम' बिहटा में रहकर पढ़ते पढ़ाते रहे। स्वामी सहजानन्द सरस्वती से कर्मकाण्ड तथा ज्योतिष का स्वाध्याय पूरा कर ये दामोदर उच्च विद्यालय रघुनाथपुर में ई **1944** से संस्कृत के शिक्षक हो गये। झुनाठी में उच्च विद्यालय की स्थापना में इनका बहुत ही योगदान था। बाद में ये मोरिऑवा हाई स्कूल में **10** वर्षो तक संस्कृत का अध्यापन कार्य कर सेवानिवृत्त हो गये। सरौती श्रीस्वामी जी के ये विशेष स्नेह भाजन थे तथा कर्मकाण्ड एवं ज्योतिष के एक ख्यातिलब्ध व्यक्ति थे। **87** वर्ष की अवस्था में ई सन् **2002** में इनका परमपद हो गया। सरौती श्रीस्वामी जी सम्बन्धित निम्नांकित संस्मरण इनकी पुस्तक 'अर्चिरादि एवं परमपद दर्शन - दिग्दर्शन' से उद्धृत है। इसके अतिरिक्त पंडित जी ने सरौती स्वामी जी की पुस्तक 'ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणबलि पद्धति' को व्याख्यात्मक रूप देकर पुनर्मुद्रित कराया।

सहजानन्द स्वामी से राय विमर्श

सरौती स्वामी जी एकबार सूर्योदय के समय ही सीताराम आश्रम बिहटा पहुंचे। स्वामी सहजानन्द ने आगे बढ़कर इनका स्वागत किया तथा पूछा 'इतना सवेरे आ गये।' जब सरौती से आगमन का पताचला तो कहा 'घोड़ा है या गरूड़।' दोनों हंसते हुए वाग के तरफ टहलते हुए चले गये। धरहरा के रजनधारी वाबू के चुनाव का प्रसंग था। वाग के तरफ से लौटकर स्वामीजी से सहजानन्द ने कहा 'मेरा हृदय असंदिग्ध है।' सरौती स्वामी जी प्रस्थान कर गये। स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने रामनन्दन जी से कहा 'आचारी जी आपके गुरूजी तो निशचर हैं।' रामनन्दनजी ने कहा 'जी नहीं देवता हैं।' स्वामी सहजानन्द ने उन्हें डांटते हुए कहा 'वेवकूफ ! देवता साधु के समान कब होंगे ! वे तो स्वार्थी होते हैं और तुम्हारे गुरूजी तो समाजसेवा के हेतु मुक्ति को भी ठुकरा देनेवाले हैं। व्यक्तिगत सुख की उपेक्षा करके समाजसेवा ही परमात्मा के प्रति किया गया कैंकर्य होता है। आत्मा का शुद्ध स्वभाव संग्रह करना नहीं उत्सर्ग एवं त्याग करना है।' अवस्था कम होने के कारण श्रीरामनन्दन जी को यह बात उस समय समझ में नहीं आयी थी परन्तु जीवन के आने वाले वर्षो में वे स्वामी सहजानन्द की बात की महत्ता को समझ सके थे।

दिन रात सेवा भाव

हजारों शिष्य प्रशिष्य के रहते भी श्रीस्वामी जी सदा समाज सेवा में लगे रहते थे। जेठ का महीना था विवाहादि कराने के कार्य की अधिकता थी। श्रीस्वामी जी ने रामनन्दन जी को मिर्जापुर भेज दिया था। दो दिनों बाद वहाँ सन्ध्या में स्वयं भी पहुँच गये और इन्हें कुछ जल्दी में भगवान के लिये भोग बनाने को कहा। श्रीस्वामी जी स्वयं मण्डपादि के कार्य कराने लगे। रामनन्दन जी ने जल्दी में मोहनभोग बनाया। श्रीस्वामी जी ने भगवान के प्रसाद के रूप में नाममात्र ही ग्रहण किया तथा बताया 'तीन दिनों से मट्ठा पीकर रह रहा हूँ। इसी रात ही नोआंवा एवं कुँड़िला में विवाह कराने के लिये जाना है।' श्रीस्वामी जी का भोजन पर इस तरह नियन्त्रण देख रामनन्दन जी अवाक् रह गये।

सादा जीवन

एक बार श्रीस्वामी जी एक भक्त के यहाँ वर्षात में पहुँचे। रात का समय था और चावल तथा नेनुआँ देकर भक्त शेष सामान लाने पुनः घर चल गये। रामनन्दन जी अन्य सामान आने की प्रतीक्षा करना चाह रहे थे परन्तु श्रीस्वामी जी ने उन्हें वर्षा की ओर ध्यान दिलाते हुए शीघ्र भगवान का भोग बनाने को कहा। भोग बना और श्रीस्वामी जी प्रसाद ग्रहण कर जैसे ही बाहर आये कि शेष सामान आया। भक्त ने विलम्ब के लिये क्षमा मांगी तथा वह श्रीस्वामी जी की सादगी पर दंग रह गया। श्रीस्वामी जी ने समझाया 'यह शरीर भगवान का दिया हुआ है तथा इसे मात्र उनके कैंकर्य के योग्य बनाये रखना है। स्वाद एवं भोजन की प्रधानता में भगवद् कैंकर्य नहीं भूलना चाहिये।'

दैविक शक्ति

एक बार श्री स्वामी जी देकुली ग्राम पधारे। वहाँ के एक सज्जन ने श्रीस्वामी जी से घर में धन गड़े रहने का पश्न पूछा। रामनन्दन जी अहिवल चक तथा धराचक्रादि से गणित करते रहे परन्तु कुछ निष्कर्ष नहीं निकल रहा था। श्रीस्वामी जी संध्यानियम से निवृत्त हुए तथा रामनन्दन जी के साथ घर देखने गये तथा एक दीवाल के नीचे धन होने की संभावना बतायी। जमीन खोदने पर सचमुच गड़ा हुआ धन मिल गया। रामनन्दन जी ने ज्योतिष गणित की

निष्कर्षहीनता के बारे में जब श्रीस्वामी जी से जिज्ञासा की तब उन्होंने कहा 'डील डौल दुनियाँ वेडौल साधु। भगवान वेङ्कटेश मार्गदर्शन करते हैं।'

बोलो राजा रामचन्द्र की जय !!!

मोकामा में श्रीस्वामी जी के आचार्यत्व में श्रीविष्णु यज्ञ का आयोजन था। देश भर के संत महन्थ एवं विद्वान का समागम हुआ था। अंतिम दिन प्रवचन का दौर चल रहा था। काशी के षड्दर्शन के मर्मज्ञ रामलखन दास जी के तीन घंटे के प्रवचन से लोग मुग्ध थे। उन्होंने कहा मंत्र ही देवता है '**न हि मंत्राद व्यतिरिक्तः कश्चिदेव पदवाच्य'** ।

एक आर्यसमाजी विद्वान उठ खड़ा हुए तथा उनकी ही बातों से साकार स्वरूप की पूजा का खंडन शुरू कर दिया। वाद ने विवाद का रूप ले लिया। अंत में श्रीस्वामी जी मंच पर खड़ा हुए और सहसा श्रीमुख से मानस की पंक्ति फूट पड़ी " **सो सब धरम करम जरि जाऊ। जेहि न राम पद पंकज भाऊ।।"** कहाँ भगवद गुणानुवाद हो रहा था और कहाँ साकार निराकार का विवाद शुरू हो गया ! निराकार या सूक्ष्म को हम अपने अन्तःकरण से अनुभव करते हैं तथा साकार को अपनी आँखों से देखते हैं। सूक्ष्म के द्रष्टा राग द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं। कवीर ने कहा है "**तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखों की देखी"**। जल निर्मल गंगा का हो या दूषित नाले का जब सूर्य उसे सोखकर सूक्ष्म बना देता है तो मेघ सर्वत्र विना भेद भाव के विमल जल की वर्षा करते हैं। निराकार वाष्प ही तो साकार जल बनकर आता है। संत तुलसीदास जी, सूरदासजी, विहारी, मीरा, कवीर आदि भक्तों ने अंतःकरण के अनुभव को ही तो भक्ति के विमल जल से हमें लाभान्वित किया है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान एवं भक्ति आदि का प्रथम चरण है 'अहंभाव' का विनाश। अहंभाव को ही 'अज्ञान' कहते हैं। जो हम देखते हैं वही सवकुछ नहीं है। जो हम जानते हैं वही सब कुछ नहीं है। अज्ञानी अहंभाव से कहता है 'मैं ही ज्ञानी हूँ और मैं जो जानता हूँ उसके आगे कुछ है ही नहीं। मेरा ही धर्म असली है बाकी सब नकली हैं।" सच्चे धर्मनिष्ठ व्यक्ति में विनम्रता होती है विश्वास होता है एवं निष्ठा होती है। महर्षि कणाद ने कहा है '**तर्कवादा प्रतिष्ठा**' यानी मैंने जो कुछ कहा वही सबकुछ नहीं है। छान्दोग्य की एक कथा है। देवर्षि

नारद जी सनत्कुमार जी के पास जाकर बोले ' भगवन् ! मैंने वेद उपनिषद व्याकरण छन्दशास्त्रादि सब पढ़ लिया है और अब कुछ जानने को शेष नहीं रहा।' सनत्कुमार जी ने कहा 'नारद जी आपने सत्य कहा परन्तु लगता है आपने परमज्ञान को स्पर्श तक नहीं किया। उसी में मन लगाइये। जिसको जानने के बाद विवाद का अंत हो जाता है वही परमज्ञान है।वह वचनातीत, मनसातीत एवं ज्ञानातीत है।'

धर्म तो सत्य का अन्वेषण करना है। जो हमें प्रभु का दर्शन न करा सका वह व्यर्थ है। हम उस प्रभु को तभी जान सकते हैं जब वह प्रभु स्वयं हमें जनाना चाहता है। संत तुलसीदास जी ने मानस में कहा है **'जानत तुमहिं तुमहीं होई जाई। सोइ जानै जो देहि जनाई।'** 'बोलो राजा रामचन्द्र की जय'**!!!**

श्रीस्वामी जी के उपर्युक्त आधे घंटे के वक्तव्य से सभा शांत हो गयी एवं आर्यसमाजी विद्वान ने मंच पर ही श्रीस्वामी जी को नतमस्तक होते हुए क्षमा मांगी तथा कहा 'आज हमें समस्त शास्त्र के ज्ञान के मूर्तरूप संत का दर्श न हुआ।' तत्पश्चात् उन्होंने श्रीस्वामी जी की आरती उतारी।

5।12।3 डा राजदेव शर्मा (जमुआईन फाग) ः

आप लक्खीबाग गया में निज का श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर बनाकर आश्रमवासी की तरह रहते हैं। हिन्दी साहित्य, विशेष करके भक्ति साहित्य के राष्ट्रीय स्तर के मूर्धन्य विद्वान हैं। आपकी लिखी अनेकों पुस्तकें उज्जैन विश्वविद्यालय तथा मगध वि वि आदि के पाठ्यक्रम में पढ़ायी जाती हैं। देश विदेश के पत्रिकाओं में आपके लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। श्रीस्वामी जी महाराज के शिष्येतर होने पर भी आप उनसे आत्मीय रूप से जुड़ हुए हैं। आपकी रचित **'श्रीपराङ्कुश चालीसा'** एवं **'श्रीपराङ्कुश पदावली'** हैं। पदावली उत्कृष्ट कोटि की रचना है। मगध विश्वविद्यालय के लिये 'मगही काव्यों का भक्ति शास्त्र अनुशीलन' हेतु **'कवि दार्शनिक श्री पराङ्कुशचार्य'** पर आपने एक सारगर्भित पृथक अध्याय की रचना की है। यज्ञादि में आपके प्रवचन भक्तगण सचेष्ट होकर मनोयोग से श्रवण करते हैं।

5।12।4 पुजारी स्वामी श्री राजेन्द्र दास द्वारा संग्रहित संस्मरण

श्रीराजेन्द दास जी का जन्म केयाल गॉव में हुआ। ये श्री आसकरण शर्मा जी के द्वितीय पुत्र थे तथा पांचवी कक्षा तक की पढ़ाई पूरी करके बारह वर्ष की अवस्था से ही सरौती स्वामी जी से समाश्रित हो ई सन् **1960** से सरौती में रहने लगे। सरौती प्रवास में ये निरन्तर श्रीस्वामी जी की सेवा में ही लगे रहे। शुरू के दो वर्षों तक इन्होंने सरौती राघवेन्द्र भगवान के पुजारी के रूप में पूजा की। बाद में श्रीस्वामी जी ने इन्हें मोकर ठाकुरवारी में पुजारी बनाकर भेज दिया। दो वर्षों के उपरान्त ये पुनः अपने गॉव लौट गये। पुनः कुछ दिन के बाद सरौती आ गये। उस समय श्रीरूपदेव स्वामी जी रोगग्रस्त होकर सरौती में शय्यासीन थे। इन्होंने उनकी सेवा सुश्रुषा की और यदा कदा सरौतीस्वामी जी के साथ गॉवों में भी जाते रहे। ई सन् **1968** में जब शिकरहटा ज्ञानयज्ञ हुआ उस समय से श्री रूपदेव स्वामी जी से विशेष रूप से जुड़ गये और ई सन् **1969** में जब हुलासगंज में यज्ञ हुआ तो उसके बाद से अधिकांशतः हुलासगंज रहने लगे। हुलासगंज लक्ष्मी नारायण भगवान की सन्निधि में करीब **20** वर्षों तक ये अर्चक के रूप में सेवा रत रहे और शारीरिक दोष वश अर्चक के कठोर नियम के निर्वाहन में अपने को असमर्थ देख अब ये ठाकुरवारी में गऊ सेवा एवं श्रीवैष्णवों के सेवापरायण रहते हैं। श्रीस्वामी जी की सेवाकाल के कुछ संस्मरण के अतिरिक्त श्रीस्वामी जी के सेवारत जीवनदानी भक्तों के भी संस्मरण इनके द्वारा संग्रह किये गये हैं।

श्रीस्वामी जी के सेवासंस्मरण ः

भार नहीं हार

एक बार श्रीस्वामी जी के साथ राजेन्द्र जी किसी गॉव में पहुँचे। वहॉ जाने के पूर्व सरौती में ही पंडित माधव जी ने इन्हें चेतावनी दी थी ' जाड़े का समय है। भगवान का भोग रात में गेहूँ के ऑटे की रोटी के साथ बनाइयेगा। इससे श्रीस्वामी जी के स्वास्थ्य पर शीत काल का दुष्प्रभाव कम होगा।' गॉव के भक्त ने जब राजेन्दजी से भगवान के भोग के लिये पूछा तब इन्होंने ऑटा एवं साग सब्जी लाने को कहा। भक्त ने अपनी ईच्छा प्रकट की 'सुस्वादु बासमती चावल एवं अरहर की दाल आदि का भोग बने।' राजेन्द्र जी ने

जब दूवारे आँटे की बात की तो दूर में चौकी पर आसीन श्रीस्वामी जी जो इनलोगों की बात सुनरहे थे ग्रामीण भक्त को बुलाकर चावल एवं हल्दी ही लाने को कहा तथा राजेन्द्र जी को चावल मे हल्दी डालकर पोंगल बनाकर भगवान को भोग लगाने को कहा। मात्र चावल का पोंगल भगवान को अर्पित करना ग्रामीण भक्त जी को अच्छा नहीं लगा। वे आँटा घी आदि के साथ सारी सामग्री श्रद्धा के साथ लाकर राजेन्द्र जी को दिया तथा रोटी न बनाकर पूड़ी हलवा आदि बनाने के लिये आग्रह किया। नैवेद्य बना भोग लगा। श्रीस्वामी जी अल्पमात्र ही भगवत प्रसाद ग्रहण कर कथादि सुनाकर रात्रि विश्राम किये। दूसरे दिन एकादशी तिथि थी इसलिये अन्नादि का भोग बनना नहीं था अतः उन्होंने राजेन्द्र जी को प्रातः ही सरौती अकेले भेज दिया। सायं काल स्वयं भी सरौती लौट आये। पंडित माधव जी को कहा 'राजेन्द्र को आगे से साथ नहीं भेजिये।' इसके पूर्व ही राजेन्द्र जी सारी बात पंडित जी को बता चुके थे इसलिये पंडित जी ने स्वयं क्षमा माँगी। श्रीस्वामी जी ने कहा 'जिसके यहाँ जाते हैं वहाँ 'हार' बन के रहना चाहिये न कि 'भार' बनके। जो मिले वही भगवान को स्वीकार्य होता है विशेष सामग्री माँगने से दूसरे पर भार बढ़ जाता है। हो सकता है भक्त के यहाँ आँटा न हो। उसे कहीं से व्यवस्था करके लाना पड़ा हो। ऐसे भी गाँव में रोटी खाने का प्रचलन कम है तथा कुछ लोग इसे सम्मानीय भोजन नहीं मानते।'

यावानर्थ उदपाने

एकबार की बात है कि श्रीस्वामी जी के पास चौरमपुर के पंडित कन्हैया जी ने आर्यसमाज के अग्रणी दयानन्द को महर्षि दयानन्द कह कर सम्बोधित किया। आर्यसमाजी को अनावश्यक सम्मानीय कहते हुए संदर्भ देना श्रीस्वामी जी को अच्छा नहीं लगा। उसदिन के बाद से कन्हैया जी के प्रति उदासीन रहने लगे। जब कभी कन्हैया जी साष्टांगादि करते तो श्रीस्वामी जी 'नारायण हरि' कह के अन्यकाम में लग जाते। कन्हैया जी अपने को उपेक्षित अनुभव करने लगे तथा उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ। श्रीवैष्णव मत के आचार्यो पर गहन अध्ययन करने लगे तथा एकदिन श्रीस्वामी जी के पास साष्टांग समर्पण करके हठात श्रीवैष्णव पूर्वाचार्यो का प्रसंग छेड़ दिये। श्रीस्वामी जी सुनते रहे

तथा पूर्वाचार्यो की गाथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए एवं आसन से उठकर कन्हैया जी के प्रतिस्नेह प्रकट करते हुए उनकी बाहें पकड़ कर अपनी चौकी पर खींचकर ले आये। कन्हैया जी जब उनकी चरणसेवा करने लगे तथा श्रीस्वामी जी ने कहा ' शास्त्र समुद्र के जल की तरह अथाह एवं खारा है परन्तु मेघ समुद्र से खाराजल लेकर उसे मृदु बना देता है। इसीतरह अपने आचार्य गण मेघ की भाँति शास्त्र से ग्राह्य तथ्यों को ही हमें बताते हैं। हमें अपने कुल एवं आचार्य का स्वाभिमान होना चाहिये।' गीता **2।46** में कहा है

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।

सभी जगह जल की अधिकता रहने पर भी प्यासा अपनी प्यासभर ही जल पीता है। उसीतरह वेद से अपने काम भर ही ग्रहण करना चाहिए।

गुरूभाई को सम्मान

एक बार वर्षात के समय तरेत के स्वामी श्री वासुदेवाचार्य जी सरौती पहुँचे। सरौती के स्वामी जी संयोग से स्थान के बाहर थे। अन्य श्रीवैष्णवों ने तरेत स्वामी जी का यथोचिति सत्कार किया तथा प्रसाद ग्रहण करने के बाद तरेत स्वामी जी चौरम चले गये। सायंकाल सरौती स्वामी जी भी स्थान पर वापस आ गये। श्रीवैष्णवों ने तरेत के स्वामी जी के आगमन एवं प्रस्थान की सूचना दी। रात्रि में भगवान का प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् कुछ काल के लिये विश्राम किये एवं बिना किसी को बताये अकेले ही रात में तरेत स्वामी जी के दर्शन के लिये चौरम चले गये। वर्षात का समय होने के कारण चौरम का रास्ता कष्टकर भी था परन्तु गुरूभाई के दर्शन एवं उन्हें सम्मान देने की लालसा के सामने श्रीस्वामी जी ने रास्ते की सारी कठिनाईयों की विल्कुल ही परवाह नहीं की। तरेत स्वामी जी भी शयन में थे परन्तु इनके साष्टांग करते हुए वे जाग गये। सरौती स्वामी जी ने उन्हें चादर धोती आदि समर्पित किया एवं रात में ही सरौती वापस आ गये। प्रातः काल तरेत के स्वामी जी ने अपने शिष्य कन्हैया जी को रात में ही सरौती स्वामी जी के आगमन की जब सूचना दी तब कन्हैया जी को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उनकी आँखे डबडबा गयीं 'सरौती के स्वामी जी कितने महान हैं कि अपने गुरूभाई के

सम्मान के लिये अपने सुख सुविधा का कुछ भी परवाह नहीं करते।'

सियाराममय सब जग जानी

भ्रमण काल में अपने साथ चलने वाले विद्यार्थियों से श्रीस्वामी जी पूछते थे 'घोड़ा के चलने से इसके पैर से कौन सी आवाज आती है **?**' विद्यार्थिगण अपने अनुमान से 'टप टप' आदि बताते थे। श्रीस्वामी जी निरन्तर भगवत चिन्तन में निमग्न रहते हुए उनलोंगों को बताते थे 'मुझे तो सीताराम ...सीताराम की आवाज सुनायी पड़ती है।'

रे चितचोर

महाप्रयाण के तीन वर्ष पूर्व से श्रीस्वामी जी महाराज हुलासगंज में स्थायी रूप से विश्रावस्था में रहने लगे थे। इस अन्तराल नित्यनिरन्तर भगवदलीला स्मरण में लीन देखे जाते थे। एक बार राजेन्द्र जी ने सरकार से कहा 'एक बात सरकार जानते हैं क्या ? श्रीस्वामी जी महाराज ने कहा 'नहीं।' राजेन्द्र जी ने सुनाया 'रात में सब दही खा गये।' इतना सुनते ही श्रीस्वामी जी महाराज ने कहा ः

रे चितचोर किशोर बड़े सॉवरे
गये सासु की ओर मेरे तन विसराई के।

इसके बाद ऊंचे स्वर में पद गाने लगे "**खा गेलन हो राते मोहन दधिया। कुछ दही खयलन कुछ भूंइयां गिरवलन ...... कुछ दही मुॅह लपटा गेलन हो ।**"

नरसिंह मंत्र

हुलासगंज प्रवास काल में कभी कभी जब एक दो श्रीवैष्णव श्रीस्वामी जी महाराज के पास सेवारत रहते थे तब ये कहते थे 'इसे याद कर लो।'

उग्रवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नरसिहं भीषणं भद्रं मृत्युर्मृत्यु नमाम्यऽहम्।।

इसीतरह से कभी कभी यह भी गुनगुनाते थे '**यह संसार बबूल का कॉटा समझ समझ पग धरियो। कितना भी हो पर मत कुछ बोलियो।।**'

श्रीकमलनयन जी ः श्रीकमलनयन जी कंचनपुर विहटा के निवासी थे। लोअर स्कूल में एक शिक्षक के रूप में कार्यरत थे। प्रारम्भ से ही ये तबला बादन एवं हारमोयिम बजाने में अभिरूचि रखते थे। इनकी पत्नी हारमोनियम

में कुशल थीं और ये तबला के साथ प्रायः भजन के आनन्द में डूबे रहते थे। इसके अतिरिक्त बाग बगीचा लगाने मे अभिरूचि रखते थे। बाग बगीचा लगाने के विषय पर स्कूल इनस्पेक्टर से कुछ मतभेद हो गया और ये त्यागपत्र देकर सरौतीस्वामी जी के शरण में आ गये। ई सन् **1970** से हुलासगंज में रहने लगे। बाग बगीचा लगाना और उनको हरा भरा रखने की जब बात उठती है तो श्री कमलनयन जी का नाम स्वतः लोगों की जिह्वा पर आ जाता है। हुलासगंज में कच्चा कुँआ खोदकर लाठा कुंड़ी के सहारे कठिन परिश्रम से कंधे पर जल का घड़ा लेकर इन्होंने आम जामुन काजू बहेड़ा आदि के लगभग **300** वृक्ष तथा तुलसी बगान एवं पुष्पवाटिका लगाये। किसी को पौधों से से मनमानी करते देख ये नाराज हो जाते थे। कुछ काल के लिये ये पुनः सरौती चले गये एवं ठाकुरवारी में पुजारी की तरह सेवारत रहे। श्रीस्वामी जी के साथ उनकी सेवा में गॉवों में भी जाते थे। सत्संगति से आयुर्वेद का ज्ञान अर्जित कर लोगों को रोग में औषधि बताकर उनका स्वास्थ लाभ कराने का भी इन्हें श्रेय प्राप्त था।

श्री रामएकबाल जी ः श्री रामएकबाल जी का जन्म अरवल के पास अवस्थित बेलसार गॉव में हुआ था। बचपन से ही ये गाने बजाने में रूचि लेते थे। एकवार बेलसार में श्रीस्वामी जी के समक्ष ये भजन गा रहे थे। इनके मृदु कंठ से प्रभावित हो श्रीस्वामी जी इन्हें सरौती ले आये। श्रीस्वामी जी पदरचना कर इनको देते थे और ये गा कर उनको सुनाया करते थे। कुछ दिन के लिये ये बनारस रहकर गान बजान में प्रवीण हो गये। कभी कभी गॉव जाते थे परन्तु श्रीस्वामी जी का साथ इन्होंने कभी नहीं छोड़ा। हुलासगंज के पास केवड़ी गॉव में श्रीकिशोरी जी एवं श्रीअर्जुन जी ने एक मंदिर बनाकर उसमें श्रीगोपाल भगवान के विग्रह की स्थापना की। श्रीस्वामी जी ने इनको वहॉ अर्चक के रूप में रख दिया। श्रीगोपाल भगवान एवं श्रीशालग्राम भगवान की सेवा में **30** वर्षो तक केवड़ी गॉव में ही रहे। कहा जाता है कि इनके आशीर्वाद से श्रीअर्जुन जी को एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ जो गोपाल जी के नाम से जाने जाते हैं।

श्री गोपाल जी एक प्रपन्न श्रीवैष्णव हैं और सरौती हुलासगंज मेहंदिया आदि ठाकुरवारी से आत्मिय रूप से जुड़े हुए हैं तथा श्रीवैष्णव तीर्थों के भ्रमण में विशेष प्रेम रखते हैं।

एकबार श्रीरामएकबाल जी बीमार होकर गया चले गये। वहाँ श्रीरूपदेव स्वामी जी भी असस्वथ होकर पहुँचे हुए थे। श्रीरूपदेव स्वामी जी ने अपनी चिकित्सा के साथ इनकी भी चिकित्सा करायी। स्वस्थ होकर ये हुलासगंज आ गये तथा आश्रम के संचालन में सहायता करने लगे। प्रत्येक संध्या लक्ष्मीनारायण भगवान के जगमोहन में एक घंटे श्रीमन्नारायण का धुन लगाया करते थे। हारमोनियम इनका प्रिय वाद्ययंत्र था तथा प्रायः इसी के साथ भजन गाया करते थे। ई सन् **1980** में जव सरौतीस्वामी जी का महाप्रयाण हुआ तव उनकी मुखाग्नि करने का सौभाग्य श्रीरामएकवाल जी को ही प्राप्त हुआ था। ई सन् **1992** में ये परमपद कर गये और इनका श्राद्धादि हुलासगंज आश्रम में ही सम्पन्न हुआ।

श्री नकुल जी ः श्री नकुल जी को लोग नकुल बाबा कहकर पुकारते थे। इनका जन्म करौता गाँव में हुआ था और सरौतीस्वामी जी से समाश्रित एक प्रपन्न श्रीवैष्णव थे। प्रयागराज बाड़ा एवं हरिहर क्षेत्र के बाड़ा में ये सम्मिलित हुआ करते थे। मसौढ़ा यज्ञ के बाद से ये श्रीस्वामी जे की सेवा में साथ रहने लगे। जब श्रीस्वामी जी अंतिम तीन वर्षों में हुलासगंज में प्रवास कर रहे थे तो नकुलजी ही उनकी सेवा में रत रहते थे। शांत प्रकृति के नकुल जी आस पास के गाँवों से चन्दा में अन्नादि का संग्रह कर हुलासगंज आश्रम का नित्य तदीयाराधना के काम मे सहायता करते थे। आश्रम में रहने वाले कम उम्र के विद्यार्थी समूह से इनका आत्मिय स्नेह रहता था। शरीर छूटने के बाद इनका श्राद्धादि कार्य आश्रम में ही सम्पन्न हुआ।

श्री मुखी बाबा ः श्री मुखी जी का जन्म भरतपुरा गाँव में हुआ था। गाँव में ही शिक्षा लेकर ये उलार हाईस्कूल में लिपिक के पद पर कार्यरत हो गये। शुरू में शैव मतावलम्बी थे परन्तु सरौतीस्वामी जी के साथ श्रद्धावश जुड़े हुए थे। श्रीस्वामी जी जब भी उस क्षेत्र में जाते थे तो इनका समाचार लिया करते थे। बाद में ये श्रीस्वामी जी से समाश्रित होकर श्रीवैष्णव वन गये। सेवानिवृत्ति

के पश्चात् गाँव में ही एक कुटिया बनाकर रहते थे तथा श्रीवेङ्कटेश भगवान के चित्र के साथ श्रीशालग्राम भगवान की सेवा करते थे। ई सन् **1972** में समदा यज्ञ की पूरी अवधि वहाँ रहकर कथामृत से लाभान्वित होते हुए वहुत प्रसन्न हुए। घर में अपने पुत्रादि को यथाविधि संपत्ति का हिस्सेदार बनाकर कुछ वर्षों बाद हुलासगंज में प्रवास करते अपने गुरू सरौतीस्वामी जी के दर्शनार्थ आये। श्रीरूपदेव स्वामी जी के दर्शन हुए तथा अपने गुरू सरौतीस्वामी जी के लिये पंखा सेवा करने में लग गये। हाईस्कूल की नौकरी से सेवानिवृत्ति के बाद जो पेंसन मिलता था उसे ये हुलासगंज ठाकुरवारी में देने लगे। श्रीस्वामी जी के महाप्रयाण के बाद यहीं रहकर पुजारी बन गये तथा लक्ष्मीनारायण भगवान की सेवा करने लगे। शांत स्वभाव से चुपचाप रहकर जगमोहन पर बैठकर मूलमंत्रादि का जप करते थे तथा दर्शनार्थ पधारने वाले भक्तों को तीर्थ प्रसाद दिया करते थे। करीब **17** वर्षों की सेवा के बाद ये परमपद करगये तथा इनका श्राद्धादि हुलासगंज आश्रम में भी सम्पन्न हुआ और परिवारवालों ने पैतृक घर पर भी सोल्लास श्राद्ध किया।

श्रीलक्ष्मी प्रपन्न जी ः श्रीलक्ष्मी प्रपन्न जी सरौती गाँव के थे तथा तीनों भाई सरौती ठाकुरवारी के सेवा में लगे रहते थे। श्रोता को मुग्ध कर देने वाला मृदु स्वर में भजन गाने की भगवदप्रदत्त कला के धनी श्रीलक्ष्मीप्रपन्न जी को बचपन से ही सरौती स्वामी जी की अनवरत सेवा में लगे रहने का सौभाग्य प्राप्त था। बहुत प्रेमपूर्वक ये श्रीस्वामी जी को 'अर्चागुणगान' तथा 'ध्रुवप्रह्लाद चरित' के पद गाकर सुनाया करते थे। ये कुछ स्वयं निर्मित पद भी श्रीस्वामी जी को सुनाया करते थे। सरौतीस्वामी जी के साथ रहकर उनकी सेवा के लिये 'केयाल के श्री सत्तन जी' तथा 'सरौती के श्रीलक्ष्मीप्रपन्न जी' एवं 'कंचनपुर के कमलनयन जी' प्रसिद्ध थे। सरौतीस्वामी जी के महाप्रयाण के बाद ये श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान के भजन सेवा करते हुए हुलासगंज में ही रहने लगे। परमपद के बाद इनके परिवार के सदस्य ने श्राद्धादि किया तथा हुलासगंज एवं सरौती ठाकुरवारी में भी इनका वैकुंठोत्सव मनाया गया।

श्रीलक्ष्मीप्रपन्न जी ने राजेन्द्र जी को अपना एक संस्मरण सुनाया था। खैरा में विद्यालय के काम से श्रीस्वामी जी वहाँ ठहरे हुए थे। एक दिन

प्रातः ही कहीं आवश्यक कार्य से निकलना था। भगवान के भोग के लिये मात्र छूछी रोटी बनाने का आदेश हुआ। श्रीलक्ष्मीजी साग के साथ रोटी बनाने लगे और शीघ्र ही बनाकर भगवान को भोग अर्पित कर श्रीस्वामी जी को प्रसाद ग्रहण के लिये अनुरोध करने गये। इधर श्रीस्वामी जी विलम्ब देख अकेले ही प्रस्थान हेतु घोड़ा के पास तैयार खड़े थे। श्रीलक्ष्मी जी ने पैर पकड़ लिया तथा प्रसाद ग्रहण करके ही जाने की विनती की। श्रीस्वामी जी वापस आ गये एवं अल्पमात्र प्रसाद ग्रहण कर चले गये। खैरा के ग्रामीण भक्त इस घटना से दुःखी थे कि श्रीस्वामी जी आज भूखे ही चले गये। सायंकाल जब श्रीस्वामी जी वापस आये तो भक्त ने लक्ष्मीजी को भगवान के लिये शीघ्र पूआ बनाने को कहा। पूआ भोग लगा तथा श्रीस्वामी जी को भी पूआ प्रिय था अतः प्रसन्नचित्त हो प्रसाद ग्रहण किये। प्रसाद ग्रहण के बाद श्रीस्वामी जी ने मनोविनोद में लक्ष्मी जी से पूछा 'कौन बड़ा जिद्दी निकला ?' लक्ष्मीजी ने कहा 'भगवान साग के साथ रोटी खाने की जिद में हार गये तथा उनके भक्त छूछी रोटी की जिद पर जीत गये।' श्रीस्वामी जी इस उत्तर से वहुत प्रसन्न हुए तथा उन्हें परिस्थिति के अनुसार ही नैवाद्यादि बनाने की आवश्यकता के बारे में बताया।

श्री किशोरी जी ः तरेत में स्थानाधीश का विवाद हो गया। तरेत के ट्रस्ट निर्धारण के समय व्यवस्था सम्बन्धि अभिलेख में इस बात का उल्लेख हुआ था कि वहाँ के स्थानाधीश कोई विरक्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण होंगे जिन्हें एक पत्तल भोजन प्रसाद के अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं होगा। व्यवस्था का संचालन ट्रस्ट के सदस्यों की बहुमत से होगा। परमहंस स्वामी जी के परमपद होने के पश्चात् इनके दो कान्यकुब्जकुलीन शिष्य श्रीशत्रुघ्नाचार्य एवं श्रीलक्ष्मीप्रपन्नाचार्य के बीच स्थानाधीश के लिए विवाद हो गया। सरौतीस्वामी जी एवं नासिक स्वामी वासुदेवाचार्य जी मृदुस्वभावी श्रीलक्ष्मीप्रपन्न जी को सुयोग्य मानते थे। मामला न्यायालय में चला गया। श्रीशत्रुध्नाचार्य के एक शिष्य थे श्रीकिशोरी जी। ये अपने गुरूदेव के तरफ से न्यायालय के कार्य का देखभाल करते थे। एकवार किशोरी जी नहर के रास्ते से जा रहे थे कि सरौती स्वामी जी से इनकी भेंट हो गयी। श्रीस्वामी जी ने इनसे पूछा 'क्या सोचते हैं

कि अपने गुरूदेव के बाद आप तरेत के स्थानीश बनने के योग्य हैं। अन्यथा विवाद को आगे बढ़ाने से क्या लाभ है। श्रीकिशोरी जी ने निवेदन किया कि अगर पीरमुहानी पटना में स्थित परमहंस स्वामी जी द्वारा स्थापित आश्रम मिल जाता तो मैं मुकदमेबाजी से किनारे हो जाता।' श्रीस्वामी जी ने श्रीनासिक स्वामी जी से रायविमर्श किया और किशोरी जी को पीरमुहानी आश्रम का प्रबन्धक बना दिया गया। किशारी जी न्यायालय के कार्य से मुख मोड़ कर श्रीवैष्णवों की सेवा हेतु पीरमुहानी आश्रम के संचालन में लग गये। कुछ दिन के बाद श्रीशत्रुध्नाचार्य को न्यायालय के निर्णयानुसार तरेत से हटना पड़ा एवं श्रीलक्ष्मीप्रपन्न जी स्थानाधीश हो गये। कुछ समय पश्चात् श्रीलक्ष्मीप्रपन्नाचार्य ने ट्रस्ट के नियमावलि में संशोधन कराते हुए तरेत स्थान भुमिहार ब्राह्मण कुलीन विरक्त नासिक स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी के नाम कर दिया। तरेत का सारा विवाद शांत हो गया। किशोरी जी पीरमुहानी आश्रम में श्रीवैष्णवों की सेवा के लिये प्रसिद्ध हो गये। सरौती स्वामी जी के परमपद हो जाने के बाद किशोरी जी भी अपनी बढ़ती अवस्था के कारण पीरमुहानी आश्रम में परमहंस स्वामी जी द्वारा रखे गये दो अर्चा मूर्ति 'माखन गोपाल' एवं 'लड्डू गोपाल' को हुलासगंज लक्ष्मी नारायण मंदिर में सेवाहेतु लाकर श्रीरूपदेव स्वामी जी को सुपुर्त कर दिये। हुलासगंज में भगवान लक्ष्मीनारायण के गर्भ गृह में विराजमान ये दोनों विग्रह आज भी भक्तों को दर्शन देते हैं। वरविगहा से भी इसी तरह वेङ्कटेश भगवान पधारकर हुलासगंज लक्ष्मीनारायण भगवान के गर्भगृह में लड्डू गोपाल जी के साथ वेदी पर विराज रहे हैं।

5।12।5 छोटे स्वामी श्री हरेराम जी द्वारा संग्रहित संस्मरण

अनोखा प्रयास

श्रीस्वामी जी महाराज लोगों से सम्पर्क बढ़ाने एवं उन्हें सन्मार्ग पर लाने लिए कई प्रकार के प्रयास किया करते थे। जिसकिसी गॉव में कोई परिचित नहीं रहता था उस गॉव की बीचगली से अपना घोड़ा निकालते थे। एक दो बार वहाँ से उन्हें जाते देख लोग इनका परिचय पूछने लगते थे। सरौती स्थानादि का ज्ञान होने पर घोड़ा रोककर विश्रामादि के लिये अनुरोध करने लगते थे। इसतरह से अपरिचित गॉव को भी श्रीवैष्णवमत से परिचित कराया करते थे

तथा उन्हें श्रीवैष्णव संस्कार से सुसंस्कृत किया करते थे।

हरि को भजे से हरि को होई

सुरदासपुर से सम्पर्क बढ़ाने की घटना है। इस क्षेत्र में आते जाते इस गॉव के बाहर से ही निकल जाते थे। एकबार जव कहीं अन्यत्र जा रहे थे तो सुरदासपुर गॉव के बाहर हरिजन टोली में झाल ढ़ोलक पर भजनकीर्तन की ध्वनि सुनकर घोड़ा पास में रोक लिये तथा भजन सुनने लगे। भजन समाप्त होने पर ढ़ोलक वादक को अपने पास बुलाये तथा उनकी ढ़ोलक बजाने की कला की प्रशंसा कर इस सम्बन्ध में विशेष कला से भी उन्हें परिचित कराया। पास में खड़ा एक अन्य युवक यह सब देख रहा था। उसने श्रीस्वामी जी महाराज को गॉव में चलने का अनुरोध किया। स्वामीजी महाराज गॉव में गये तथा इसतरह से सम्पर्क बढ़ने लगा एवं बाद में यह गॉव कुछेक प्रियगॉवों में से एक हो गया। श्रीस्वामी जी महाराज यहॉ महीनों ठहर कर भगवद कथा तथा श्रीवैष्णव पूर्वाचार्यो के चरित्रगाथा से लोगों को लाभान्वित कराते हुए अन्य गॉवों का भ्रमण किया करते थे। भगवद रामानुज स्वामी ने 'गद्यत्रय' में जो भाव व्यक्त किया है श्रीवैष्णवों को उससे अवगत कराते हुए हृदयंगम करने की राय दिया करते थे।

भूख की साधना

भक्तों के बीच भ्रमण करना श्रीस्वामीजी महाराज की एक कठिन साधना थी। एकबार सुरदासपुर पहुॅचे तथा कुछदेर विश्राम करके गले में शालग्राम भगवान की एक छोटी पोटरी लटकाकर अकेले घोड़ा पर पूर्व दिशा की ओर घोड़ा से निकल गये। साथ में कोई विद्यार्थी नहीं था। तीन दिनों के बाद लौटकर पुनः सुरदासपुर आये। जब अच्युत जी तथा अन्य भक्त साष्टांगादि किये तो उन्होंने बताया कि तीन दिन से भगवान दूध एवं मट्ठा पर ही हैं। सुनकर अच्युत जी की ऑखों में ऑसू भर गये 'ओह ! श्रीस्वामीजी महाराज हमलोगों के लिये कितना कष्ट सहते हैं। तीन तीन दिनों तक विना अन्नादि ग्रहण किये रह जाते हैं।' साथ में कोई विद्यार्थी नहीं रहने के कारण अच्युत जी ने शीघ्र ही अपना क्षौरकर्म कराया तथा भगवान के लिये भोग बनाकर उन्हें पसाद ग्रहण कराया।

त्याग एवं भ्रमण

पसंगवश एक बार श्री रूपदेव स्वामी जी ने हरेराम स्वामी जी को बताया था। सरौती स्वामी जी ने श्रीवैष्णव मत के प्रसार हेतु श्री रूपदेव जी को उत्प्रेरित करते हुए 'शंख एवं चक्र' दिया तथा दो बातें कहीं ''त्याग एवं भ्रमण। त्याग से व्यक्ति में आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि होती है समस्त चेतन के प्रति समान दृष्टि बनती है तथा अपना पराया का भेद समाप्त हो जाता है। वसुधैव कुटुम्वकम की भावना परिपुष्टि होती है। भ्रमण के वारे में सरौती स्वामी जी ने परमहंस स्वामी जी का उदाहरण दिया कि कैसे वे भारत के विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण कर श्रीवैष्णव मत का प्रचार प्रसार किया करते थे परन्तु हमलोग सामाजिक कार्य के चलते सीमित दायरे में ही कार्य करते रहे बाहर जाकर प्रचार प्रसार करने का उत्तम मौका नहीं मिल पाया।'' कुछ समय के बाद श्रीरूपदेव स्वामी जी को बाहर जाने की सुविधा के उद्देश्य से रघुराज जी ने पुरान से एक घोड़ी मंगवा कर दीं और उसी से धर्मप्रचारार्थ यात्रा प्रारम्भ हो गयी। अपने शिष्य को उपर्युक्त भावना से भावित कर श्रीस्वामी जी महाराज ने जगन्मंगल सत्कर्म में प्रवृत कराया। लोक कल्याण की प्रवल ईच्छा से ओत प्रोत विशाल हृदय वाले परम संत थे हमारे श्रीस्वामी जी महाराज।

भगवान पर भरोसा

एकबार श्रीस्वामी जी महाराज जारू बनवरिया ग्राम से आगे बरावर पहाड़ के नजदीक रात्रि में तीन चार विद्यार्थियों के साथ अन्तःसलिला फल्गु नदी के किनारे ठहर गये। एक स्थानीय व्यक्ति ने आकर कहा 'साधुजी ! पहाड़ से रात में बाघ आता है जो आपके घोड़ा को तो खा ही जायेगा आपलोगों का भी अता पता नहीं रहेगा।' श्रीस्वामी जी महाराज ने कहा ' अच्छा ठीक है जगदीश हमारे साथ हैं।' इसके बाद अग्नि प्रज्वलित कर श्रीस्वामी जी महाराज स्वयं जागते रहे तथा विद्यार्थीगण को निर्भीक होकर सोने को कहा। रात्रि में बाघ नहीं आया। प्रातः चार बजे विद्यार्थीगण को जगा कर नित्यकर्मानुष्ठान के पश्चात् वहॉ से प्रस्थान कर गये। इस प्रकार भगवान पर पूर्ण विश्वस्त होकर निर्भय रहते हुए कठिन परिश्रम के साथ श्रीस्वामी जी महाराज

ने समाज को जगाया।

संत हंस गुण गहहिं पय

श्री हरेराम जी को वेदान्ताचार्य की परीक्षा की तैयारी करनी थी। विषय से सम्बन्धित परीक्षा के लिए निर्धारित तीन पुस्तकें नहीं मिल पा रहीं थीं। प्रयागराज के बाड़ा का समय था और श्रीहरेराम जी प्रयाग में थे। पुस्तक की जिज्ञासा से बक्सर त्रिदण्डी स्वामी जी महाराज के प्रधान शिष्य श्रीरामनारायणाचार्य जी से मिलने ये प्रयागस्थित उनके बाड़ा में गये। गद्‌गद् कण्ठ से अह्लादपूर्वक उन्होंने इस अविस्मरणीय प्रसंग का उल्लेख किया। वैदराबाद ठाकुरवाड़ी में एक कार्यकम में विद्वान साधु महात्मा तथा अन्य सम्भ्रान्त लोग समुपस्थित थे। प्रसंगानुसार लोग अपना वक्तव्य दे रहे थे। सरौती के श्रीस्वामीजी महाराज भी वहाँ पधारे थे तथा अपने आसन पर बैठकर सबकुछ सुन रहे थे। जब श्री रामनारायणाचार्य जी को बोलने का अवसर आया तब इन्होंने रामानुज वेदान्त पर प्रकाश डालते हुए दाक्षिणात्य आचार्यो एवं आळवारों का भी समुचित उल्लेख किया। वक्तव्य पूरा कर जब ये बैठने ही वाले थे कि पूज्य सरौती स्वामी जी महाराज अपने आसन से उठे और इन्हें एक चादर ओढ़ाकर सम्मानित किया। सरौताी श्रीस्वामी जी से सम्मानित होकर रामनारायणाचार्य जी अभिभूत हो गये तथा शरीर पुलकित हो उठा। वेदान्त विषय पर कोई युवक साधु के वक्तव्य से प्रसन्न गुणग्राही '**संत हंसगुण गहहिं पय**' को चरितार्थ करने वाले संतविद्वान एवं लेखक श्रीस्वामी जी के इस उदात्त व्यवहार से उपस्थित सभामंडली आनन्दित हो उठी। बाड़ा से प्रस्थान करते समय श्रीरामनारायणाचार्य जी ने इसी तरह का सम्मान श्री हरेरामजी का भी किया तथा वस्त्र फलादि के साथ विदाई की। ऐसे मानद थे हमारे परमाचार्य श्रीस्वामी जी महाराज कि उनके वैकुण्ठगमन के बाद आज भी उनके नाम पर ही हमलोग सम्मानित होते रहते हैं।

यह श्रीमद्‌भागवत है

घोड़े से यात्रा करते हुए पूज्यपाद श्रीस्वामी जी महाराज जहानाबाद से पूरब नरमा ग्राम आये। वहाँ से सूरजपुर ग्राम पधारे। जाड़े का मौसम था खलिहान में पूआल पर पूज्यपाद विराजमान हो गये और मूल श्रीमद्‌भागवत जी का

गुटका निकाल कर पढ़ने लगे। वहाँ के एक ग्रामीण मुखलाल जी ने श्रीस्वामी जी महाराज से पूछा 'सरकार कौन सा ग्रन्थ है ? ' श्रीस्वामी जी महाराज ने कहा 'यह श्रीमद्‌भागवत है।' जब मुखलाल जी ने इसकी विशेषता पूछी तब इन्होंने बताया 'श्रीमद्‌भागवत से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं है। प्रातःस्मरणीय आचार्यो ने तथा पुण्यश्लोक संतों ने इस वेदतुल्य महानग्रन्थ को विषम से विषम परिस्थितियों में परमशान्तिदायक कल्याणकारक और ज्ञान भक्ति मोक्ष देने वाला बतलाया है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण ज्ञात अज्ञात् परिचित अपरिचित परिस्थितियों में सत् असत् कर्मो में लीन इस भवसागर के यात्री के लिये कल्याण केन्द्रविन्दु तक पहुँचने का एक अमोघ एवं सुलभ सोपान है। अहो मुखलाल ! यह परमसंहिता भी कहा जाता है तथा एक सर्वोपयोगी ग्रन्थ है। इसमें वर्णित भगवान श्रीकृष्ण की लीलागाथा से मानवमात्र को अलौकिक एवं अपूर्व सीख मिलती है। इससे लोकजीवन के सब तत्वों का विकास होता है एवं परमतत्व का प्रकाश मिलता है। इतना कहकर श्रीस्वामी जी महाराज पाचवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में वर्णित राजा रहूगण एवं जड़भरत जी के बीच के संवाद से 'भवाटवी' यानी 'संसार रूपी वन' का प्रसंग सुनाने लगे।

निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा

श्रीस्वामी महाराज अदम्य उत्साह समर्पित भाव तथा सतत् कियाशील रहकर दिन रात के भेद को विस्मृत कर लोगों को सुधारने का कार्य भगवान के चरणों में लगाने का कार्य किया करते थे। स्वयं भोजन किये हैं न किये हैं किसी को पता नहीं चलता था। तीन तीन दिनों तक अकेले घोड़े पर सवार होकर लगातार सामाजिक सुधार कार्य में संलग्न रहते थे। इनके दर्शन से निरूत्साही आलसी अकर्मण्य लोग भी अपने कर्म धर्म के प्रति जागरूक होने लगते थे। ऐसा पहले से होता आया है कि अच्छे कार्यों में विघ्न आने ही लगते हैं। सहयोगी लोग सहयोग करना बन्द कर देते हैं। इस स्थिति में साधारण लोग विचलित होकर कार्य बन्द कर बैठ जाते हैं। अपनी हार मान लेते हैं। श्रीस्वामी जी महाराज ऐसी विकट परिस्थितियों में **'निज भुज बल मैं बैर बढ़ावा'** बोला करते थे। इसका अभिप्राय है कि जब हमने समाज सुधार का दायित्व ले लिया है तब कोई सहयोग करे न करे अपने बल पर प्रभु को

हृदय में रखकर उनके बल के सहारे मैं कार्य पूर्ण करूँगा। ऐसा वे सदैव करते रहे तथा लोगों को मार्गदर्शन देते रहे। किसी भी परिस्थिति में कार्य विमुख न होने का व्रत उन्होंने अन्त अन्त तक निभाया। शिष्य प्रशिष्यों को अपने इस व्यवहार से प्रेरित करते रहे। ऐसे सत्पुरूष आचार्य सदा स्मरणीय तथा वन्दनीय हैं।

चेतन प्राणी की उपयोगिता एवं सद्‌गति

एक बार रामनवमी के ही दिन श्रीस्वामी जी महाराज को गैनी गॉव के रामनाथ जी के यहाँ कर्मकाण्ड में उपस्थित होना आवश्यक हो गया। सरौती से साथ में तुतलाकर बोलने वाले मेहन्दिया के पुजारी जी तथा हरेराम जी चले। कर्मकाण्ड के लिये पं फिरंगी जी उपलब्ध थे इसलिये श्रीस्वामी जी महाराज भगवान की आरती मंगल के बाद गैनी से सरौती के लिये प्रस्थान कर गये। दाउदनगर में बस की प्रतीक्षा में कुछ समय रूकना पड़ा। मेहन्दिया के पुजारी जी ने बड़े प्रेम से तुतली बोली में श्रीस्वामी जी को भगवान का प्रसाद लेने के लिये राजी कर लिया तथा बसस्टैंड के पास के कुँआ के साथ वाले मन्दिर के एक भाग में फल तथा मीठे पदार्थ का भोग लगाकर स्वामी जी को प्रसाद ग्रहण करने के लिये पधरवाया। प्रसाद ग्रहण करने के बाद हाथ धोते समय श्रीस्वामी जी ने कहा 'घोड़ा रहने से सुविधा होती है।' पुजारी जी ने स्मरण कराया कि दूरी ज्यादा होने से तथा तुरत सरौती लौटने के उद्देश्य से बस की सुविधापूर्ण यात्रा तय हुई थी। इसी प्रसंग में पुजारी ने स्वामी जी से पूछ बैठा 'अच्छा सरकार ! आपको घोड़ा तथा गाय बछड़ा से इतना प्रेम क्यों रहता है ?' श्रीस्वामी जी ने बताया 'मनुष्य की संगति से पशुओं को सद्‌गति मिलती है। उनकी सेवा की उपयोगिता के अनुसार उनकी गति होती है। सबसे उपयोगी गाय है तथा उसके बाद बैल की उपयोगिता है। भैस हाथी घोड़ा ऊँट आदि के द्वारा जितनी सेवा मनुष्य की होती है उस पशु की उतनी ही अच्छी गति होती है। जिस तरह से मनुष्य की सेवा से पशु की सद्‌गति होती है उसीतरह से देवाता यानी परमात्मा की सेवा से मनुष्य की सद्‌गति होती है। दैवकृपा से मनुष्य परमेश्वर के काम आनेवाला दिव्य उपकरण है अतएव मनुष्यों के लिये प्रभु की उपासना का विधान बनाया गया है। स्थान

में आज जो रामनवमी का उत्सव मनाया जा रहा है वह भगवान की उपासना है तथा उनके मुखोल्लास के लिए ही है।' एक तरफ श्रीस्वामी जी घोड़े का स्मरण उसकी उपयोगिता के लिये करते थे तो उसकी सेवा यानी भोजनादि विश्राम पर भी उतना ही ध्यान रखते थे। धन्य हैं हमारे परमाचार्य तथा उनकी अनोखी व्याख्या जो मंत्र के रहस्यार्थ की तरह है।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय

कुछ शिष्यगणों ने एकबार श्रीस्वामी जी से पूछा 'इतना सामाजिक विरोध आलोचना उपहास के वावजूद भी श्रीमान् श्रीवैष्णव धर्म के प्रसार तथा संस्कृत पढ़ने के लिए लोगों को प्रेरित करने से एवं कर्मकाण्ड ज्योतिष सिखाने से विमुख क्यों नहीं होते ? दूसरा व्यक्ति तो कबका अपना रास्ता बदल दिया होता।' श्रीस्वामी जी महाराज क्षणमात्र मौन रहे तत्पश्चात् उन्होंने कहा ' श्रीरामानुज स्वामी के जीवन को स्मरण करो। श्रीरंगम में उन्हें विष दिया गया। शैवराजा के अत्याचार से चौदह वर्षों के लिये श्रीरंगम छोड़कर मैलेकोटे यादवाद्रि में निवास करना पड़ा। उनके गुरू श्री महापूर्ण स्वामी एवं परमप्रिय शिष्य श्रीकुरेश की ऑखें गरम सलाखों से फोड़ दी गयी। श्रीमहापूर्ण स्वामी तो पीड़ा से परमपद कर गये परन्तु श्रीकुरेश जीवित रहे। क्या श्रीरामानुज स्वामी ने अपना रास्ता बदल दिया था ? नहीं। आज जो कुछ देख रहे हो 'ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक' 'यज्ञोपवीत' एवं 'श्रीवैष्णवोचित स्वरूप' यह सब उनकी ही परम्परा से जुड़े श्रीरंगदेशिक स्वामी एवं मेरे गुरूदेव परमहंस स्वामी की देन है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में हृदय होता है। किसी का हृदय 'उदार' होता है तो कोई 'विशाल' हृदय वाला होता है तो कोई 'कृपण' भी होता है। जो उदार हृदय का होता है वह भलाई करने वाले का उपकार करता है परन्तु 'विशाल हृदय' वाला बुराई करने वाले की भी भलाई ही करता है। कृपण हृदय वाला सदा लेना ही चाहता है यानी किसी की भलाई में कुछ देना नहीं चाहता। **'उमा संत की इहइ बड़ाई।मंद करत जो करत भलाई।'** मानस सुन्दरकाण्ड का यह स्मरणीय चौपाई है। श्री स्वामी जी महाराज दैवी सम्पदा से संपन्न थे। इस प्रसंग में गीता **16।5** द्रष्टव्य है।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

'मा शुचः' यानी 'चिन्ता नहीं करनी है' यह पद गीता में मात्र दो ही बार प्रत्यक्ष रूप से भगवान के श्रीमुख से निकला है। एक **16।5** में तथा दूसरा चरम मंत्र **18।66** में। दैवी संपदा से संपन्न श्रीस्वामी जी महाराज सदा वन्दनीय एवं स्मरणीय हैं। इसीलिये संत महापुरूषों की जीवनी पढ़नी चाहिए तथा उसमें अन्तर्मन से अवगाहन करते हुए सद्गुणों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

विद्याथी भगवान से बड़े हैं

एक बार गर्मी के महीने में काशी पढ़ने गये सरौती के कुछ विद्यार्थीगण ग्रीष्मावकाश में सरौती आये। श्रीस्वामी जी महाराज के चरणों में साष्टांग समर्पित कर छात्रावास की तरफ चलना ही चाह रहे थे कि श्रीस्वामी जी महाराज ने पूछा 'भोजन किये हो?' संशय एवं संकोच के संकेत से श्रीस्वामी जी महाराज स्वयं उठे और चौका में चले गये। प्रसाद पर दृष्टि गयी और स्वयं विद्यार्थियों को पत्तल देकर प्रसाद परोस दिया। जब वे लोग प्रसाद ग्रहण कर लिये तो श्रीस्वामी जी महाराज बहुत प्रसन्न दिखे। जब कभी भी इस तरह की परिस्थिति आती थी तो वे कहा करते थे 'विद्यार्थियों को भगवान से भी ज्यादा महत्व देता हूँ, उन्हें बड़ा मानता हूँ।'

शालग्राम भगवान में भगवान वेङ्कटेश का दर्शन

श्रीबलराम पंडित जी ने पूछा 'कैसे बता दिया गया कि यहाँ धन है, यहाँ हड्डी है।' श्रीस्वामी जी ने कहा 'हमें भगवान बता देते हैं।' पंडित जी ने कहा 'हमने नहीं देखा कि भगवान कैसे आये तथा कब आये।' श्री स्वामी जी महाराज कुछ क्षण मौन रहे तथा शांतभाव से समझाने लगे 'हमें शालग्राम भगवान की पूजा करते देखते हो। उन्हीं में वेङ्कटेश भगवान मुस्कारते बालक स्वरूप में दर्शन देते हैं। वही सबकुछ बता देते हैं।' यह सुनकर पंडित जी चुप हो गये क्या बोलते !

तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसी उजियार

अर्चागुणगान का एक पद है 'कण्ठ में ठाकुर हाथ सुमिरनी'। स्वामी जी से किसी ने यह पूछा कि गले में ठाकुर जी को लटकाये रहने से भक्ति बढ़ती है

क्या। पूज्यपाद ने बताया 'ठाकुर जी को गले में डालने का भाव है कि भक्त ने अपना शरीर ठाकुर जी को समर्पित कर दिया है। यह शरीर भगवान को प्रसन्न रखने के लिए है।' भगवान तो भीतर बाहर सब जगह अन्तर्यामी होकर रहते हैं। गले के बाहर के ठाकुर जी हृदय के भीतर के ठाकुर जी के साथ समन्वय करके भक्त का कल्याण ही करते हैं।

प्रभाते कर दर्शनम्

एक भक्त ने संशय से कहा कि प्रातः उठकर अपने हाथ की तलहथी को देखने का क्या अभिप्राय है? श्रीस्वामी जी ने कहा 'इसका बहुत उत्तम भाव है। व्यक्ति प्रातः काल में ही दिनभर के कार्यकलाप का दर्शन कर लेता है। वह सोच लेता है कि ये हाथ भगवान की पूजा में लगेंगे। इन्हीं हाथों से तुलसी पुष्पादि का संग्रह करूँगा। इन हाथों से किसी पर आघात नहीं करूँगा। इन हाथों से दीनदुःखियों के वेदनाश्रु को पोछूँगा। ऐसे अनेकों परहित के भावना से व्यक्ति ओतप्रोत रहता है।'

काल एवं स्थान का महत्व

एक बार स्वामी जी महाराज दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा से लौट रहे थे। जहानाबाद ट्रेन से उतरकर अरवल वाली बस पर सवार हो गये। मोथा ग्राम के पास बस से उतरकर सरौती की ओर चल दिये। साथ के शिष्यगणों ने कुछ अल्पाहार करने का आग्रह किया क्योंकि तीर्थक्षेत्र में यात्रावधि में इस तरह की स्थिति में भगवान को अल्पाहार कराते हुए चलते थे। श्रीस्वामी जी महाराज ने मना कर दिया कि स्थान एवं समय के अनुसार ही कुछ करना चाहिए। दक्षिण क्षेत्र की बात दूसरी थी। यहाँ तो अब अपने आश्रम पर पहुंचने वाले हैं।

जनुधेनु बालक .... हुँकार करि धावत भई

श्रीस्वामी जी महाराज संध्या समय में एकबारी गाँव पहुँचे। किसी ने कहा कि ओड़बिगहा में महंथ कामेश्वर जी के बच्चे का कल यज्ञोपवीत है। **'सममानि निरादर आदरहीं'** श्रीस्वामी जी रात ही में बिना निमंत्रण की अपेक्षा किये ओड़बिगहा के लिये घोड़ा से प्रस्थान कर गये। प्रातः वहाँ पहुँच कर स्वयं आचार्य बनकर सब वैदिक विधि से शुभकार्य संपन्न कराया। किसी ने पूछा

'इतना रातो रात चलकर आने की क्या आवश्यकता थी।' श्रीस्वामीजी महाराज ने कहा 'रामनवमी जन्माष्टमी में जब मैं बुलाता हूँ तो आपलोग सब कामकाज छोड़कर सरौती पहुँच जाते हैं तो मैं इतना भी नहीं कर सकता हूँ !

भगवान से जुड़ जाओ

भीमलपुर श्री गोपाल जी के यहाँ श्रीस्वामी जी महाराज पधारे हुए थे। आषाढ़ का महीना था। निकट भविष्य में ही श्रीस्वामी जी को बालाजी दर्शन के लिए जाना था। इन्होंने श्रीगोपाल जी को कहा 'आप भी सम्मिलित हो जाइये'। श्रीगोपाल जी पेशोपश में पड़ गये। गृहस्थी का समय है क्या करें । श्रीस्वामी जी उनके इत उत को समझ रहे थे। इन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा 'कुछ रूपये जमा कर के भगवान के भोग में सम्मिलित हो जाइए।' श्रीगोपाल जी ने हर्षित मन से कुछ रूपए श्रीस्वामी जो को अर्पित कर दिये। यात्रा से लौटने के वाद श्रीस्वामी जी सुरदासपुर होते हुए भीमलपुर आये और बालाजी के कई बड़े बड़े लड्डू श्रीगोपाल जी को दिये। प्रसाद पाकर पूरा परिवार आह्लादित हो गया। इस अनूठे तरीके से श्रीस्वामी जी महाराज भक्तों को भगवान से जोड़ा करते थे।

रामस्वरूप जी की पहचान

सरौती उत्तराधिकार विवाद के समय श्रीस्वामी जी ने नये ट्रस्ट का निर्माण किया था। विवादी ने सरकारी अदालत में बताया 'अवस्था अधिक हो जाने के कारण श्रीस्वामी जी की स्मृति ठीक नहीं है और इस ट्रस्ट से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।' अन्वेषण में एक मजिस्ट्रेट सरौती आये। वादी प्रतिवादी से प्रांगन खचाखच भरा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा 'अमुक अमुक व्यक्ति जो नये ट्रस्ट में हैं किस किस गॉव के हैं? ' श्रीस्वामी जी ने सही सही गॉव का नाम बता दिया। मजिस्ट्रेट ने पुनः पूछा 'सरौती गॉव के रामस्वरूप जी भी ट्रस्ट के सदस्य हैं। आप यहाँ उपस्थित सज्जनों में से पहचान कर यह बता सकते हैं कि रामस्वरूप जी कौन हैं।' श्रीस्वामी जी क्षणभर मौन रहे। तत्पश्चात् उन्होंने उँगली से बैठे हुए रामस्वरूप जी की ओर संकेत किया। विवादियों को पूरा विश्वास था कि श्रीस्वामी जी रामस्वरूप को नहीं पहचान पायेंगे।

लेकिन उनकी आशा के विपरीत श्रीस्वामी जी ने सही पहचान की। ये था श्री स्वामी जी की अलौकिक दैवी शक्ति ! ऊपर से परमहंस जैसी तुरीयावस्था में सबकुछ भूले से दिखते हुए भगवदलीला के अन्तःअवगाहन में लीन रहने वाले श्रीस्वामी जी को सामान्य जन संशययुक्त होकर कहते थे कि श्रीस्वामी जी को अब याद रखने की शक्ति नहीं रही।

दिखता तो सूर्य भी है

श्रीस्वामी जी को किसी गॉव में जाना था। बसस्टैंड पहुँच कर घोड़े की प्रतीक्षा करनी थी। श्रीस्वामी जी ने साथ शिष्यों से कहा 'घोड़े की प्रतीक्षा क्यों करें चलें पैदल हीं। कुछ दूर चलने के बाद पूछा 'अब गॉव कितनी दूर है ? किसी ने कहा 'जो सामने दिख रहा है वही गॉव है।' श्रीस्वामी जी ने कहा 'दिखता तो सूर्य भी है। तो क्या सूर्य तक चले जायेंगे ! दूरी कितनी है यह न बताओ।

यशोदा के नटखट ललनवॉ

1980 ई में महाप्रयाण के पूर्व श्रीस्वामी जी महाराज हुलासगंज में रहते थे।

'बसो रे मेरे नयनन में नन्दलाल' के भाव में सदा ऑखे बंद किये मौन रहते थे। क्षौर कर्म के अभाव में दाढ़ी बढ़ गयी थी। कोई अगर कैंची वगैरह लेकर क्षौर कर्म का प्रयास करता तो उसे हाथ से मारकर फेंक देते थे। कोई युक्ति नहीं दिख रही थी। इसीबीच श्रीस्वामी जी के जहानाबाद के समीपस्थ हाजीपुर गॉव के एक गवैया एवं अनन्य शिष्य धर्मदेव ठाकुर स्थान पर आये। उन्होंने आत्मविश्वास से क्षौर कर्म करने की तैयारी की। थोड़ा पानी सुसुम गरम किया गया। छोटी से रूई का फाहा लेकर वे श्रीस्वामी जी के समीप गये और अपनी सुरीली आवाज में गाना शुरू किया **'यशोदा के नटखट ललनवॉ न माने कहनवॉ, हो!!!!'** श्रीस्वामी जी महाराज भगवान के लीलागान में अवगाहन करने लगे और धर्मदेव जी ने रूई के फाहा से सुसुम पानी दाढ़ी पर लगाकर

उसे नरम कर लिया तथा तत्पश्चात् गीत गाते हुए क्षौर कर्म संपादित कर दिया। उस समय से महाप्रयाण तक श्री धमेदेव जी स्थान पर ही रहकर श्रीस्वामीजी के कैंकर्य में लगे रहे।

करत मनोरथ आतुर धावा

गोह क्षेत्र के रवानी जाति के एक भक्त श्रीस्वामी जी का आगमन सुनकर इन्हें अपने घर ले गये परन्तु कहाँ बैठायें समझ नहीं पा रहे थे। श्रीस्वामी जी इनका भाव समझ गये एवं पत्थर के जॉता पर कम्बल रखकर स्वयं बैठ गये। इसके बाद भक्त जी ने यथोचित सत्कार किया। भक्त के भाव को समझने वाले ऐसे थे श्रीस्वामी जी महाराज।

मानौं एक भगति कर नाता

ओड़विगहा के पास माली सुमाली के बन्धुदास रवानी भक्त ने श्रीस्वामी जी से आतुर होकर प्रार्थना की 'सरकार ! अपने घर पर आप ही से श्रीसत्यनारायण कथा सुनने की ईच्छा है।' श्रीस्वामी जी ने वैसा ही किया। भक्त धन्य धन्य हो गया।

5।12।6 प्रकीर्ण संस्मरण

स्वर्ग एवं नरक में भेद

एक बार रघुनाथ गॉव में श्रीस्वामी जी पधारे हुए थे। दर्शन हेतु भक्तगणों का तॉंता लगा हुआ था। इसी में श्रीराजदेव शर्मा जी ने श्रीस्वामी जी से कहा 'सरकार ! पृथ्वी पर ही स्वर्ग नरक दोनों है।' दूर सामने गंदे कीचड़ में सूअर को आनन्द से लोटते देख श्रीस्वामी जी ने इसका उदाहरण दिया। गंदा कीचड़ सूअर के लिये सुख देता है परन्तु एक आदमी इस कीचड़ से घृणा करते हुए दूर ही रहना चाहता है। यहॉं स्वर्ग एवं नरक सापेक्षिक हैं यानी एक का स्वर्ग दूसरे के लिये नरक है। परन्तु वास्तव में स्वर्ग वही है जहॉं सभी प्राणी सुख से रहते हों।'

श्रीस्वामी जी के आगमन की सूचना

पालीगंज के पास के रघुनाथ पुर के 90 वर्षीय श्रीराजदेव जी ने वताया 'श्रीस्वामी जी का घोड़ा पंचकल्याण था। संपूर्ण शरीर हल्का लाल रंग का और चारो घुटने पर पर काला तथा ललाट में ऊर्ध्वकार काली रेखा वाले

घोड़ा को पंचकल्याण कहते हैं।इस रंग को कुमेद रंग कहते हैं। घोड़े की पूँछ काली एवं अतिशय लंबी जो शायद ही किसी अन्य घोड़े में देखी जाती है। जब श्रीस्वामी जी महाराज निरखपुर पार करने लगते थे तो घोड़ा ऐसा हिनहिनाता था कि रघुनाथपुर तक आवाज आती थी और हमलोगों को श्रीस्वामी जी के आगमन की सूचना मिल जाती थी। घोड़े का टाप भी बहुत दूर ही से सुनाई पड़ता था।

घोड़े को आज्ञा की अपेक्षा

आरक्षी उपाधीक्षक पद से सेवा निवृत्त रघुनाथपुर निवासी श्रीकृष्णकुमार जी ने तीन चार संस्मरण सुनाये। जब भी श्रीस्वामी जी गॉव में पधारते थे तो लुंगी एवं पैजामा वाले लोग जल्दी से धोती धारण कर तिलक लगाकर स्वामी जी का दर्शन करने जाते थे। एक बार पुजारी जी यानी श्रीदामोदराचार्य जी के दालान पर जो ठाकुरवारी भी कहा जाता था श्रीस्वामी जी आकर टिके। घोड़े को खाने के लिये चना चोकर आदि नाद में दिया गया। घोड़ा श्रीस्वामी जी को ओर ही देखता रहा और भोजन की ओर कभी नहीं देखा। जब श्रीस्वामी जी को बताया गया कि सरकार घोड़ा कुछ खा नहीं रहा है तो वे तुरत उठकर आये एवं नाद को देखकर उसे खाने को कहा। घोड़ा तुरत खाने लगा। पशु भी विना श्रीस्वामी जी की आज्ञा के खाता भी नहीं था ऐसा था श्रीस्वामी जी के प्रति सबों का आदरभाव।

श्री स्वामी जी को लू का असर हो गया था। गॉव से पश्चिम कृष्णकुमार जी का एक आम का पेड़ था जिसका नाम 'कुतिया आम' था। तुरत लोग कुतिया आम के पेड़ से आम लाये और पकाकर स्वामी जी को दिया गया। श्रीस्वामी जी ने पूछा 'इतनी शीघ्रता से कहॉं से आम आया ? लोगों ने कुतिया आम कहा तो श्रीस्वामी जी ने कहा 'इसे '**महावीरी आम**' कहिये न कि कुतिया आम।' पिसे हुए सूखे ऑंवला की टिकिया बनाकर श्रीस्वामी जी शिर के ऊपर लू की गर्मी के निवारण हेतु उपयोग में लाते थे।

एकबार गॉव में हैजे का प्रकोप हो गया था। दो तीन लोग काल कवलित भी हो गये। लोग श्रीस्वामी जी के पास गये तो उन्होंने पूछा 'कौन रघुनाथपुर हम्मर रघुनाथपुर'। तुरत रघुनाथपुर के लिये चलदिये। गॉव में पहुँच कर एक स्थान पर हवन किये तथा जल गॉव में एवं गॉव के बाहर छिड़कवा दिये। हैजा जादू जैसा लुप्त हो गया।

तीर्थ की महिमा

रघुनाथपुर के ही एक सज्जन को मधुमेह की बीमारी थी। श्रीस्वामी जी द्वारा कुशल क्षेम पूछने पर उस व्यक्ति ने कहा 'बदरीनारायण की यात्रा के कारण मधुमेह बढ़ गया है एवं परेशानी बढ़ी हुई है।' श्रीस्वामी जी उनके उत्तर से दुःखी हो गये एवं समझाया 'भगवान तो सदा भक्त का कल्याण ही करते हैं। उनके निमित्त यात्रा में खोट नहीं देखनी चाहिये। इसका अर्थ है कि भगवान पर विश्वास की कमी है। भगवान को अनावश्यक अपनी परेशानी का कारण नहीं बनाना चाहिये।'

शालग्राम भगवान लूटे गये

यह संस्मरण महमतपुर के समीपस्थ हरपुरा निवासी श्रीस्वामी जी के अनन्य भक्त वैकुण्ठवासी श्री हृदयनारायण शर्मा जी का है जो उनके भतीजा श्री सुरेन्द्र जी ने बताया। एक बार हरपुरा से श्रीस्वामी जी खूब तड़के यानी दो घंटा रात्रि शेष रहते घोड़ा से सरौती के लिये प्रस्थान कर गये। साथ में विद्यार्थी लोग पीछे से पैदल जा रहे थे। कुछ दूर जाने पर रास्ते में भेड़ चराने वाले गड़ेरियों ने श्रीस्वामी जी को जाते नहीं देखा था परन्तु विद्यार्थियों को देखा और उनका सारा सामान छीन लिया। विद्यार्थी सब भाग खड़ा हुए। जब चोरों ने सामान की छानबीन की तो उसमें शालग्राम भगवान मिले। तुरत उनलोगों के कान खड़े हो गये और पता लगाया तो पता चला कि इधर से घोड़ा पर एक साधु गुजरे थे। वे लोग समझ गये कि यह सारा सामान सरौती स्वामी जी का है। सामान लेकर वे लोग सरौती पहुँचे और श्री स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़े। श्रीस्वामी जी ने कहा 'भगवान को आपलोगों की कर सेवा पसन्द रही होगी इसलिये आप लोगों के यहाँ लुटकर चले गये। जाइये पुजारी जी को भगवान सुपुर्त कर दीजिये।' पुजारी जी को भगवान तथा अन्य सामान लौटाकर क्षमा माँगते हुए वे लोग तीर्थ प्रसाद ग्रहण करने के पश्चात् लौट आये।

5।13 रहस्य मंत्र

श्रीपराशर भट्ट के पहले 'मूल मंत्र' 'द्वय मंत्र' एवं 'चरम मंत्र' के

रहस्यार्थ को सार्वजनिक करने की परम्परा नहीं थी। इसे शिष्य अपने गुरू से ही कालक्षेप में प्राप्त करता था। 'द्वय मंत्र' का रहस्यार्थ श्रीरामानुज स्वामी को श्री पेरिया नंबी यानी श्री महापूर्ण स्वामी ने बताया था। श्री पेरिया नंबी ने ही 'मूल' एवं 'चरम' के रहस्यार्थ के लिये इन्हें गोष्ठीपूर्ण स्वामी के यहाँ भेजा था। श्रीरामानुज को अठारह बार के प्रयास के बाद श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी यानी श्रीकोट्टियूर नंबी ने मूल एवं चरम मंत्र का रहस्यार्थ बताया था। गुरू की आज्ञा का उल्लघंन करते हुए श्रीरामानुज ने इसे मौखिक रूप से सार्व जनिक कर दिया परन्तु इनको लिपिबद्ध कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं करने की परम्परा चलती रही। पहली बार श्रीपराशर भट्ट ने रहस्यार्थ को 'अष्टश्लोकी' के नाम से लिपिबद्ध कर प्रकाशित किया।

श्रीस्वामी जी महाराज के अर्चागुणगान के पद 59 में रहस्य मंत्रों की महिमा बतायी गयी है। **'मा शुच पद जेहि जान लिया तेहि सोचब का।'** चरम तथा द्वय एवं मूल मंत्र को जपते हुए दिव्यदम्पति श्रीमन्नारायण का ध्यान करते रहने से भव रोग से छुटकारा अवश्य मिलता है इसमें कुछ सोचना नहीं है। भगवान ही साधन हैं। भक्तवत्सल श्रीस्वामी जी त्रिपाद विभूति से यह संदेश समस्त श्रीवैष्णव जनों को दे रहे हैं। स्मरण रहे कि अर्चागुणगान के 48 से लेकर 58 तक के पदों में श्रीस्वामी जी साक्षात त्रिपाद विभूति में भगवान से मिलने के आनन्द में हैं।

**'मा शुच पद जेही जान लिया तेही शोचब का
भगवत भयउ उपाय भला तब शोचब का।
मंत्र युगल माला युग जाके
युगल भावना मन बस ताके
युगल चरण के ध्यान धरे तेहि शोचब का।
उर्ध्वपुण्ड्र जाके शिर शोभत
तेहि लखि के भगवत मनमोहत ।
आये हृदय चतुर्भुज हृदय बसे तेहि शोचब का।
मन्त्र रत्न जेहि जपत निरन्तर
तेहि भगवान से नहीं कुछ अन्तर ।
यह श्रुति सन्त पुराण कहै तब सोचब का।**

लक्ष्मी माता के दृष्टि तल होकर के
ना भुलव कबहु पल भरके।
भये भगवान के प्रेम विषय तब सोचब का।'

श्रीपराशर भट्ट के 'अष्टश्लोकी' के उद्धरण से उपर्युक्त तीन रहस्य मंत्रों के सार यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अष्टश्लोकी के आठ श्लोकों में श्लोक **1** से **3** तक 'तीन पद वाले मूल मंत्र' **'ॐ नमो नारायणाय'** के अर्थ के लिये हैं। चौथे श्लोक में भक्तों के मार्ग के व्यवधान एवं उससे दूर रहने की राय दी गयी है। पाँचवें श्लोक में द्वय मंत्र **'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः'** के अनुसन्धान से होने वाले लाभ बताये गये हैं। छठे श्लोक में माता लक्ष्मी की शरणागति के लाभ दिये गये हैं। इससे अहंकार एवं ममकार का नाश होकर दासत्व भाव का जागरण होता है जो द्वय का सार है। सातवें श्लोक में **'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'** चरम मंत्र के भावार्थ दिये गये हैं। शरणागति की भावना की जागृति भी बिना भगवत कृपा के नहीं होती इस बात की स्वीकारोक्ति आठवें श्लोक में है। भगवान को एकमात्र उपाय बनालेने पर यानी भगवान पर ही 'निर्भर' होने से 'निर्भय' होने की संभावना होती है।

सबसे पहले श्रीमन्नारायण ने बदरिकाश्रम में नर मुनि को अष्टाक्षर मंत्र बताया था। इससे जीव के अपने 'स्वस्वरूप' का ज्ञान होता है। दासत्व ही जीव का स्वरूप है। इस मंत्र का पहला पद 'ॐ' तीन अक्षरों 'अ' 'उ' एवं 'म' के संयोग से बना है। इसे प्रणव भी कहते हैं। 'अ' जगत के आदिकारण परमपिता श्रीमन्नारायण का सूचक है। 'म' जीव का प्रतीक है जो मेरा तेरा में लगा रहता है। 'उ' दोनों अक्षरों को जोड़ता है यानी 'अ' एवं 'म' के बीच का सम्बन्ध बताता है। जीव का दासत्व ही इसका ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करता है।

द्वय मंत्र से दिव्यदम्पति की शरणागति होती है। इस मंत्र में श्रीमन्नारायण के समर्पण के साथ उनकी प्रार्थना भी है। यह मंत्र दो खण्डों में है इसीलिये इसी द्वय भी कहा जाता है। इसका पहला खण्ड 'साधन' का

प्रतीक है तथा दूसरा खण्ड 'लक्ष्य' का बोध कराता है। भगवान के चरणारविन्द साधन हैं तथा भगवान लक्ष्य हैं।

अकारार्थो विष्णुः जगदुदयरक्षाप्रलयकृत मकारार्थो जीवः तदुपकरणं वैष्णवमिदम्। उकारोऽनन्यार्हं नियमयति सम्बन्धमनयोः त्रयीसारस्त्र्यात्मा प्रणव इममर्थ समदिशत।।1।।

मूल मंत्र **'ॐ नमो नारायणाय'** है। इसका प्रथम शब्द को प्रणव कहते हैं तथा 'ॐ' तीन अक्षरों के संयोग से बना है। ॐ = अ + उ + म । तीन अक्षरों में से पहला अक्षर 'अ' जगद के सृष्टिकर्ता पालनकर्ता एवं प्रलयकरने वाले भगवान विष्णु का प्रतीक है। तीनों का अंतिम अक्षर 'म' जीव का प्रतीक है जिसे भगवान अपने उपकरण के रूप में प्रयोग करते हैं। मध्य का अक्षर 'उ' दोनों के बीच यानी 'अ' एवं 'म' के बीच एक अनन्य यानी विलक्षण सम्बन्ध स्थापित करता है और यह उपाय या साधन का प्रतीक है। सेवा ही साधन है तथा लक्ष्मी जी भी दोनों को यानी परमात्मा एवं जीव को जोड़ने के साधन के रूप में काम करती हैं। अंततः इससे यह स्थापित होता कि 'प्रणव' वेदों का सार है यानी उसकी आत्मा है और यह जीव एवं ईश्वर को जोड़ने का उपाय बताता है।

मन्त्रब्रह्मणि मध्यमेन नमसा पुंसः स्वरूपं गतिः गम्यं शिक्षितमीक्षितेन पुरतः पश्चादपि स्थानतः।
स्वातन्त्र्यं निजरक्षणं समुचिता वृत्तिश्च नान्योचिता तस्यैवेति हरेः विविच्य कथितं स्वस्यापि नार्हं ततः।।2।।

मूल मंत्र को 'मंत्र ब्रह्मणि' कहा गया है। इस मंत्र के बीच का पद 'नमो' यानी 'नमः' है जो जीव का स्वरूप स्थापित करता है। 'नमः' का अर्थ नमस्कार तथा समर्पण है जो जीव की 'गति' है यानी उपाय है। यही 'गम्य' यानी लक्ष्य का प्राप्ति कराने वाला है। जीव को अपनी रक्षा की स्वतंत्रता नहीं है वह भगवान का दास है।

अकारार्थायैव स्वमहमथ मह्यं न निवहाः नराणां नित्यानामयमनमिति नारायणपदम्।
यमाहास्मै कालं सकलमपि सर्वत्र सकलासु अवस्थास्वावि ः स्युः मम सहजकैंकर्य विधयः।।3।।

इस श्लोक में 'नारायणाय' पद का अर्थ है यानी हमारा समर्पण नमस्कार नारायण के लिये हैं। स्वाभाविक रूप से हम नारायण के दास हैं जो सभी के आधार हैं। सर्वदा सभी स्थितियों में हम उनके चरणों में सेवा कैंकर्य अवश्य करते रहें।

देहासक्तात्मबुद्धिर्यदि भवति पदं साधु विद्यात् तृतीयं स्वातन्त्र्यान्धो यदि स्यात् प्रथम मितरशेषत्वधीश्चेत् द्वितीयम्।
आत्मत्राणोन्मुख श्चेन्नम इति च पदं बान्धवाभासलोलः शब्दं नारायणाख्यं विषयचपलधीश्चेत् चतुर्थीं प्रपन्नः।।4।।

भ्रमवश जिसकी बुद्धि देह में आसक्त होकर इसे आत्मा समझने लगती है उसको प्रणव के तृतीय अक्षर 'म' का स्मरण करना चाहिये। इससे जीव के स्वाभाविक स्वरूप का ज्ञान हो जायेगा। जो अपने को स्वतंत्र कर्ता मानकर ईश्वर पर अपनी परतंत्रता भूल जाता है उसे प्रणव के 'अ' का स्मरण करते रहना चाहिये। जिसे इस बात का भ्रम है कि वह ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य पर आश्रित है उसे प्रणव के द्वितीय अक्षर 'उ' का स्मरण करना चाहिये। जिसे अपने आप को 'आत्मत्राण' यानी रक्षक मानने का भ्रम हो जाये वह मंत्र के 'नमः' पद का स्मरण करे। जिसे सांसारिक एवं रक्त के सम्बन्ध पर निर्भर रहने का भ्रम हो जाये वह 'नारायण' पद का स्मरण करे। जिसे विषयानुराग में आनन्द आये वह चतुर्थी रूप 'आय' का स्मरण करता रहे। तात्पर्य है कि सांसारिक सुख में आनन्द न लेकर नारायण के समर्पण में आनन्द ले। चौथे श्लोक का अभिप्राय है कि देहात्मबुद्धि स्वातंत्र्य़ रक्षकत्व़ देवतान्तऱ एवं सांसारिक विषयानुराग के व्यवधान को मंत्र के सभी पदों को ठीक से स्मरण करने से समाप्त हो जाता है।

नेतृत्वं नित्ययोगं समुचितगुणजातं तनुख्यापनं च। उपायं कर्तव्यभागं त्वथ मिथुनपरं प्राप्यमेवं प्रसिद्धम्।
स्वामित्व प्रार्थनां च प्रबलतरविरोधप्रहाणं दशैतान् । मन्तारं त्रायते चेत्यधिगतनिगमः षटपदोऽयं द्विखण्डः।।5

द्वय मंत्र का दो भाग है। पहले भाग के पहले शब्द के प्रारम्भ में 'श्री' है जो लक्ष्मी जी का प्रतीक है। 'श्री' यानी लक्ष्मी जी ही मंत्र का नेतृत्व कर रही

हैं। 'नेतृत्वं' का तात्पर्य है कि जीव का नारायण से सम्बन्ध बनाने में लक्ष्मी जी अगुआ रहती हैं। जीव के कल्याण में लक्ष्मी जी जीव के दोष को भुलाकर भगवान से उसके उद्धार के लिये संस्तुति करती हैं। इसे 'पुरूषकार' करना भी कहते हैं। 'श्री' का 'नारायण' के साथ शाश्वत सम्बन्ध है जो 'नित्ययोग' है। इसी अंतहीन सम्बन्ध के कारण 'श्रीमन्नारायण' का अभिप्राय दिव्यदम्पति से है। 'समुचित गुण जातं' नारायण का पर्याय है। जो 'नरों के अयन' हैं या 'जो नरों में अपना अयन' रखते हैं नारायण के दोनों अर्थ लिये जाते हैं। नर का प्रयोग वृहत अभिप्राय में हुआ है जो समस्त चर अचर का प्रतीक है। करूणा़ सौलभ्य आदि सभी कल्याण गुण 'समुचितगुणजातं' नारायण में ही बसते हैं। 'तनुख्यापनं' का अभिप्राय 'चरणौ' है यानी भगवान के मनोरम युगल चरणाविन्द इनके सम्पूर्ण शरीर 'तनुख्यापनं' को उदभासित करते हैं। मंत्र का 'शरणम्' शब्द 'उपाय' का द्योत्तक है। मंत्र के पहले भाग का अंतिम शब्द 'प्रपद्ये' है जो जीव के 'कर्तव्यभाग' का बोध कराता है। जीव के सभी कैंकर्य भगवान के युगलचरण में सेवाभाव से समर्पित होते हैं।

द्वय मंत्र के दूसरे भाग का प्रारम्भ 'श्रीमते' यानी 'दिव्यमिथुन' 'दिव्यजोड़ी' 'दिव्यदम्पति' भाव को प्रकट करता है। 'नारायण' शब्द भगवान के 'स्वामित्व' का प्रतीक है। नारायण ही सार्वभौम स्वामी हैं। नारायणाय = नारायण + आय का 'आय' शब्द संस्कृत के धातु रूप की चौथी विभक्ति है जो 'के लिये' या 'के निमित्त' के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है। इसका अभिप्राय है कि सभी कैंकर्य या सेवा सदा के लिये भगवान के निमित्त हैं। मंत्र के दूसरे भाग का अंतिम शब्द 'नमः' यानी सम्पूर्ण समर्पण है। यह सभी 'मेरा तेरा के ममकार' तथा अहंकार को दूर कर 'प्रवलविरोध' यानी महान अड़चन को दूर करता है। इस मंत्र का नित्यानुसन्धान त्राण देने वाला है यानी मंत्र ही रक्षक है। यह मंत्र **'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।'** निगम यानी श्रुति से ली गयी है। दो खण्ड में विभक्त छः पदों के योग से बना यह द्वय मंत्र सर्वदा कल्याणकारी है

ईशानां जगतामधीशदयितां नित्यानपायां श्रियं। संश्रित्याश्रयणोचिताखिल गुणस्यांघ्री हरे राश्रये।

इष्टोपायतया श्रिया च सहितायात्मेश्वरायार्थये। कर्तुं दास्यमशेषप्रतिहतं नित्यं त्वहं निर्ममः।।6

यह श्लोक लक्ष्मी जी की महिमा को उद्भासित करते हुए द्वय मंत्र का सार बताता है। 'ईशानां' का अभिप्राय है कि समस्त जगत की माता हैं मालकिन हैं। 'जगतामधीशदयितां' समस्त जगत के अधिपति भगवान नारायण की पत्नी हैं। नारायण समस्त कल्याण गुणों (सौलभ्य जो सबको उपलब्ध हो सौसील्य़ वात्सल्य़ कारूण्य़ औदार्य यानी उदाऱ कर्तृत्व यानी सब कुछ करने वाले़ कृतज्ञत्व़ स्वामित्व़ सर्वज्ञत्व़ सर्वशक्तित्व परिपूर्णत्व आदि) से सम्पन्न हैं और हम उनकी शरण लेते हैं। लक्ष्मी जी ही दासत्व भाव वाले जीव को नारायण से जोड़ने के उपकरण़ साधऩ एवं उपाय हैं। इनसे ही जीव में दास्यभाव का जागरण होता है और 'नमः' के माध्यम से जीव को सर्वदा 'र्नि ममः' यानी 'ममकार अहंकार से विहीन' कर देती हैं। '**तेनाकारं श्रियं ज्ञात्वा ज्ञातव्यो भगवान हरिः**' द्वय मंत्र का सार है। 'श्री' लक्ष्मी जी जीव के उद्धार हेतु छः तरह के साधनों का प्रयोग करती हैं। 1।'**श्रीयते**' यानी सबको आश्रय देती हैं। 2।'**श्रयते**' यानी स्वयं भगवान का आश्रय ग्रहण करती हैं। 3। '**श्रृणोति**' यानी स्वयं जीव की बात सुनती हैं। 4।'**श्रावयति**' यानी भगवान को जीव की प्रार्थना सुनाती हैं। 5। '**श्रृणाति**' भगवान की शरणगति प्राप्त करने में उत्पन्न बाधाओं का नाश करती हैं। 6। '**श्रीणाति**' अपने कल्याण गुणों से जगत को परिपूर्ण करती हैं।

मत्प्राप्त्यर्थतया मयोक्त मखिलं सन्त्यज्य धर्मं पुनः। मामेकं मदवाप्तये शरणमित्यार्तोऽवसायं कुरू।

त्वामेवं व्यवसाययुक्तमखिलज्ञानादिपूर्णोह्यहं। मत्प्राप्तिप्रतिबन्धकैः विरहितं कुर्यां शुचं मा कृथाः।।7

इस श्लोक में श्रीपराशर भट्ट भगवान के वाक्य की शैली में कहते हैं 'मुझे प्राप्त करने के लिये दूसरे सभी उपायों का त्याग कर दो। अपने लक्ष्यप्राप्ति के लिये अवसाद मत करो। तेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति हम करेंगे क्योंकि हम समस्त ज्ञान एवं बल से परिपूर्ण हैं और आवश्यतानुसार उसका प्रयोग करते हैं। मुक्ति प्राप्ति यानी मुझे प्राप्त करने में बाधक सभी पापों से

तुझे मुक्त कर दूँगा। मुझ पर विश्वास रख एवं शोक मत कर। इस श्लोक में चरम मंत्र का रहस्य बताया गया है। गीता के **18** वें अध्याय का **66**वां श्लोक '**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**' को ही चरम मंत्र कहते हैं। युद्ध क्षेत्र में अर्जुन कर्म एवं ज्ञान के विषम द्वंद की स्थिति में पड़ गये थे। भगवान ने इन्हें कर्म एवं ज्ञान को भक्ति में समाहित करने का उपाय बताया। विशेष ज्ञान से ही भक्ति की प्राप्ति होती है परन्तु इससे भी अर्जुन के द्वंद का नाश न होते देख भगवान ने उन्हें 'प्रपत्ति' के मार्ग पर अडिग रहने को कहा क्योंकि प्रारम्भ में ही अर्जुन ने '**शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्**' कहा था यानी भगवान की प्रपत्ति शरणागति कर ली थी (गीता **2**।**7**)। भगवान ने अंत में कहा 'सभी धर्मों के संपादन से प्राप्त फल को मुझे समर्पित कर दो यानी सभी तृष्णा एवं फल प्राप्ति की कामना का त्याग करते हुए समस्त धार्मिक कृत्य करना ही प्रपत्ति का अटल मार्ग है। तू शोक मत कर मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूँगा।'

निश्चित त्वदधीनतां मयि सदा कर्माद्युपायान हरे। कर्तुं त्युक्तुमपि प्रपत्तुमनलं सीदामि दुःखाकुलः।

एतत् ज्ञानमुपेयुषो मम पुनः सर्वापराधक्षयं। कर्तासीति दृढ़ोऽस्मि ते तु चरमं वाक्यं स्मरन् सारथेः ।।8

इस श्लोक में श्रीपराशर भट्ट स्वयं के रूप में एक भक्त की स्थिति को उद्भासित करते हैं। 'हे हरि ! आपके अधीन रहते हुए भी हम न तो आपके बताये गये मार्ग का अनुसरण कर सकता हूँ और न उनका त्याग ही कर सकता हूँ। यहाँ तक कि हम 'प्रपत्ति' भी नहीं कर सकते हैं। हमारा क्या होगा यही सोंचकर मैं शोक से कॉप रहा हूँ। आपके द्वारा बोले गये चरम वाक्य ही हमें सांत्वाना देते हैं। आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे समस्त पापों का क्षय कर देंगे। अतः मुझे कोई चिन्ता एवं शोक नहीं है।' '**अकारमन्त्राकारार्थ देह नेतृत्व मित्यपि। ईशानामथ मत्प्राप्ति निश्चित्य त्वदधीनते।**'

5।14 श्रीस्वामी जी का महाप्रयाण

115 वर्ष की लम्बी अवधि वाले जीवन के अंतम तीन वर्ष श्रीस्वामी जी ने हुलासगंज 'श्रीलक्ष्मी नारायण' मन्दिर में ही भगवान के लीला गुणों के स्मरण

करने में बिताये। श्रीस्वामी जी महाराज नम्माळवार के अंश से ही अवरित थे। जिस कमरे में हुलासगंज आश्रम में ये रहते थे उस कमरे के ठीक सामने

दरवाजा पर एक वकुलावृक्ष विद्यमान था। यह वृक्ष आज भी है। नम्माळवार की स्तुति में "**माता पिता .... आद्यस्य नः कुलपतेर्वकुलाभिरामं श्रीमदंघ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना"** में वकुला यानी मौलसिरि के फूल की सुन्दरता का संदर्भ है। जैसे नम्माळवार को वकुला पुष्प से प्रेम था वैसे ही श्रीस्वामी जी की सेवा में हुलासगंज में भी वकुलावृक्ष उपस्थित हो गया था। नम्माळवार जब धरा धाम पर आये तो ये अपनी ऑखे बन्द किये रहते थे। जब इनके माता पिता इन्हें आदिनाथ के मंदिर ले गये तो इन्होंने ऑखें खोल दीं। आदिनाथ के सामने से हटे और मंदिर से बाहर आये तो इन्होंने पुनः ऑखें बंद कर लीं। न ये ऑख खोलते थे न दूध ही पीते थे। कोई उपाय न देखकर इनके माता पिता ने इन्हें वहीं आदिनाथ के मंदिर में छोड़ दिया। ये रेंगते हुए पास के इमली वृक्ष के खोंड़र में जाकर विराज गये। नित्य इनको माता लक्ष्मी आकर दूध पिलाती थीं। इसी योगमुद्रा में **36** वर्ष तक ये धरा धाम पर विराजे और तिरूवायमोळी की अनुपम रचना से भक्तों का कल्याण किया। नम्माळवार के स्वरूप में अल्प अवधि तक रहने के कारण माता पिता पत्नी पुत्र एवं गुरू के कैंकर्य के दायित्व को पूरा करने से ये वंचित रह गये थे। इसी कारण से पुनः ये स्वामी पराङ्कुशाचार्य होकर **115** वर्ष की दीर्घ अवधि में सभी पारिवारिक दायित्वों का **36** वर्ष की अवस्था तक पूरा करते हुए वाद की लंबी शेष अवधि भगवदगुणगान के प्रचार प्रसार में बिताया।

हुलासगंज की अंतिम तीन वर्षो की अवधि में प्रायः ये ऑखें बंद किये रहते थे। जब भगवदप्रसाद सामने आये तो ऑखे खोल उसे ग्रहण करते थे। इस संदर्भ में तिरूप्पान आळवार यानी मुनिवाहन स्वामी का प्रबंध 'अमलनादिपिरान' स्मरणीय है। कावेरी के किनारे से ही मुनिवाहन स्वामी भगवान रंगनाथ को अपने वाद्ययंत्र से स्तुति समर्पित करते थे। एकवार रंगनाथ भगवान की प्रेरणा से उनके प्रियतम अर्चक ने इन्हें अपने कंधे पर

उठाकर मंदिर में भगवान का दर्शन कराया। भगवान की मोहक छटा के दर्श न से उद्‌भूत हो इन्होंने 'अमलनादिपिरान' प्रबंध की सद्यः रचना से रंगनाथ भगवान की स्तुति की तथा इसके अंतिम पद में जो इन्होंने कहा उसका हिन्दी रूपान्तरण निम्नवत है।

हर्षित देखा श्रीरंग प्रभु को एक ही नाथ हैं जगतन के।
हृदय चुराया आज प्रभु ने सुन्दर शरीर नीलेगिरि के।।
बालक बन प्रभु गोपवंश में चोर बने मृदु माखन के।
मूँद रखब इन नयनन को नहीं देखब कुछ जगतन के।।

मुनिवाहन स्वामी की तरह दिव्य भाव विभोर होकर श्रीस्वामी जी भी ऑखे बंद किये रहते थे। मीरा भी कहती थीं **'बसो रे मेरे नयनन में नन्दलाल' 'और सखी पिया सोकर खोयी मैं अपना पिया जागी गंवायो'**।

अपने महाप्रयाण के तीन दिन पूर्व अपने भक्तों को 'श्रीमन्नारायण' का कीर्तन करने को कहा। द्वयमंत्र की अनुगुंज में स्वामी जी स्तोत्र रत्न के पद **21** गुनगुनाते रहे।

नमो नमो वाङ्मनसाति भूमये। नमो नमो वाङ्मनसैक भूमये।।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये।नमो नमो दयैक सिन्धवे।।

अंततः फरवरी **10** ई सन् **1980** तदनुसार वि संवत् **2036** फाल्गुन कृष्ण नवमी रविवार अनुराधा नक्षत्र मकर के सूर्य की गोधूलि वेला में दिव्यपार्षदों के साथ भगवान स्वयं आकर श्रीस्वामी जी महाराज को वैकुण्ठ लोक ले गये। श्रीस्वामी जी एक पद गुनगुनाया करते थे ।

"हमरा मोल लेलन रघुराई। कीमत में वैकुण्ठ देलन अपना लेलन बनाई।"

नम्माळवार भी वैकुण्ठ भगवान के साथ गये थे। भगवान को आकर नम्माळवार को स्वयं ले जाना पड़ा था। इसका साक्षात प्रमाण तिरूवायमौळी का अंतिम **20** पासुर है जिसके **10** पासुरों के भाव हिन्दी में यहॉ उद्धृत किया जा रहे हैं। 'तिरूवायमोळी' दसवां शतक का नौवां दशक ः **10।09** ः शुऴिवशुम्बु

वैकुंठ के मार्ग का विवरण

आकाश मे बादल शुभ संकेत देते कीड़ारत थे। सागर की लहरें

ताली बजाकर नाच रही थीं। नारायण के चिरप्रशंसित भक्त को घर आते देख सात महादेश उपहार से प्रसन्न था। **3979।3755**

नारायण के भक्त को देखकर मेघ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ण पात्र भर रहे थे। खड़ा होकर सागर ने प्रसन्नता से स्वागत किया।पर्वत ने ध्वज बनाये एवं सारा विश्व पूजा में झुक गया। **3980।3756**

धरा मापने वाले प्रभु के भक्त को देखकर उनलोगों ने पुष्पवर्षा की सुगंधित बत्ती जलायी एवं पूजा अर्पित की। चारण दोनो ओर खड़े होकर जयजयकार करते हुए बोल रहे थे 'वैकुंठ का यह मार्ग है'।**3981।3757**

मार्ग पर स्वर्गिकों ने विश्राम स्थल बना रखे थे। चांद एवं सूर्य मार्ग को प्रकाशित कर रहे थे। अमृतमय तुलसी धारण करने वाले माधव के भक्त के सम्मान में बजते नगाड़े सागर की तरह गरज रहे थे। **3982।3758**

देवगन देखने के लिये बाहर आकर अपना स्थान प्रभु के भक्त को दे रहे थे। किन्नर एवं गुरूदास गीत गा रहे थे जबकि वैदिक ऋषिगन अग्नि होम कर रहे थे। **3983।3759**

अग्नि होम की सुगंधि व्याप्त हो गयी थी। वाद्य यंत्र की ध्वनि एवं शंख नाद आकाश में गूंज रहे थे। मत्स्य नयना नारियों ने हर्षनाद करते हुए कहा 'हे भक्त ! आकाश पर शासन करो'। **3984।3760**

नारियां प्रभु के बंधुआ सेवक को देखकर हर्षनाद कर रही थीं। सागर में शयन करने वाले दिव्य मुकुट धारी गोपाल तथा कुडन्दै के प्रभु के भक्त की घर वापसी यात्रा पर आगवानी में मरूत एवं वसु पूजा अर्पित कर रहे थे। **3985।3761**

देवगन समूह में पंक्तिवद्ध हो कह रहे थे 'ये गोविन्द के बंधुआ सेवक हैं'। भक्त की झांकी पाने के लिये तब गोपुरम की ऊंची दीवार पर चढ़ गये। माधव के स्वरूप में भक्तने वैकुंठ में प्रेवश किया। **3986।3762**

भक्त के प्रवेश द्वार पर आते ही चारणजन आनंदमग्न हो गये। देवगन झुककर अपना स्थान समर्पित कर रहे थे क्योंकि वैकुंठ में जाना हर मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। **3987।3763**

एकतरफ भक्त के चरण धोने में वैदिक ऋषिगण अपना सौभाग्य मान रहे थे तो दूसरी ओर चंद्रमुखी नारियां पुमा कुंभ दीपक तथा केशर युक्त जल से स्वागत में तल्लीन थीं। **3988।3764**

रत्न जड़ित मंडप में भक्त प्रभु के समक्ष खड़ा होकर चिरआनन्द में मग्न था। कुरूगुर शडगोपन के हजार पद से लिया गया यह दसक जो याद कर लेंगे वे सिद्धचारण बन जायेंगे। **3989।3765**

स्वामी जी कईलन पुकार धावत जगत्पति अईलन ये।
गरूड़ बईठयलन संगही आपन धाम ले गईलन ये।।

श्रीमत्पराङ्कुशगुरूं चरणौ शरणम् प्रपद्ये।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

छठा अध्याय ः परमपद प्राप्त परमप्रिय विरक्त शिष्य पंडित श्री गदाधर जी

रामचन्द्रसुतो धीरः प्रज्ञावानश्च दिवाकरः।
पराङ्कुशगुरू भक्तः स्मरतव्यो गदाधरः।।

श्रीरामचन्द्र शर्मा जी के धीर, सूर्य के समान प्रज्ञातेज वाले पुत्र एवं श्रीपराङ्कुश गुरू के भक्त पंडित गदाधर जी का स्मरण करता हूँ।

6।1 विद्या प्राप्ति का महत्व

स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने जीवन में विद्या प्राप्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। मानस में श्रीतुलसीदासजी ने लिखा है
'नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद् रामायणेनिगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'
'शास्त्रसुचिंतित पुनि पुनि देखिये'।

शास्त्र पुराणादि के गहन अध्ययन एवं बार बार उनके अवलोकन की आवश्यकता रहती है। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने सरौती में श्रीराम पुस्तकालय की उचित व्यवस्था की थी। श्रीस्वामी जी का निजी पुस्तकालय भी दर्जन भर बड़ी बड़ी आलमारियों के पुस्तक संग्रह से बना था। श्रीमद्भागवत रामायण आयुर्वेद ज्योतिष तथा अन्य श्रीवैष्णव मत से सम्वन्धित प्रकाशन यहाँ अवश्य उपलब्ध रहते थे। कांचीपुरम के श्री अण्णंगराचार्य दक्षिण भारत के ख्यातिलब्ध समकालीन विद्वान थे। श्रीस्वामी जी कांचीपुरम में श्रीवरदराज भगवान के दर्शन हेतु जब भी जाते थे तो उनकी सभी संस्कृत में प्रकाशित रचनाओं को अवश्य प्राप्त कर लेते थे। श्री अण्णंगराचार्य से संपादित 'वैदिक मनोहरा' नामक संस्कृत की पत्रिका सरौती में नियमितरूप से आती थी। इसके अतिरिक्त अन्य संग्रह करने योग्य बम्वई के 'वेंकटेश्वर प्रकाशन' तथा वारणसी के 'चौखम्वा' से प्रकाशित पुस्तकों का संग्रह आज भी श्रीस्वामीजी के आलमारियों में विराजमान हैं।

विद्या प्राप्ति के लिये श्रीस्वामी जी ने संस्कृत विद्यालयों की स्थापना की। बाहर से योग्य अध्यापकों को बुलाकर विद्या दान की उचित व्यवस्था में सतत प्रयत्नशील रहा करते थे। गाँव गाँव में स्वयं जाते तथा ग्रामीणों से एक बालक की माँग करते। विद्यालयों में गुरूकुल जैसी भोजन वस्त्र आवास आदि की निःशुल्क उचित व्यवस्था के साथ संस्कृत शिक्षा प्रदान किये जाते थे।

गुरूकुल में चौबीसो घंटे सोते जागते विद्यार्थी को शिक्षा तथा जीवन में सदाचार का प्रशिक्षण मिलते रहता है। प्रातः सूर्योदय से पूर्व जागकर शौच स्नान आदि नित्यक्रिया से निवृत्त हो श्रीवैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करके संध्या गायत्री करना दैनिक नियमवाली का आवश्यक अंग होता है। इसतरह से विद्यार्थी अपने गुरू से पहले तैयार होकर उनकी सेवा में लग जाता है तथा गुरू जब अपने भगवान की सेवा करते हैं तो उनके लिये फूल तुलसी चंदन आदि संग्रह करके गुरू की सहायता करता है। गुरू से सदाचरण के साथ साथ भगवान के नैवेद्य हेतु भोजन पकाना आादि भी वह सीखते रहता है। गुरू जब आयुर्वेदिक पद्धति से दवायें तैयार करते हैं तो सेवा में लगा विद्यार्थी भी स्वयंमेव आयुर्वेद के रहस्यों को जान लेता है। इसीतरह से वह पंचाग देखना तथा ज्योतिष की अन्य बातों को गुरू से व्यवहारिक ज्ञान के रूप में सीख लेता है। गुरू जब कहीं कर्मकाण्ड कराने जाते हैं तो साथ का विद्यार्थी श्राद्ध विवाह आदि संपन्न कराने की पद्धतियों में निष्णात हो जाता है। संगति से ही उसे संस्कृत के मंत्रों का उच्चारण सीखने तथा पद्धति पुस्तकों के अवलोकन का सुअवसर मिलते रहता है। संध्या काल में पुनः वह गायत्री आदि से निवृत्त हो गुरू की सेवा रत रहता है। संध्या के पश्चात रात्रि में कथा तथा प्रवचन के माध्यम से गुरू शास्त्रपुराणादि के प्रकरणों से विद्यार्थी को स्वयंमेव अवगत कराते रहते हैं। इस तरह से गुरूकुल में विद्या दान की परम्परा का निर्वाह होता है। पाश्चात्य पद्धति में शिक्षा तो मात्र दिन में निर्धारित कक्षा की अवधि में ही दी जाती है। कक्षा की अवधि के बाद गुरू तथा विद्यार्थी में कोई सम्बन्ध रहता ही नहीं है। फलस्वरूप विद्यार्थी को सदाचार तथा अन्य व्यवहारिक ज्ञान से वंचित रहना पड़ता है।

6।2 पाखंडी ब्राह्मणों का विरोध

वर्णाश्रम की व्यवस्था धर्मव्यवस्था कही जाती है तथा यह हिन्दूधर्म का आधार है। इसमें समाज के अर्थव्यवस्था से लेकर आध्यात्मिक प्रगति के सर्वांगीण विकास के रहस्य समाहित हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय के तेरहवें श्लोक में स्वयं कहा है ः **"चातुवर्ण्य मयासृष्टं गुणकर्म विभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।"** समय एवं परिस्थिति वश शिक्षा की कमी के कारण समाज कुरूतियों का घर हो गया। केवल जन्ममात्र से अपने को ब्राह्मण मानने वाले अपढ़ रहते हुए भी अपने को पुजवाते रहे। ब्राह्मणवाद ठगी का पर्याय हो गया। यज्ञादि में पशुओं की बली शास्त्र विरूद्ध होने पर भी ब्राह्मणों ने इसे जीभतुष्टि का साधन बना लिया था। जयदेव के दशावतार की पंक्ति

"निन्दसि यज्ञ विधेरहह श्रुतिजातम ।
सदय हृदय दर्शित पशुघातम।
केशव धृतबुद्ध शरीर जय जगदीश हरे ।।"

इसी कुरीति का स्मरण कराते हैं। फलस्वरूप आत्मगौरव वाले बाभन् त्यागी सरयूपारीण तथा भूमिहार आदि ब्राह्मण अपने को पूजा एवं ठगी से अलग कर कृषि आदि कार्य में लग गये। स्वामीसहजानन्द सरस्वति बिहार तथा उत्तरप्रदेश में इस तरह के ब्राह्मणवाद के विरोध में मुखर हो चुके थे। बाभन भूमिहार ब्राह्मण इनके साथ हुए तथा जन्मना अपढ़ ब्राह्मणों के विरोध में आन्दोलन तीव्रतर हो गया।

श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी ने भी जनमानस को झकझोरा तथा उन्हें शिक्षित होने के लिये जागृत करने लगे। संस्कृत विद्यालयों की स्थापना से लोग शिक्षित होकर जागृत होने लगे तथा अपने घर गॉव में अपढ़ ब्राह्मणों का बहिष्कार करने लगे। शास्त्रीय विधि से कर्मकाण्ड संपन्न कराने हेतु श्रीसहजानन्द सरस्वति प्रणीत 'कर्मकलाप' पुस्तक के अतिरिक्त श्रीपराङ्कुशाचार्य ने भी 'ब्रह्ममेधसंस्कार नारायणवलि' तथा अन्य पद्धति पुस्तकों का प्रणयन किया। शास्त्रीय रीति से सुलभ होने के कारण श्रीस्वामी जी की पद्धति से कर्मकाण्ड संपन्न होने लगे तथा पाखंडी ब्राह्मणों का बहिष्कार हुआ। पाखंडी

लोग श्रीवैष्णवों से वैरभाव रखने लगे। ओड़बिगहा में एक सज्जन ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक लगाकर निकले तो पाखंडियों ने जूता से तिलक को बलात मिटाया। जब श्रीस्वामी जी महाराज उस क्षेत्र में जाते थे और नाव आदि पर चढ़कर पार करते थे तो पाखंडी लोग नाव को धुलवाते थे। जिस स्थान पर वे विराजते थे उस स्थान को धुलवाते थे। ऐसा था पाखंड का ताण्डव। पाखंडियों की शास्त्रिय अनभिज्ञता के कुछ अनोखे उदाहरण निम्नवत हैं।

उदाहरण 1 ः एक बाबाजी अपढ़ थे तथा पंचाग देखने के योग्य नहीं थे। किसी चतुर ब्राह्मण ने पूर्णिमा एवं अमावस्या के चंद्रमा को देखकर ही तिथियों के निर्धारण के लिये उन्हें सिखा दिया था। इस तरह से वे **15** लाठियों को एक घर के एक कोना में रखते थे। रात भर अंधेरा रहने वाला अमावस्या को देखकर एक एक दिन एक एक लाठी एक कोना से हटाकर दूसरे कोना में रखते थे तथा हटाये हुए लाठियों की गिनती से वे तिथि का ज्ञान अपने यजमान को कराते थे परन्तु इस बात को गुप्त रखते थे और जब कोई यजमान एकादशी तिथि की जानकारी के लिये आता था तो चुपचाप घर के भीतर जाकर लाठी गिनकर बताते थे। एकबार उनकी पत्नी ने नाराज होकर दो कोना में अलग अलग रखी लाठियों को समेटकर एक कोना में कर दी। संयोग से एक यजमान एकादशी तिथि की जानकारी के लिये बाबाजी से जिज्ञासा प्रकट किये। बाबाजी जब घर में गये तो सब लाठियों को एकजगह देखकर बहुत ही निराश हुए तथा बाहर आकर यजमान को बताया कि आज तो 'घमलौर' नामक बहुत ही विचित्र तिथि का भोग चल रहा है। यह था समाज के द्वारा पूजित कथित पाखंडी ब्राह्मणों का शास्त्रिय ज्ञान का स्तर !

उदाहरण 2 ः

पाखंडियों का एक और उदाहरण भी देखने लायक है। गॉव में जब कोई बाराती आती थी तो वरपक्ष तथा कन्यापक्ष के पंडितों के बीच धुंआपानी के रस्म के बाद शास्त्रार्थ होता था। एक गॉव में बारात आयी। वरपक्ष के पंडित अपढ़ थे परन्तु उन्होंने **''खट सर धम्म म्में''** सुनने में संस्कृत जैसे सूत्र की

व्याख्या कन्या पक्ष के पंडित को करने को कहा। दूसरे पक्ष वाले ही वैसे ही अपढ़ थे। दोनों पक्षों में अनर्गल खूब हंगामा मचा। इस तरह की प्रथा का मुख्य उद्देश्य लोगों को कुछ शास्त्रिय तत्वों से अवगत कराने का था परन्तु पाखंडियों के कारण यह एक मनोरंजन का साधन बन गया था। कहीं कहीं तो मूर्खता वश दोनों पक्षों में तनातनी की स्थितितक आ जाती थी। स्थिति शांत हुई लोगों को भोजन के लिये निमंत्रित किया गया। बाद में वरपक्ष के पंडित का रहस्य खुला। एक बार पंडित जी अपने दरवाजे के बाहर की झोपड़ी में बैठे थे। झोपड़ी के छप्पर पर भतुआ के फल बड़े हो गये थे। उनकी बकरी आयी और लत्तर का जड़ दांत से काटकर खींचने लगी। दांत से कटने के कारण 'खट' की आवाज हुई। जब बकरी लत्तर को दांत से पकड़ कर खींच रही थी तो 'सर सर' की आवाज हो रही थी। एक बड़ा सा भतुआ कटे हुए लत्तर के साथ धम्म से बकरी के ऊपर गिर गयी। बकरी 'में' करके मर गयी। चतुर चालाक पंडित जी ने "खट सर धम्म में" को एक सूत्र बना लिया। इस तरह से शास्त्र के ज्ञान से दूर धूर्त लोग परम पुनीत ब्राह्मणत्व को मात्र एक जीविका का साधन बना लिये थे और शिक्षा की कमी के कारण यजमान सामाजिक परम्परा को अंधविश्वास के साथ निभा रहे थे।

श्रीस्वामी जी का मुख्य उद्देश्य लोगों को ब्राह्मणत्व की सच्चाई से अवगत कराना था। सात्विक ब्राह्मणत्व से कोई भी व्यक्ति धर्म आत्मा एवं परमात्मा के सही स्वरूप से अवगत होता है। स्वामी सहजानन्द सरस्वती का जीवनकाल **28** फरवरी ई **1889** से **11** जून ई **1950** तक का था। उनके द्वारा पाखंडी ब्राह्मणों के विरोध में शंखनाद फूंके जाने के पूर्व तक स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी केवल श्रीवैष्णव मत के प्रसार में लगे थे। स्वामी सहजानन्दजी का बहुआयामी व्यक्तित्व था। वे भटके भूमिहार ब्राह्मणों को ब्राह्मणत्व की राह पर वापस लाने के अतिरिक्त बिहार में जमीन्दारों के अत्याचार के विरोध में भी जमींदारी उन्मूलन के लिये आन्दोलन छेड़े हुए थे। वे 'आल इंडिया किसान सभा' के संस्थापक थे तथा ई सन् **1929** से ही जमींदारों के विरोध में सक्रिय थे। परिणामस्वरूप सरकार ने ई सन **1945** में

जमींदारी उन्मूलन कानून का प्रारूप बना लिया था परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ई सन् **1949** में कानून पास हो गया। स्वामी सहजानन्द जी के अथक प्रयास से भूमिहार ब्राह्मण भी जागे तथा मुजफ्फरपुर में लंगट सिंह भूमिहार ब्राह्मण कालेज आदि की स्थापना हुई। यह महाविद्यालय सभी जाति के लिये खुला था परन्तु संस्थापक ने 'भूमिहार ब्राह्मण कालेज' नाम रखकर ब्राह्मण के रूप में भूमिहारों की खोयी गरिमा को पुनः प्राप्त करने हेतु ऐसा किया था।

इस संदर्भ में अयोध्या के 'आनन्द भवनविहारी जी रामकोट' मन्दिर में श्री महावीर शरण नामक भूमिहारब्राह्मण को महंथ बनने के विरोध में रामदुलारे त्रिपाठी ने फैजाबाद कोर्ट में **1962** ई में मुकदमा किया था। फैजाबाद के एडिसनल सिविल जज श्री एस ए अब्बासी ने **1962** ई के मुकदमा नम्बर **22** का फैसला **19** अक्टूबर **1970** को दिया जिसमें भूमिहार ब्राह्मण महंथ को ब्राह्मण होने के कारण महंथ बने रहने को जायज करार दिया। अपने विस्तृत निर्णय में न्यायालय ने भूमिहारब्राह्मण को भी ब्राह्मण ही माना है।

स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी का कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं था इसलिये वे सहजानन्द जी के साथ केवल पाखंडी ब्राह्मणों के आन्दोलन में सक्रियता से साथ दे रहे थे। यद्यपि प्रारम्भ में बिहार के कुछ भूमिहार जमींदारों को स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी से विरोध सहजानन्द जी के साथ देने के कारण था परन्तु बाद में जमींदार लोगों को जब यह बात समझ में आयी कि स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी केवल सात्विक ब्राह्मणत्व की लड़ाई लड़ रहे हैं न कि जमींदारी उन्मूलन का तो वे लोग भी श्रीवैष्णव बनने लगे। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने साफ तौर से यह समझा दिया था कि भूमिहार ब्राह्मण को पाखंडी ब्राह्मणों की तरह यजमनिका के लिये नहीं जागृत किया जा रहा है बल्कि उन्हें ब्राह्मणत्व के द्वारा जड़ जगत्, चेतन आत्मा, तथा सर्वेश्वर परमात्मा के सच्चे स्वरूप की जानकारी होनी चाहिये। अपनी यजमनिका भूमिहार ब्राह्मणों को स्वयं करनी चाहिए न कि पाखंडियों से करानी चाहिए। जब जनमानस में यह बात समझ में आ गयी तो सब के सब स्वामी

श्रीपराङ्कुशाचार्य जी के नतमस्तक हो गये तथा श्रीवैष्णव बनने लगे।

सद्विद्या के प्रसार हेतु श्रीस्वामी जी ने सबसे पहला संस्कृत विद्यालय उसरी खैरा गॉव में ई सन् **1920** में रामनवमी के अवसर पर श्री रामप्रपन्नाचार्य सरौती के संरक्षण में खोला। ग्रामीण समाज के सहृदय व्यक्तियों ने अन्न द्रव्यादि के चन्दे से भरपूर सहायता की। बंभई गॉव के श्री वृजनन्दन बाबू ने विद्यालय के लिये जमीन की उचित व्यवस्था की थी। इस पुनीत कार्य में नित्य लगे रहकर खैरा से तीन कि मी पर अवस्थित कुवड़ी के श्री दिलकेश्वर शर्मा जी ने अपना जीवन ही श्रीस्वामीजी के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। पूर्व में दिलकेश्वर जी श्रीस्वामी जी के कट्टर विरोधी थे परन्तु बाद में इनके सद्चरित्र से प्रभावित हो गये थे। यही बात वृजनन्दन बाबू के साथ भी थी। श्रीवैष्णव बनने के कारण इनके बड़े भाई ने नाराज होकर घर में जुदागी कर इन्हें अलग कर दिया था परन्तु वृजनन्दन बाबू की श्रीस्वामी जी के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति प्रगाढ़ ही होती गयी।

6।3 पंडित श्री गदाधर जी

गॉव गॉव घूमकर श्रीवैष्णवता का प्रचार तथा स्वयं ही कर्मकाण्ड करने कराने के दौरान स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी को तत्कालीन गया जिला के घोसी थानान्तर्गत के गोविन्दपुर सुरदासपुर भीमलपुर ओकरी आदि गॉवों के पास फल्गुनदी की एक शाखा के किनारे पर अवस्थित गाजीपुर गॉव के तुलसीकृत रामचरितमानस मर्मज्ञ श्रीरामचन्द्र शर्मा जी से आत्मवत सम्बन्ध बन गया। इनके तीन पुत्र थे सच्चिदानन्द, सद्गुरूशरण, तथा गिरजु। ई सन् **1920** के आसपास श्रीरामचन्द्रशर्मा जी से श्रीस्वामी जी ने 'सदगुरूशरण' को मॉग लिया तथा उन्हें श्रीवैष्णव पंचसंस्कार पद्धति **"तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्र यागश्च पंचमः"** से दीक्षित करते हुए इनका श्रीवैष्णव नाम 'गदाधर' रखकर सरौती ले आये। श्रीस्वामी जी पारिवारिक आवश्यकताओं पर भी अपने भक्तों की सहायता करते थे तथा इन्होंने अपने आशीर्वाद से श्रीरामचन्द्र शर्मा जी की सबसे छोटी पुत्री 'सकलमति' का विवाह पालीगंज से दक्षिण अवस्थित रघुनाथपुर गाम के प्रपन्न श्रीवैष्णव श्रीराघव जी के साथ ई **1931** में संपन्न

कराया। श्रीराघव जी **1924** ई में श्रीस्वामी जी के समाश्रित हुए थे। श्रीस्वामी जी के वरदहस्त श्री गदाधर जी ने सरौती के पास अवस्थित अरवल हाई स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् संस्कृत शिक्षा प्राप्ति हेतु श्रीगदाधरजी को श्रीस्वामी जी ने विद्यानगरी वाराणसी भेज दिया।

पांच छः वर्षो तक वाराणसी में श्रीगदाधर जी के शिक्षा का कार्य कम चला तथा इसीबीच वे श्वास कास की वीमारी से ग्रस्त हो गये। श्रीस्वामी जी ने स्वास्थ्यलाभ हेतु इन्हें सरौती बुला लिया तथा स्वनिर्मित आयुर्वेदिक औषधियों के उपचार से श्रीगदाधर जी स्वस्थ हो गये। तत्पश्चात् श्रीस्वामी जी ने इन्हें खैरा विद्यालय की व्यवस्था का संरक्षक तथा प्राचार्य अध्यापक बनाकर खैरा की जिम्मेदारी दे दी। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने से खैरा में बाहर से अनेकों योग्य शिक्षकों की नियुक्ति हुई। व्याकरण मीमांसा के अतिरिक्त आयुर्वेद ज्योतिष आदि की पढ़ाई सुचारू रूप से चलने लगी। खैरा में श्रीगदाधर जी के तत्कालीन सहयोगी शिक्षक गण थे ः श्री तुलाकृष्ण जी दरभंगा, पंडित श्री रामेश्वर झा उर्फ योगी जी परसा, श्रीछविनाथ पाण्डेय, श्री रामवृक्ष शर्मा भीमलपुर आदि। सैंकड़ो विद्यार्थी शिक्षित होकर निकलने लगे तथा समाज के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक स्तर को सुदृढ़ करने लगे। इससे समाज में आत्मसंतोष का संचार हुआ तथा लोगों का आत्मविश्वास बढ़ा।

अनेक गॉवों की तरह रघुनाथपुर से भी श्रीराघव जी ने इस कार्य में तन मन धन से सहयोग किया तथा रघुनाथपुर से 'रामनन्दन' नामक एक बालक को खैरा पढ़ने हेतु ले आये। यही बालक बाद में पंडित श्री रामनन्दन शर्मा जी के नाम से विख्यात हुए तथा श्रीस्वामी जी के एक सबल अंग के रूप में कर्मकाण्ड ज्योतिष तथा आयुर्वेद उपचार में ख्यातिलब्ध हो गये। समयानुसार गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर रघुनाथपुर गॉव के नवनिर्मित श्रीदामोदर उच्चविद्यालय में श्रीरामनन्दन शर्मा ने दीर्घकाल तक एक कुशल संस्कृत शिक्षक के रूप में अध्यापन कार्य किया। श्रीस्वामी जी द्वारा प्रकाशित अनेको धार्मिक पुस्तकों का आप कुशलतापूर्वक पूफ रीडिंग भी करते थे। श्रीस्वामी जी के महाप्रयाण

के बाद ई सन् **1997** में श्रीस्वामी जी द्वारा संग्रहित "अर्चिरादि एवं परमपद दर्शन - दिग्दर्शन" नामक पुस्तक को प्रकाशित कराया।

खैरा विद्यालय में प्रत्येक वर्ष वार्षिकोत्सव मनाया जाता था। एक वार्षिकोत्सव में धरहरा स्टेट के प्रतिष्ठित श्री रजनधारी बाबू को आमंत्रित किया गया। विद्यालय की व्यवस्था एवं संचालन से प्रसन्न होकर उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा "एक श्रीस्वामी जी ने सैंकड़ो विद्यार्थियों का जीवन सुधारा है। ये विद्यार्थी भी अगर उतनी ही संख्या को कटिवद्ध होकर शिक्षित करें तो बिहार प्रान्त क्या संपूर्ण देश पुनः सद्विद्या से आलोकित होकर अपनी जगदगुरू की प्राचीन गरिमा को प्राप्त कर लेगा"।

संयोगवश कुछ दुष्टप्रकृति के लोग खैरा में अवरोध उत्पन्न करने लगे और विद्यार्थियों को उकसाने लगे। श्रीगदाधर जी ने स्थिति को बहुत कर्मठता से संभाला तथा पढ़ाई के कार्यक्रम में व्यवधान नहीं होने दिया परन्तु दुष्टलोग इससे बाज नहीं आये और स्थिति को बदतर करने में लग गये। जब श्रीस्वामी जी को यह ज्ञात हुआ तो वे खैरा पहुँचे तथा विद्यालय के संचालन से अपनी व्यवस्था को वापस लेते हुए श्रीगदाधर जी को सरौती बुला लिये। कुछ ही समय में खैरा प्रकरण का पटाक्षेप हो गया तथा अन्ततोगत्वा ई सन् **1935** में विद्यालय बन्द हो गया।

श्रीगदाधर जी श्रीस्वामी जी के एक कर्मठ विद्वान तथा सादा जीवनयापन करने वाले विरक्त शिष्य के रूप में उभरे तथा सरौती के उत्थान में जीवनदानी हो गये। श्रीस्वामीजी की आज्ञा से सरौती में ही शनैः शनैः ये प्रथमा, मध्यमा, तथा शास्त्री की पढ़ाई के लिये सरकार से स्वीकृति प्राप्त कर संस्कृत विद्यालय का कुशलता पूर्वक संचालन करने लगे। एक खादी की धोती एवं सफेद चादर मात्र ही पंडित जी का वस्त्र था। भगवत्कृपा से ये एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले पुरूष थे तथा जो सामने आते थे उनको प्रभावित करने की इनमें अनोखी क्षमता थी। इसी कारण से बम्भई वाले जो शुरू में शैवमतावलंबी थे तथा श्रीस्वामी जी का विरोध करते थे बाद में पंडित जी के व्यक्तितत्व से प्रभावित होकर श्रीस्वामी जी के शिष्य हो गये थे। ओकरी के

सम्भ्रांत जमींदार परिवार तथा घोसी के श्री जगन्नाथ बाबू पंडित जी को बहुत ही आदर की दृष्टि से देखते थे।

ब्राह्मणों की कुरूतियों के विरोध में श्रीगदाधर जी मुखर अग्रणी के रूप में सक्रिय थे। समाज सुधार आंदोलन के अग्रणी होने के कारण एक बार ओकरी के आसपास के पाखंडी ब्राह्मणों ने इनकी हत्या का षड़यंत्र भी रचा परन्तु गाजीपुर के ही कुछ स्नेही ब्राह्मणों के विरोध के कारण पंडित जी का बालबांका भी नहीं हुआ।

स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी के पाखंडी ब्राह्मणों की यजमनिका से मुक्त कराने के कार्य में श्री गदाधर जी का बहुत ही योगदान रहा। जमींदारों को वस्तु स्थिति से अवगत कराने में इनकी अमूल्य भूमिका भी रही। इसीलिये ओकरी तथा घोसी के लब्धप्रतिष्ठ जमींदार परिवार श्रीगदाधर जी का बहुत ही आदर करते थे।

घोसी के जगन्नाथ बाबू ने घोसी में एक विद्यालय खोला तथा इसके प्रारंभिक संचालन के लिये इन्होंने श्रीगदाधर जी को निमन्त्रित किया। सरौती स्वामीजी की सहमति से श्रीगदाधर जी घोसी चले गये तथा विद्यालय की स्वीकृति प्राप्त कराके कुछ दिन सम्यक संचालन कर जगन्नाथ बाबू के साथ पटना आ गये। पटना में ये नवलकिशोर रोड के घोसी कोठी में जगन्नाथ बाबू के साथ ही रहते थे। एक ही चौका था तथा जगन्नाथ बाबू भी कुशल स्वयंपाकी थे। यहाँ आयुर्वेद पर बहुत काम हुआ। अनेकों आयुर्वेदिक दवाये बनी तथा प्रकाशन हेतु एक पुस्तक का प्रारूप भी तैयार हुआ। जगन्नाथ बाबू उस समय विहार बैंक के चेयरमैन थे। इन्होंने श्रीगदाधर जी को सालिमपुर अहरा में चार कट्ठा जमीन पर बना बनाया बंगला भी उपलब्ध कराया जिसका मूल्य रू **2500** था जिसमें से श्रीगदाधर जी ने रू **1600** का भुगतान कर दिया था। इसका नाम श्रीनिवास आश्रम था तथा यहाँ बहुत दिनों तक छात्रावास चलता था जिसमें पटना संस्कृत विद्यालय एवं आयुर्वेदिक महाविद्यालय के छात्र निःशुल्क रहते थे।

दुर्भाग्यवश ई सन् **1942** में **36** वर्षीय श्रीगदाधर जी का आकस्मिक

निधन हो गया। जगन्नाथ बाबू ने सरौती से भी संपर्क कर बाकी पैसे का भुगतान कर श्रीनिवास मठ की रजिस्ट्री के लिये कहा परन्तु कोई अभिरूचि न देखने पर उन्होंने श्रीगदाधर जी के गाजीपुर के परिवार से सम्पर्क किया। श्रीगदाधर जी के परिवार के भतीजा श्रीराधावल्लभ शर्मा जी पुलिस के एक अधिकारी थे। उन्होंने बाकी पैसे का भुगतान कर श्रीनिवास आश्रम की रजिस्ट्रि करा ली।

सरौती स्वामी जो को श्री गदाधर जी के आकस्मिक निधन से बहुत ही हार्दिक दुःख हुआ। श्रीस्वामी जी अपने सरौती प्रकोष्ठ से तीन चार दिन तक बाहर नहीं आये। श्रीगदाधर जी को ये सरौती के सुयोग्य उत्तराधिकारी के रूप में देखते थे। जब पंडित श्री गदाधरजी का परमपद हुआ उस समय श्री स्वामी जी की अवस्था **77** वर्ष की थी परन्तु श्रीस्वामीजी पूर्णतया स्वस्थ थे तथा आवागमन के लिये मुख्यतया अपना निजी घोड़े की सवारी का ही उपयोग करते थे। श्रीस्वामी जी का अनुकूल स्वास्थ्य रहने पर भी श्रीगदाधर जी उनकी बढ़ती उम्र का बहुत ही ध्यान रखते थे। शौच किया के लिये श्रीस्वामी जी को दूर नदी की ओर जाना उनको पसंद नहीं था अतः उन्होंने श्रीस्वामी जी के लिये ठाकुरवारी से पार्श्ववर्ती दक्षिण तरफ वाली हाता में ही एक शौचालय का निर्माण भी कराया था।

एक बार सरौती में कांचीपुरम से प्रतिवादभयंकर के श्रीगादी स्वामी जी का आगमन हुआ था। श्रीगादी स्वामी जी ने संस्कृत में प्रवचन किया था तथा श्रीगदाधर जी ने दुभाषिया की तरह काम करते हुए साथ साथ उसे हिन्दी में सुनाते जा रहे थे। इससे प्रसन्न होकर श्रीगादी स्वामी जी ने पंडित श्री गदाधर जी को सार्वजनिक रूप से मंच पर ही चादर ओढ़ाकर सम्मानित किया था। जब कभी श्रीस्वामी जी के साथ श्रीगदाधर जी मध्याह्न काल में प्रसाद प्राप्त करने हेतु चौका की ओर चलते थे तो दोनों विभूतियों के बीच आध्यात्मिक विषय पर गंभीर चर्चा चलने लगती थी तथा दोनों भोजन भूलकर भगवद्विषय चर्चा में ही मग्न रहते थे। पुजारी तथा अन्यलोग घंटो प्रतीक्षा में खड़े रहते थे। ऐसा था श्रीस्वामी जी का श्रीगदाधर जी के प्रति स्नेह **!**

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

सातवां अध्याय ः प्रधान शिष्य

हजारो गॉव के लोग श्रीस्वामी जी के चरणाश्रित हो श्रीवैष्णव बने तथा श्रीस्वामी जी के संरक्षण में हजारों श्रीवैष्णव संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर गृहस्थ जीवन अपनाते हुए अध्यापन आदि कार्य में लग गये। कुछेक शिष्यों ने विरक्त जीवन को चुना एवं श्रीवैष्णव मत के प्रचार प्रसार में जीवन दानी हो गये। श्रीस्वामी जी के शिष्यावली में प्रधान शिष्य स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी (उपनाम स्वामी श्री रूपदेवजी) की गुरूभक्ति तथा जीवनगाथा का संक्षेप में यहॉ उल्लेख किया जा रहा है।

प्रधानशिष्य विरक्त स्वामी श्री रङ्गरामानुजाचार्य जी

7।1।1 स्वामी श्री रङ्गरामानुजाचार्य जी का आविर्भाव एवं शिक्षा

श्रीराजेन्द्रयतीन्द्रपादयुगले सद्भक्तिमानन्वहम्
श्रीकौण्डिन्यकुले पराङ्कुशमुनिर्जातोमहाब्धौविधुः।
तत्पादाश्रित लब्धबोध निखिलं श्रीरङ्गरामानुजम्
श्रीमत्काश्यपवंशजं गुरूवरं भक्त्या सदासंश्रये।।

श्रीकश्यपकुल में प्रादुर्भूत स्वामी श्रीरङ्गरामानुज यानी श्रीरूपदेवजी की भक्ति का आश्रय लेता हूँ जो परमहंस स्वामी राजेन्द्रसूरि जी की भक्ति में प्रवीण पूर्ण चंद्रमा की तरह अवतरित श्रीकौण्डिन्यगोत्रिय स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी के चरणाश्रित होकर समस्त वेदशास्त्र के ज्ञान में निष्णात हुए हैं।

स्वामी श्रीरूपदेव जी का आविर्भाव वि संवत् **1989** आश्विन शुक्ल एकादशी तदनुसार **10** अक्टूबर **1932** को धनिष्ठा नक्षत्र में वर्तमान जिला जहानाबाद के मिर्जापुर गॉव में हुआ है। इनके पिता श्रीरामसेवक शर्मा जी के दो पुत्र हैं ः श्रीविशुनदेव शर्मा एवं श्री रूपदेव जी। गॉव में तीसरी कक्षा तक की पढ़ाई के बाद पारिवारिक परिस्थितिवश पिताश्री के आदेश पर ये खेती एवं गोपालन में पिताजी की सहायता करने में लग गये। दिन में

विश्राम की अवधि में गॉव में ही स्थापित 'स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य पुस्तकालय' से पुस्तकें लेकर पढ़ते रहते थे। पढ़ाई लिखाई के प्रति अभिरूचि देखकर पिताजी ने इन्हें शकुराबाद के उच्चविद्यालय में भेज दिया। वहॉ के प्रध्यानाध्यपक श्री उदितनारायण शर्मा एवं संस्कृत शिक्षक श्री गिरिराज शर्मा की इनपर विशेष कृपा रहती थी।

एक बार छुट्टी के दिनों में जब ये शकुराबाद से गॉव मिर्जापुर आये हुए थे तव गॉव में स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य की कथा चल रही थी। नित्य कथा सुनने में इनकी अभिरूचि देखकर गॉववालों ने स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी से इन्हें शिक्षा प्राप्ति हेतु सरौती ले जाने के लिये प्रार्थना की । करीब **15** वर्ष की अवस्था में ये **82** वर्षीय सरौती स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी से दीक्षित होकर उनके आश्रम सरौती में आ गये। सरौती संस्कृत विद्यालय के छात्र के रूप में प्रथमा मध्यमा उपशास्त्री शास्त्री के उपरान्त व्याकरण एवं न्याय में आचार्य की शिक्षा पूरी की। अलौकिक मेधा के कारण ये व्याकरण एवं न्याय में स्वर्णपदक से सम्मानित हुए। श्री मधुकांत जी से न्याय पढने हेतु दरभंगा जाना पड़ता था। कुछ काल वहॉ रहकर पुनः सरौती आ जाते थे। शिक्षा प्राप्त करने हेतु अन्य विद्वान से कालक्षेप करने के निमित्त श्रीवैष्णवों की सेवा के लिये प्रसिद्ध श्रीकिशोरी जी के पीरमुहानी स्थित आश्रम पटना में भी कुछ काल के लिये ये ठहरा करते थे। तरेत स्थान के यशस्वी एवं न्याय के ख्यातिलब्ध ज्ञाता श्रीप्रसिद्धनारायण शर्मा से भी इन्होंने तरेत में ही रहकर न्याय के गूढ़ तत्वों को समझा था। इसतरह से न्याय में आचार्य की पढ़ाई पूरी हुई थी।

सरौती स्वामी जी की चरण सेवा में रहते हुए श्रीमुख से वेदान्त की महत्ता के वारे सुनकर इन्होंने भी श्रीस्वामी जी से वेदान्त अध्ययन की जिज्ञासा प्रकट की। इनकी अभिरूचि से प्रसन्न होकर स्वामी जी ने इनको उच्चशिक्षा हेतु काशी बाराणसी भेज दिया तथा वहीं से इन्होंने वेदान्त ज्योतिष एवं मीमांसा की शिक्षा पूरी की।

7।1।2 श्रीनीलमेघाचार्य से श्रीवैष्णव दर्शन की शिक्षा

काशी में श्री नीलमेघाचार्य श्रीवैष्णव विशिष्टाद्वैत दर्शन के उद्भट

विद्वान थे तथा बनारस हिन्दुविश्वविद्यालय में वेदान्त विभाग के विभागाध्यक्ष थे। बनारस आने के पूर्व श्री श्रीनीलमेघाचार्य कलकत्ता में बांगड़ प्रेस के लिये श्रीवैष्णवदर्शन एवं वेदान्त की पुस्तकों का अनुवाद किया करते थे। इनका रहन सहन बहुत ही सादा था। एक धोती धारण कर ऊपर से चादर ओढ़े रहते थे। ललाट पर बडगल श्रीवैष्णव उर्ध्वपुण्ड्र चमकते रहता था। प्रायः क्षौरकर्म के कारण सिर पर मात्र शिखा ही दिखती थी। एक बार करपात्री जी के तरफ से श्रीवैष्णवों के विरोध में कुछ बात छपी थी तो श्रीनीलमेघाचार्य ने त्रिदंडी श्रीविष्वकसेनाचार्य की तरफ से एक पुस्तक का प्रणयन कर करपात्री जी को करारा उत्तर दिया था। काशी की विद्वत्तमंडली में इनका बहुत ही आदर सम्मान था। भाषा एवं विषय में बिना किसी अशुद्धि के किसी भी सभा मे धाराप्रवाह संस्कृत बोलकर विद्वानों प्रतिद्वन्दियों को अचंभित एवं श्रोताओं को मुग्ध किये रहते थे।

चौदहवीं सदी में दक्षिणभारत के प्रपन्नश्रीवैष्णव एवं विलक्षण विद्वान श्रीवेदान्त देशिक स्वामी द्वारा समर्थित बडगल श्रीवैष्णव मत के ये समर्थक थे। सरौती स्वामी जी तिंगल मत के श्रीवैष्णव थे अतः तिंगल मतावलम्बी होने के कारण श्रीरूपदेव जी को प्रारंभ में शंका थी कि बडगल समर्थक श्रीनीलमेघाचार्य इनको श्रीवैष्णव विशिष्टाद्वैत दर्शन के अध्ययन हेतु शायद स्वीकार न करें। संयोगवश एक बार तरेत स्थानाधीश स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य जी काशी में पधारे। तरेत स्वामी जी भी श्रीरूपदेव जी पर अत्यंत स्नेह रखते थे अतः उन्होंने इनसे इनकी पढ़ाई लिखाई की जानकारी ली। जव श्रीरूपदेव जी ने श्री नीलमेघाचार्य से श्रीवैष्णवदर्शन पढ़ने की जिज्ञासा प्रकट करते हुए अपनी शंका से भी उनको अवगत कराया तब श्रीस्वामी जी तुरत ही इनको साथ लेकर श्रीनीलमेघाचार्य जी के पास पहुॅच गये। प्रारंभ में श्रीनीलमेघाचार्य जी ने बताया कि तिंगल एवं बडगल में सिद्वान्ततः मतभेद के कारण अच्छा होगा कि ये किसी तिंगल मत के विद्वान से ही श्रीवैष्णव दर्शन पढ़ें। तरेत स्वामी जी ने अनुरोध किया कि आप नीलमेघ हैं और मेघ बिना भेदभाव के पृथ्वी पर जल वर्षाता है। आप कृपा करके अपनी ज्ञान की वर्षा इनपर कीजिये। श्रीनीलमेघाचार्य जी ने श्रीरूपदेव जी को अपना विद्यार्थी स्वीकारते

हुए कुछ आवश्यक नियमों के पालन से इन्हें अवगत कराया ः **1**। नित्य द्वादश तिलक लगाकर आना होगा। **2**। पतिदिन प्रातः बिना अन्न ग्रहण किये फलाहार रहकर ही पढ़ने के लिये आना होगा। पढ़ाई के बाद ही अन्नग्रहण करना होगा। **3**। बडगल परंपरा के पाठ से ही नित्य पढ़ाई प्रारंभ भी होगी तथा समाप्त भी होगी। परंपरा पाठ के समय बारम्बार जमीन पर आठो अंग से लेटकर साष्टांग करना तथा पुनः खड़ा होकर साष्टांग करते रहना होगा। **4**। परंपरा पाठ के बाद ही नित्य पढ़ाई शुरू होगी।

विद्यार्थियों के साथ स्वयं श्रीनीलमेघाचार्य जी भी इन नियमों का पालन करते थे। प्रारंभ के चार छः दिन श्रीरूपदेव जी को शारीरिक कष्ट का अनुभव हुआ परन्तु शीघ्र ही ये इसके अभ्यासी हो गये तथा **1957** से **1962** तक इन्होंने श्रीनीलमेघाचार्य जी से 'रहस्यत्रय सार' 'अधिकरण सारावली' 'न्याय सिद्धान्जन' तथा 'श्रीभाष्य' का अध्ययन किया।

श्रीनीलमेघाचार्य जी एक गृहस्थ वैष्णव परिवार के दो पुत्र एवं एक पुत्री के अभिभावक थे तथा परिवार के भरण पोसन के लिये धन की निरन्तर आवश्यकता पड़ती ही थी। इसी कारण से सरौती स्वामी जी श्रीरूपदेव जी को श्रीनीलमेघाचार्य जी को भुगतान करने हेतु रू **400** प्रतिमाह उपलब्ध करा दिया करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीरूपदेव जी के स्वयं के खर्च के लिये आवश्यक राशि अलग से भेजते रहते थे।

7।1।3 द्वादश तिलक

प्रायः श्रीवैष्णवजन भगवान के बारह प्रसिद्ध नाम से प्रतिदिन अंगविन्यास एवं तुलसी अर्चनादि संपन्न करते हैं ः **1**।केशव **2**।नारायण **3**।माधव **4**।गोविन्द **5**।विष्णु **6**।मधुसूदन **7**।त्रिविकम **8**।वामन **9**।श्रीधर **10**।हृषीकेश **11**।पद्मनाभ **12**।दामोदर। इन्हीं नामों से एक ललाट पर, तीन कंठ पर, एक छाती पर, दो दोनों बाहूमूल पर, तीन पेट पर, एक पीठ पर, एवं एक गर्दन पर कुल **12** ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये जाते हैं। बारहों नाम के प्रत्येक नाम से सम्बन्धित बारह स्थान के लिये नीचे का श्लोक द्रष्टव्य है। अपने दादागुरू परमहंस श्रीराजेन्द्र सूरि जी को निरंतर **12** तिलक

से विभूषित देखा जाता था।

श्रीरामानुज स्वामी ने भी अपने 'नित्यग्रन्थः' पुस्तक के **30** वें सूत्र में **'ऊर्ध्व पुण्ड्रान् तत्तन्मन्त्रेण धारयित्वा'** का उल्लेख किया है। निम्नांकित श्लोक से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक की महत्ता तथा शरीर के बारह सम्बन्धित स्थानों के तिलक का बोध होता है। इसका उल्लेख 'प्रपन्नधर्मसारसमुच्चये अभिगमन प्रकरणम' में मिलता है।

योगो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
भस्मीभवति तत्सर्वम् ऊर्ध्वपुण्ड्रं विनाकृतम्।।

विना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये दान तपस्या होम स्वाध्याय पितृतर्पण एवं योग आदि अगर संपन्न किये गये तो उनके पुण्य भस्म हो जाते हैं यानी पुण्यलाभ नहीं मिलता है।

केशवाद्यैः वासुदेवान्तैः त्रयोदशनामभिः प्रणवादिभिः नमोन्तैः पुण्ड्रान् धारयेत्।
अन्ते वासुदेवद्वादशाक्षरेण मूर्ध्नि विन्यसेत्।
ललाटे केशवं ध्यायेत् नारायणमधोदरे।
वक्षःस्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूवरे।।
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहुके मधुसूदनम्।
त्रिविकमं स्कन्धदेशे वामनं वामपार्श्वके।।
श्रीधरं बाहुमध्ये तु हृषीकेशं तु तद्भुजे।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत्।।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं च मूर्धनि।

7।1।4 बडगल एवं तेंगल

बारहवीं सदी में श्रीरामानुज स्वामी जी ने विशिष्टाद्वैत दर्शन को सुदृढ़ नींव प्रदान की। इनके बाद के अधिकांशतः आचार्य ने इसे जनमानस में लोकप्रिय बनाते हुए श्रीवैष्णव रहस्य मंत्रों की व्याख्या की। चौदहवीं सदी के श्रीपिल्लै लोकाचार्य एवं श्रीवेदान्तदेशिक इस कार्य के प्रकाश पुरूष माने जाते हैं। मोक्ष प्राप्ति के साधन के उपयोग में दोनों आचार्यो में कुछ मतभेद हुए एवं यही मतभेद 'वडगल' एवं 'तेंगल' नाम से जाने गये। श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी के समर्थक को 'वडगल' कहते हैं तथा श्रीपिल्लैलोकाचार्य स्वामी के

समर्थक को 'तेंगल' कहते हैं। 'वडगल' तमिल शब्द है एवं इसका अर्थ है 'उत्तरक्षेत्र' एवं इसीतरह 'तेंगल' का अर्थ है 'दक्षिणक्षेत्र'। तमिलनाडु के दक्षिणक्षेत्रीय श्रीवैष्णव तमिल प्रबन्ध के अनुरागी हैं जबकि उत्तरक्षेत्रीय संस्कृत प्रबन्ध के अनुरागी हैं। श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी जी की कुल **120** रचनाओं में से अधिकांशतः रचनायें संस्कृत में ही हैं तथा कुछ ही मणिप्रवाल में हैं जो संस्कृत एवं तमिल का मिश्रण है। श्रीपिल्लैलोकाचार्य स्वामी के सभी **18** रहस्यग्रंथ तमिल एवं मणिप्रवाल में हैं जबकि उनके अनुवर्ती श्रीमनवाल मामुनि यानी श्रीवरवरमुनि स्वामी तक के तेंगल आचार्य की रचनायें तमिल में हैं तथा अधिकांशतः श्रीपिल्लैलोकाचार्य स्वामी की रचनाओं की तमिल में ही व्याख्या हैं। 'पूर्वाचार्य चरित' अध्याय में तेंगल आचार्यगण के जीवनचरित की झांकी दी गयी है।

शरणागति एवं प्रपत्ति के लिये 'वडगल' मत में आवश्यक शर्त रखे गये हैं। जो ज्ञान एवं भक्ति के एक विशेष स्तर को प्राप्त कर लेता है वही 'शरणागति' का अधिकारी हो सकता है। इस तरह की कोई शर्त 'तेंगल' मत में नहीं है। इसीलिये वडगल के सिद्धान्त को 'मर्कट न्याय' तथा तेंगल के सिद्धान्त को 'मार्जार न्याय' कहते हैं। 'मर्कट न्याय' का तात्पर्य है कि बड़ा बन्दर जब एक जगह से दूसरी जगह भागता फिरता है तब उसका छोटा बच्चा अपने माँ या बाप को दृढ़ता से पकड़ कर रहता है। 'मार्जार न्याय' में जब बड़ी बिल्ली एक जगह से दूसरी जगह जाती है तब वह स्वयं अपने मुँह से अपने बच्चे को पकड़कर ले जाती है। इसका तात्पर्य हुआ कि बन्दर के उदाहरण में बच्चे को भी प्रयत्नशील रहना पड़ता है जबकि बिल्ली के दृष्टान्त में बच्चा पूर्णतया निष्क्रिय रहता है और बच्चे की सुरक्षा का सारा उत्तरदायित्व बड़ी बिल्ली माँ के ही ऊपर रहती है।

'वडगल' कहते हैं कि मोक्षप्राप्ति करने वाले को बन्दर के बच्चे की तरह प्रयत्नशील रहना होगा जबकि 'तेंगल' कहते हैं कि मोक्ष की सारी जिम्मेदारी भगवान पर है जैसे बिल्ली के बच्चे को स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता सारा काम माँ ही करती है। दोनों मतों में यही मुख्यमतभेद है परन्तु अन्य कुछ और

भेद हैं जिनका सार निम्नवत उद्धृत है।

1। 'वडगल' ः बिना कुछ प्रयत्न किये भगवान की कृपा नहीं होती।
'तेंगल' ः भगवान की कृपा निर्हेतुक होती है यानी अपने आप बिना किसी प्रयत्न के होती है।

2। 'वडगल' ः कर्म एवं ज्ञान के बिना भक्ति नहीं हो सकती है।
'तेंगल' ः भक्ति के लिये कर्म एवं ज्ञान की आवश्यकता नहीं है।

3। 'वडगल' ः लक्ष्मीजी भगवान के समान सर्वव्याप्त हैं एवं सदा साथ रहती हैं।
'तेंगल' ः लक्ष्मी जी एक जीव की तरह हैं तथा भगवान के समान नहीं हो सकतीं।

4। 'वडगल' ः जीव को मोक्षप्राप्ति के लिये भगवान की तरह लक्ष्मीजी भी उपाय ही हैं।
'तेंगल' ः जीव के लिये भगवान ही एकमात्र उपाय हो सकते हैं लक्ष्मी जी तो भगवान से संस्तुति मात्र करने वाली हैं इसीलिये लक्ष्मी जी को 'पुरस्कार' कहा जाता है।

5। 'वडगल' ः दूसरे के दुःख को दूर करना ही 'दया' है।
'तेंगल' ः दूसरे के दुःख से दुःखी हो जाना ही 'दया' है।

6। 'वडगल' ः 'भक्ति' 'कर्म' एवं ज्ञान का अभ्यास करने में जो असमर्थ है वही 'आत्मसमर्पण' कर सकता है।
'तेंगल' ः 'आत्मसमर्पण' सभी जीव का अधिकार है चाहे वह भक्ति ज्ञान एवं कर्म करने में समर्थ ही क्यों न हो।

7। 'वडगल' ः असमर्थ ही केवल धर्म का त्याग कर सकते हैं।
'तेंगल' ः जो शरणागति करता है वह चाहे समर्थ हो या असमर्थ धर्म का त्याग कर सकता है।

8। 'वडगल' ः प्रपत्ति करने वाले को अन्य उपाय भी करना होता है।
'तेंगल' ः कोई भी अन्य उपाय मान्य नहीं है।

9। 'वडगल' ः शास्त्रादि के अनुकूल कर्म करते हुए शरणागति करनी है।

'तेंगल' ः शरणागति जो ले लेता है उसे शास्त्रादिकर्म मात्र लोगों के उदाहरण के लिये करना है।

10। 'वडगल' ः मोक्ष का कारण शरणागति है।
'तेंगल' ः मोक्षाधिकारी के लिये शरणागति एक विशेषण है।

11। 'वडगल' ः कभी भी जब प्रायश्चित्त करनी होती है तब शरणागति पुनः करनी होती है।
'तेंगल' ः प्रायश्चित की स्थिति में भी शरणागति दोवारे नहीं की जाती।

12। 'वडगल' ः उत्कृष्ट कोटि का वैष्णव निकृष्ट वैष्णव का अनुयायी न बने।
'तेंगल' ः वैष्णव में आपस में उत्कृष्ट एवं निकृष्ट का कोई भेद नहीं है।

13। 'वडगल' ः जीव में भगवान अणु की तरह व्याप्त रहते हैं।
'तेंगल' ः जीव में भगवान सर्वव्याप्त होकर रहते हैं।

14। 'वडगल' ः कैवल्य की स्थिति विरजा नदी के इस पार में भी है।
'तेंगल' ः कैवल्य की स्थिति विरजा नदी के उस पार में ही है।

15। 'वडगल' ः ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक में नाक पर वाला आसन नहीं होता। श्वेत चंदन अंग्रेजी के 'यू' की तरह होता है तथा बीच में हल्दी चूर्ण रहता है। श्वेत चंदन की आकृति भगवान के एक ही चरण की होती है जिसके बीच में हल्दीचूर्ण 'श्री' लक्ष्मी का प्रतीक है।
'तेंगल' ः ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक में नाक पर आसन रहता है। श्वेत चंदन अंग्रेजी के 'वाई' की तरह होता है तथा दोनों श्वेत भाग भगवान के दोनों चरण के प्रतीक माने जाते हैं। आसन कमल का प्रतीक है जो भगवान के दोनों चरणों को आसन प्रदान करता है। दोनों चरणों के बीच में लाल श्रीचूर्ण लक्ष्मी जी का प्रतीक है।

वडगल आचार्य श्री वेदान्त देशिक स्वामी जीवन **1269** ई से **1370** तक ः

रामानुज दयापात्रं ज्ञानवैराग्य भूषणम् ।
श्रीमदवेंकटनाथार्यम् वन्दे वेदान्तदेशिकम्।।
श्रीमान् वेंकटनाथार्यः कवितार्किककेसरी ।
वेदान्ताचार्यवर्योमे संनिधत्तां सदाहृदि।।

श्री वेदांत देशिक स्वामी का अवतार कांचीपुरम के तुपुल मोहल्ला में कन्या के सूर्य में श्रवण नक्षत्र मे हुआ था। आपके पिताजी का नाम अनंतसूरी था तथा मां का नाम तोतार अम्वा था। आपके पिता आपको 'वेंकटनाथ' कह कर पुकारते थे। आपके मामा ने आपका लालन पालन किया तथा आपको शिक्षा दी। आप भगवान वेङ्कटेश के 'घंटा' के अवतार माने जाते हैं।

वेङ्कटेशावतारोयं तद्घंटांशोऽथवाभवेत् ।
यतीन्द्रांशोऽथवेत्येवं वितर्क्यायास्तु मंगलम्।।

मामा का नाम 'अत्रेय रामानुज' था जो 'अप्पिल्लार' नाम से जाने जाते थे। **20** वर्ष की आयु में ही आप सभी शास्त्रों में पारंगत हो गये तथा कांचीपुरम से दक्षिणपूर्व में **250** कि मी पर अवस्थित बंगाल की खाड़ी समुद्र के किनारे कडलोर नगर के पास के दिव्य देश 'तिरूवहिन्दपुरम' चले आये और तीस वर्षो तक यह स्थान वेदांत देशिक स्वामी का साधना स्थल रहा है। यहीं पर गरूड़ जी की सिद्धि से आपको हयग्रीव भगवान की प्रतिमा मिली। पास के औषधगिरी पर श्रीलक्ष्मी हयग्रीव विराजमान हैं। विजय नगर के राजा के प्रधान मंत्री विद्यारण्य के आप समकालीन थे। उन्होंने आपको विजय नगर का प्रधान मंत्री बनाना चाहा था लेकिन आपने इसे अस्वीकार करते हुए 'वैराग्य पंचकम' की रचना की तथा उसकी एक प्रति विद्यारण्य को भेज दी।

'तन्का' 'द्रमिड़'. 'गुह्यदेव' तथा 'बोधायन' द्वारा समर्थित विशिष्टाद्वैत सिद्धांत को आलवंदार श्रीयामुनाचार्य तथा श्रीरामानुज ने संवर्धित किया। श्री वेदांत देशिक ने इसकी जड़ को मजवूत करने का काम बहुत ही सफलता के साथ संपादित किया। वेदांत देशिक स्वामी के अथक प्रयास से तमिल एवं संस्कृत प्रबंधों में सामंजस्य बढ़ा। संस्कृत एवं तमिल के बीच आपने एक सेतु का काम किया। इसलिये रंगनाथ भगवान ने आपको 'उभय वेदांत' की उपाधि से विभूषित किया। तिरूवन्दीपुरम में चैत में ब्रह्मोत्सवम मनाया जाता है।

भाद्रपद मास में वेदांत देशिक स्वामी का अवतार उत्सव मनाया जाता है। वेदांत देशिक स्वामी के उपास्य लक्ष्मीहयग्रीव एवं योगहयग्रीव स्वामी की सन्निधि पास के औषध गिरी पर है जहां जाने के लिये **74** सीढ़ियां बनी हैं और ये सीढ़ियां भाष्यकार स्वामी को **74** सिंहासनापति के प्रतीक हैं।

श्री वेदान्त देशिक स्वामी के जीवन के अंतिम **60** वर्ष श्रीरंगम में बीते। 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र' 'वेदान्ताचार्य' 'निगमान्तदेशिक' 'वेदान्तगुरू' 'कवितार्किक केसरी' आदि इनकी अनेक उपाधियॉ हैं। श्रीरंगम में 'तायर सन्निधि' के सामने ही इनकी सन्निधि है। श्रीरामानुज स्वामी के जीवनकाल के प्रधान शिष्य थे किदाम्बी अच्चान एवं इनके कुलके ही किदाम्बी अप्पुल्लार थे जो श्रीवेदान्त देशिक स्वामी के मामा एवं गुरू थे। श्रीरंगम में इनको 'श्री नदादुर अम्माल' से कालक्षेप के माध्यम से श्रुतप्रकाशिका एवं श्रीभाष्य पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। 'नदादुर अम्माल' को 'वरदा चारी' भी कहा जाता था।

<u>वडगल की गुरूपरंपरा है</u> ः

श्रीरामानुज । तिरूक्कुरूकै पिल्लान । एंगल आळवान । नदादुर अम्माल । अप्पुल्लार । वेदान्त देशिक ।

<u>श्री वेदान्त देशिक स्वामी की रचनायें</u> ः

वेदान्त ग्रंथ ः 'सेश्वर मीमांसा' 'शतदूषिणी' 'अधिकरण सारावली' 'तत्वटीका' 'न्यायपरिशुद्धि' 'न्यायसिद्धान्जनम्' 'तत्वमुक्ता कलापम्' 'निक्षेप रक्षा' 'सच्चरित्ररक्षा' 'वादीत्रयखंडनम्' 'द्रमिदोपनिषद तात्पर्यरत्नावली' 'द्रमिदोपनिषद सारम्'।

व्याख्या ग्रन्थ ः 'चतुःश्लोकी भाष्यम्' 'स्तोत्ररत्नभाष्यम्' 'रहस्यरक्षा' 'गीतार्थ संग्रहरक्षा' 'तात्पर्यचन्द्रिका' 'ईशावास्य उपनिषद भाष्यम्' 'सर्वार्थ सिद्धि' 'अधिकरण दर्पणम्'।

नाटक ग्रन्थ ः 'संकल्प सूर्योदयम्' ।

काव्यग्रन्थ ः 'सुभाषितनीवी' 'यादव अभ्युदम्' 'पादुका सहस्रम्' 'हंस संदेशम्'

अनुष्ठान ग्रन्थ ः 'भगवदाधराधनाविधि' 'यज्ञोपवीत प्रतिष्ठा' ।

रहस्य ग्रन्थ ः 'संप्रदायपरिशुद्धि' 'तत्वपदवी' 'रहस्यपदवी' 'तत्वनवनीतम्'

'रहस्यनवनीतम्' 'तत्वमातृका' 'रहस्यमातृका' 'तत्वसंदेशम्' 'रहस्य संदेशम्' 'रहस्यसंदेशविवरणम्' 'तत्वरत्नावली' 'तत्वरत्नावली प्रतिपाद्यसंग्रहम्' 'रहस्यरत्नावली' 'रहस्यरत्नावली हृदयम्' 'तत्वत्रयचूड़कम्' 'रहस्यत्रतचूड़कम्' ''अभयप्रदान सारम्' 'रहस्यशिखामणि' 'अंजलिवैभवम्' 'प्रधानशतकम्' 'उपहारसंग्रहम्' 'सारसंग्रहम्' 'मुनिवाहनभोगम्' 'मधुरकविहृदयम्' 'परमपदसोपानम्' 'हस्तिगिरिमहात्म्यम्' 'श्रीमदरहस्यत्रयसारम्' 'सारसारम्' 'विरोधपरिहारम्' ।

स्तोत्र ः 'श्रीहयग्रीवस्तोत्रम्' 'दशावतारस्तोत्रम्' 'भगवद्धयानसोपानम्' 'अभीतिस्तवः' 'दयाशतकम्' 'वरदराजपञ्चाशत्' 'वैराग्यपञ्चकम्' 'शरणागतिदीपिका' 'वेगासेतुस्तोत्रम्' 'अष्टभुजाष्टकम्' 'कामासिकाष्टकम्' 'परमार्थस्तुतिः' 'देवनायकपञ्चाशत्' 'अच्युतशतकम्' 'महावीरवैभवम्' 'गोपालविंशतिः' 'देहलीशस्तुतिः' 'श्रीस्तुतिः' 'भूस्तुतिः' 'गोदास्तुतिः' 'न्यासदशकम्' 'न्यासविंशतिः' 'न्यासतिलकम्' 'सुदर्शनाष्टकम्' 'षोडशायुधस्तोत्रम्' 'गरूडदण्डकः' 'गरूड़पञ्चाशत्' 'यतिराजसप्ततिः'।

कवितार्किक सिंहाय कल्याण गुणशालिने।
श्रीमते वेङ्कटेशाय वेदान्तगुरवे नमः ।।

<u>**7।1।5** स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी पर रोग का आक्रमण</u>

एक बार कर्मकाण्ड कराने पंडित श्रीमाधव जी के सहायक के रूप में श्रीरूपदेव जी सोन नदी के पश्चिम वरूही गॉव गये थे। वहीं ये ज्वर से पीड़ित हो गये तथा पालकी की सवारी से इन्हें सरौती लाया गया। सरौती आने पर ज्वर के साथ विषम चेचक के चपेट में आ गये। महीनों उपचार के बाद स्वस्थ हुए।

बचपन से त्यागी एवं सहिष्णु प्रवृति के होने के कारण काशी अध्ययन की अवधि में भोजन एवं अन्य सुविधायों से स्वामी श्रीरूपदेव जी उदासीन रहे। साथ रहने वाले छात्रों को भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करते थे। फलस्वरूप प्रायः भोजन में कमी हो जाती थी। कभी दाल पीकर सो जाना तथा कभी भूखे रह जाना इनका स्वभाव हो गया था। जाड़े में एकही कम्वल को आधा विछाकर आधा ओढ़कर अपना काम चला लिया

करते थे। शरीर कमजोर होने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर हुआ तथा इन्हें यक्ष्मा रोग ने धर दबोचा।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसात् विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदोहेतु चतुष्टयात्।।

मलमूत्र विसर्जन के वेग को रोकने से, अधिक मैथुन से धातु क्षय करने से, शक्ति से अधिक काम करने से, तथा कठिन आसन में रहने से यक्ष्मा होने की संभावना रहती है।

तरेत का खुला वातावरण ज्यादा स्वास्थ्यवर्द्धक प्रतीत होने के कारण ये काशी छोड़कर तरेत आ गये। सरौती स्वामी जी को जब यह ज्ञात हुआ तो विशेष व्यवस्था से इन्हें सरौती बुला लिये। सरौती ठाकुरवारी के तत्कालीन व्यव्स्थापक सरौती गॉव के प्रपन्न श्रीवैष्णव श्री रघुराज जी को पटना भेजकर पटना के प्रसिद्ध डा टी एन बनर्जी से तीन वर्षो तक इनकी यक्ष्मा का उपचार कराया। शुरू के नौ महीने पटना में ही रहे तथा जब रोग के ठीक होने के लक्षण दिखने लगे तो ये पुनः सरौती वापस आ गये। यहाँ एक कमरे में शांत चित्त से शय्यासीन रहे तथा श्रीस्वामी जी ने इनकी सेवा सुश्रुषा की उचित व्यवस्था कर दी। जब श्रीस्वामी जी सरौती में रहते थे तो नित्य प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में **3** बजे चुपचाप इनके कमरे में आकर इनकी नाड़ी की गति का निरीक्षण कर लौट जाते थे। करीव तीन वर्षो के बाद स्वस्थ होने पर सरौती ठाकुरवारी के स्थानीय संस्कृत विद्यालय में ये अध्यापक के रूप में कार्यरत हो गये।

7।1।6 हुलासगंज ठाकुरवारी एवं संस्कृत संस्थान

स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी का इनपर बहुत ही स्नेह रहता था। **101** वर्षीय श्रीस्वामी जी चाहते थे कि श्रीरूपदेव जी सरौती स्थान के संचालन में सहायता करे तथा इसकी जिम्मेदारी भी लें परन्तु त्यागी प्रवृति के होने के कारण इन्होंने श्रीस्वामी जी के चरणों में निवेदन कर इसतरह के कार्य से अपने को वंचित रखा। तत्पश्चात् श्रीस्वामी जी ने इन्हें शंख चक्र प्रदान करते हुए श्रीवैष्णव धर्म के प्रसार के लिये गॉवों में भ्रमण करने को कहा। शुरू में शारीरिक कमजोरी के कारण ये भ्रमण से हिचकिचाये परन्तु श्रीस्वामी जी ने

इन्हें एकाध मील ही चलकर गॉवों में जाने की राय दी। बाद में श्रीरघुराज जी ने इनके लिये एक घोड़ी की व्यवस्था कर दी। यहीं से बिहार में ये श्रीवैष्णवधर्म के अग्रणी प्रचारक के रूप में एक उदीयमान सूर्य के रूप में उभरे। **82** वर्ष की अवस्था होने पर भी श्रीवैष्णव व्योम में यह सूर्य आज भी अध्यात्म मार्ग के एक कुशल गुरू के रूप में भवरोग से ग्रस्त जनमानस को प्रकाश की राह दिखा रहे हैं।

ई सन् **1969** में इन्होंने हुलासगंज में 'ज्ञानयज्ञ' के साथ 'भागवत कथा' से लोगों को लाभान्वित किया। यज्ञ में बचे हुए धन को जब ग्रामीण इनको देने लगे तो इन्होंने धन को स्वीकार करने से मना करते हुए राय दी कि अगर संभव हो तो यहाँ एक संस्कृत विद्यालय का शुभारंभ करें। गॉव वालों ने हुलासगंज के पास नदी के किनारे कुछ जमीन की व्यवस्था कर 'श्रीपराङ्कुश संस्कृत विद्यालय' की शुभारंभ कर दी। इसी के बाद यहाँ 'श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर' की भी स्थापना हुई। पर्णकुटीर के साथ यह आश्रम इनका आवास भी हो गया तथा कुछ कलह प्रवृतिवाले लोगों के कारण इन्होंने सरौती से अपना मन विल्कुल ही हटा लिया। बाद में 'श्रीपराङ्कुशाचार्य संस्कृत महाविद्यालय' की स्थापना हुई। एक आयुर्वेद का औषधालय भी बना जो सरकारी उदासीनता के कारण आज शिथिल हो गया है।

हुलासगंज में भगवान के मंदिर के आगे जगमोहन का विस्तार ई सन् **1988** में हुआ। गोपुर का निर्माण ई सन् **2000** में तथा गीता भवन का निर्माण ई सन् **2003** में हुआ।

7।1।7 स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी की धार्मिक पुस्तकें ः

स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य द्वारा पूर्व में प्रकाशित पुस्तकों का नवीन संस्करण के प्रकाशन के अतिरिक्त स्वामी रूपदेव जी ने गीता तथा कर्मकांड पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं। ई सन् **1980** से इन्होंने हुलासगंज से 'वैदिक वाणी' एक त्रैमासिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन किया है। इनके द्वारा प्रणीत पुस्तकें निम्नवत हैं।

1। अर्थपञ्चकतत्व विमर्श। **2**।लघुस्तोत्र मञ्जरी। **3**।गीतापञ्चप्रसुन। **4**।विशिष्टाद्वैत तत्वदिग्दर्शन। **5**।वास्तुकर्म प्रकाश। **6**।चौलादिविवाह

चन्द्रिका। **7**।गीतारहस्य चन्द्रिका। **8**।स्तोत्र चन्द्रिका। **9**।उपदेशमाला। **10**।श्रीरामकथा रसायन। **11**। गीताप्रवचन पीयूष। **12**।श्राद्ध चन्द्रिका। **13**।अर्चिरादिमार्ग

7।1।8 'ज्ञानयज्ञ' एवं धार्मिक कृत्य

ई सन् **1968** में सरौती श्रीस्वामी जी की अध्यक्षता में श्री रूपदेव जी ने पहला 'ज्ञानयज्ञ' भोजपुर शिकरहटा में संपन्न किया। तबसे त्रिदिवसीय या पंचदिवसीय 'ज्ञानयज्ञ' के द्वारा हजारों गॉवों को ये लाभान्वित करते रहे हैं और प्रत्येक वर्ष एक या दो ज्ञानयज्ञ अवश्य ही संपन्न होते रहे हैं। पंचदिवसीय 'ज्ञानयज्ञ' 'अयोध्या' एवं 'वृन्दावन' में भी संपन्न हुए। अर्द्धकुंभ या पूर्णकुंभ के अवसर पर इनका 'हरिद्वार' 'उज्जैन' 'नासिक' तथा 'प्रयागराज' में बाड़ा भी जाता है जहॉ 'ज्ञानयज्ञ' एवं धार्मिक प्रवचन से भक्तों को लाभान्वित होने का मौका मिलता है। मकर कुंभ के अवसर पर प्रत्येक वर्ष प्रयागराज में करीब एक माह की अवधि का बाड़ा लगता है।

यज्ञस्थल पर 'श्रीमद्भागवत पारायण एवं कथा' 'हरिनाम का अखंड कीर्तन' तथा संत विद्वानों के प्रवचन से लगभग एक माह की अवधि में आकर्षक धार्मिक वातावरण बना रहता है। संतानहीन लोगों को 'हरिवंशपुराण' सुनाया जाता है जिससे अनेकों को लाभान्वित होते देखाा गया है। पृथक यज्ञमंडप में यज्ञाग्नि प्रज्वलित कर प्रत्येक दिन 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' से हवन दी जाती है। अगर 'त्रिदिवसीय' यज्ञ है तो हरदिन 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' से कम से कम एक आवृति अवश्य पूरी की जाती है। इसी तरह से तीनों दिन होम की आवृति चलती है। इसीतरह से 'पचदिवसीय' यज्ञ में पांच दिन यज्ञमंडप में 'श्रीविष्णुसहस्रनाम' का होम चलता है।

7।1।9 ज्ञानयज्ञ

'ब्रह्मसूत्र' 'गीता' एवं 'श्रीमद्भागवत महापुराण' में 'ज्ञानयज्ञ' की महिमा का उल्लेख है। 'ब्रह्मसूत्र' पर श्रीरामानुज स्वामी ने विस्तृत व्याख्या लिखी है जिसे 'श्रीभाष्य' कहते हैं। इसके दूसरे अध्याय के तीसरे पाद में सूत्र **19** से **32** तक के भाग को 'ज्ञाधिकरण' कहते हैं। इस अधिकरण से प्रारंभ करके इस

पाद के अंतिम अधिकरण तक जीव के आकार प्रकार एवं गुण आदि तथा परमात्मा के साथ इसके सम्बन्ध का विवेचन प्रस्तुत है। इस अधिकरण में जीव को स्वयंप्रकाशित बताया गया है यानी जो स्वयं ही अपने को जान सके। इसको धर्मीज्ञ भी कहते हैं। जीव धर्मी है तथा ज्ञान ही ज्योति है। स्वयं के अतिरिक्त अन्य को जानने के लिये इसे 'धर्मभूत ज्ञान' की आवश्यकता होती है। इस तरह से जीव 'धर्मीज्ञान' तथा 'धर्मभूतज्ञान' नामक दो विशेषताओं से संपन्न रहता है।स्वप्न या गाढ़ी निद्रा में भी इसका धर्मीज्ञान जागरूक रहता है। धर्मीज्ञान के क्षेत्र में यह ब्रह्म के समरूप है। 'धर्मभूत ज्ञान' में ब्रह्म की सीमा नहीं है जबकि जीव का धर्मभूतज्ञान उसके पूर्वकर्म के आधार पर सीमित रहता है। सूत्र **2**।**3**।**19** 'ज्ञोऽत् एव' का तात्पर्य है कि जीव स्वयंप्रकाशित होने के अतिरिक्त धर्मभूतज्ञान का धारक होकर ज्ञाता है यानी सहज में चैतन्य है।उपनिषद में उल्लेख है कि जीव द्रष्टा श्रोता गंध सूंघने वाला भोक्ता विचारक ज्ञाता कर्ता एवं चेतन है। अतः वह धर्मभूतज्ञान के कारण अपनी इन्द्रियों से अन्य वस्तु की अनुभूति करता है।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। गी 15।9

ब्रह्मसूत्र के ज्ञाधिकरण अन्य **13** सूत्र का सारांश है ः **1**। जीवात्मा सूक्ष्म परमाणु के आकार का है क्योंकि मृत्यु के समय शरीर छोड़ देता है तथा जन्म के समय अन्य शरीर में प्रवेश कर जाता है। **2**। अतः जीव अपने पूर्व के पुण्य तथा पाप कर्म के कारण भौतिक रूप में बहिर्गमन तथा अन्तर्गमन करता है परंतु शरीर नाशवान रहता है। **3**।श्वेताश्वतर उपनिषद में जीव के आकार का उल्लेख है। घोड़े की पूंछ के एक बाल के एक सौवां भाग का पुनः एक सौवां भाग सूक्ष्म जीव का आकार है।मोक्ष प्राप्ति के बाद जीव का धर्म भूतज्ञान अनंत हो जाता है। किसी अन्य उपनिषद के अनुसार जीव का आकार चमड़े की सिलाई करने वाली सूई की नोक के बराबर सूक्ष्म है। **4**।जीव सूक्ष्मावस्था में हृदय के एक कोने में विराजमान रहता है। प्रश्न उठता है कि कैसे यह शरीर के अन्यभाग के सुख दुःख का अनुभव कर लेता है। इसकी संवेदनशीलता का एक दृष्टान्त है कि एक छोटे स्थान पर भी चंदन का

लेप लगाने पर उसकी शीतलता का अनुभव होता है उसीतरह जीव अन्य अनुभूति प्राप्त करता है। **5**।धर्मभूत ज्ञान के सहारे जीव हृदयस्थल में भी रहकर शरीर के बारे में उसीतरह से जानता है जैसे एक दीपक का प्रकाश चतुर्दिक उपलब्ध रहता है। **6**।धर्मीज्ञान एवं धर्मभूत ज्ञान में अन्तर है। पहला चेतन 'मैं' की अनुभूति कराता है तो दूसरा अन्यवस्तु की अनुभूति प्राप्त करने में सहायक होता है। अतः धर्मभूत ज्ञान जीव का एक गुण है न कि धर्म भूत ही स्वयं जीव है। जैसे मिट्टी का गंध मिट्टी का गुण है न कि स्वयं गंध ही मिट्टी है। **7**। धर्मभूत ज्ञान या चैतन्य यानी 'विज्ञान' जीव से भिन्न है तब संशय उठता है कि उपनिषद में जीव को 'विज्ञान' कैसे कहा गया है। 'विज्ञान' से सम्बोधित होने वाले जीव के पास श्रीमन्नारायण खड़ा रहते हैं तथा 'विज्ञान' यानी जीव 'यज्ञ' करता है। सूत्रकार इसका निराकरण एक उदाहरण से करते हैं। गुण को संज्ञा की तरह सम्बोधित करने की एक रीति है। जैसे 'आनन्द' परमात्मा का कल्याण गुण है परंतु परमात्मा आनन्द शब्द से भी सम्बोधित होते हैं। उसीतरह धर्मभूत ज्ञान के कारण जो कि जीव का शाश्वत गुण है उसे विज्ञान कहा जाता है। **8**।एक अन्य संशय उठता है कि धर्म भूतज्ञान जीव का शाश्वत गुण है तो गाढ़ी निद्रा की स्थिति में कैसे यह लुप्त हो जाता है। एक बालक का धर्मभूतज्ञान संकुचित रहता है जबकि युवावस्था में यह प्रस्फुटित होता है। सूत्रकार एक उदाहरण से समझाते हैं। बचपन में बालक का यौन पुरूषत्व शिथिल रहता है परंतु युवा होने पर सकिय हो जाता है। इसी तरह निद्रावस्था में धमभूर्तज्ञान शिथिल रहता है जो जागने पर सकिय हो जाता है। **9**। जीव को सर्वव्याप्त एवं स्वयंप्रकाश होने को नकारते हुए सूत्रकार सिद्ध करते हैं कि जीव धर्मीज्ञान तथा धर्मभूतज्ञान से सम्पन्न है।

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र की विशद व्याख्या है। भागवत का प्रारम्भ ही ब्रह्मसूत्र के दूसरे सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' से हुआ है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिदमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।
भागवत स्कन्द 1 अ 1 श्ल 1

संपूर्ण सृष्टि के सूत्रधार साक्षात नारायण है यही इसका तात्पर्य है। ज्ञान के माध्यम से ही जीव अपने आत्मस्वरूप को तथा सर्वनियामक श्रीमन्ननारायण के साथ अपने सम्बन्ध को समझता है। भागवत का माहात्म्य पद्मपुराण उत्तर खंड में वर्णित है। इसमें 'ज्ञानयज्ञ' का स्पष्ट उल्लेख है।

द्रवयज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचकाः। भागवत महात्म्य अ **2** ।**59**
सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः।
श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः। भागवत महात्म्य अ **2** ।**60**
ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्र कथोज्वलम्। भागवत महात्म्य अ **3** ।**1**
ज्ञानयज्ञस्त्वयातत्र कर्त्तव्यो ह्यप्रयत्नतः। भागवत महात्म्य अ **3** ।**7**

गीता में भगवान अपने सखा अर्जुन को 'ज्ञानयज्ञ' का महत्व समझाते हैं।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।। गीता **4**।**28**।

कुछ लोग 'देवपूजन' 'दान' 'होम' आदि से 'द्रव्ययज्ञ' करते हैं। कुछ लोग 'कृच्छ्रचान्द्रव्रत' उपवास आदि से तपयज्ञ करते हैं। कुछ लोग पुण्य स्थान तीर्थ का सेवन करते हैं। कुछ लोग शास्त्र पुराणादि के स्वाध्याय से ज्ञानयज्ञ करते हैं।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। गीता **4**।**33**।

द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि सभी कर्म का अंत ज्ञान में ही होता है।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथकत्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। गीता **9**।**15**।

अनेकों भक्त एकत्वभाव से यानी सखाभाव से तथा अनेकों पृथकत्व भाव से यानी दासभाव से वात्सल्य श्रृंगार आदि का भाव करते हुए 'ज्ञान यज्ञ' के द्वारा मुझे सर्वव्यापी समझ मेरी उपासना करते हैं।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्य संवादमावयोः।

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः । गीता 18।70

भगवान अर्जुन से कहते हैं 'हमदोनों के इस संवाद का जो अध्ययन या पाठ भी करेगा वह मेरे विचार से ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी पूजा अर्चना कर रहा है।' इस वक्तव्य से भगवान पूर्व के अध्यायों में उल्लिखित ज्ञानयज्ञ को अत्यंत ही सरल कर दिया है।

'ज्ञान' वही है जो श्रीमन्नरायण के चरणारविन्द को ही उपाय एवं आश्रय वताये। भगवद् रामानुज स्वामी ने 'शरणागतिगद्यम्' में 'ज्ञान' एवं 'भक्ति' के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को बहुत ही सरलता पूर्वक समझाया है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जनः।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता 7।16
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। गीता 7।17
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।गीता 7।18
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। गीता 7।19

भगवद् रामानुज उपर्युक्त गीता 7।17 से 7।19 तक के तीन श्लोक को उद्धृत करते हुए श्रीमन्नारायण से प्रार्थना करते हैं **"इतिश्लोकत्रयोदित ज्ञानिनं मां कुरूष्व"**। तत्पश्चात् वे गीता 8।22 तथा 11।54 एवं 18।54 के उद्धरण से भगवान को स्मरण कराते हैं।

पुरूषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। गीता 8।22
भक्त्या त्वनन्यया शक्य ....। गीता 11।54
........................मद्भक्तिं लभते पराम्।। गीता 18।54

भगवद् रामानुज प्रार्थना करते हैं **"इतिस्थानत्रयोदित परभक्तियुक्तं मां कुरूष्व"**। इससे स्पष्ट है कि 'ज्ञान' एवं 'भक्ति' एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसीलिये भगवद् रामानुज ने पुनः भगवान से प्रार्थना की **"परभक्ति परंज्ञान परमभक्त्यैकस्वभावं मां कुरूष्व"**।

गीता अध्याय 3 श्लोक 9 से 15 तक भगवान ने यज्ञ की आवश्यकता पर

बल दिया है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। गी 3।9
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो ऽस्त्विष्टकामधुक्।गी 3।10
अन्नादभवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। गी 3।14
........................नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। गी 3। 15

देवपूजन करना तथा हवन करना यज्ञ के आवश्यक अंग हैं। देव पूजन में देवता को नैवेद्यादि अर्पित करने से देवता प्रसन्न रहते हैं। शवरी एवं विदुर जी ने भगवान का सत्कार फल के नैवेद्य से किया। **"कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि। प्रेमसहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।"** द्वारिका मिलन में सुदामा जी ने भगवान का सम्मान भोज्यसामग्री चूड़ा से किया।

देव भोजन को ही होम या हवन कहते हैं।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कोन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्। गी 9।27

श्रीविष्णुसहस्रनाम में भगवान को विभिन्न संज्ञा से सम्बोधित किया गया है।

......वषट्कारो......
......वह्निरनिलो ....
......समयज्ञो हविर्हरिः ।
..................महामखः ।
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च कतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ।।
महाकतुमहायज्वा महायज्ञो महाहविः।
सहस्रार्चि ः सप्तजिह्वै ः ....
........................हुतभुग्विभुः।
.........हुतभुग्भोक्ता...............
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः।
........................यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में श्री रूपदेव स्वामी जी ने ज्ञानमंडप के 'भागवत कथा' के साथ यज्ञमंडप मे भगवान के पुनीत नाम से अग्निहोम संपादित कर 'ज्ञान यज्ञ' को केवल मानसिक एवं अनुभवजन्य न रखा वल्कि इसे मूर्तवंत एवं सरल कर दिया।

स्वामी श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी

गुरूं पराङ्कुशं वन्दे सुविज्ञं करूणालयम्।वरदाता प्रपन्नाय सुतरां हृदिराजते।।
यस्यप्रासादान्मे सर्वलब्धं शास्त्रं पुरातनम्।तमहं शिरसावन्दे कौण्डिन्य कुलभूषणम्।।
निर्मलं पयसा तुल्यं निपुणं वाक्पतिमिव।सम्बर्तमिव निष्कामं प्रणतोऽस्मि पराङ्कुशम्।।
श्रीवत्सवंशकुमुदस्य सुधाकराय श्रीमत्पराङ्कुशगुरूश्चरणाश्रिताय।
शान्ताय सौम्यगुणरत्न विभूषिताय श्रीरामप्रपन्नगुरवे सततं नमोस्तु।।

7।2।1 स्वामी रामप्रपन्न जी का प्रादुर्भाव एवं शिक्षा ः

मेहन्दिया से पश्चिम सोन नदी के तट पर अवस्थित परशुराम ग्राम के निवासी श्री हीरा शर्मा जी की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी से एक पुत्र तथा दूसरी से तीन पुत्र हुए जिसमें सबसे बड़े का नाम 'रामप्रवेश' था। श्री रामप्रवेश जी का जन्म ई सन् **1938** में हुआ था। श्री रामप्रवेश की आठवीं कक्षा तक गाँव में ही पढ़ाई हुई। संयोगवश जब रामप्रवेश छोटी अवस्था के थे तब इनकी माता अन्धी हो गयीं। रामप्रवेश गृहादि कार्य में रोटी वगैरह बनाने में सकिय होकर माता की सहायता किया करते थे। इनके पिता बड़े गुणज्ञ थे तथा किसी तरह के सांप के काटने पर मंत्रोपचार कर लोगों का उपकार करते थे। दो दो दिन से सर्पदंश के विष से प्रभावित अचेत व्यक्तियों को मंत्र से ठीक करते देख बालक रामप्रवेश के मानस पटल पर मंत्र की शक्ति ने अमिट छाप छोड़ रखी थी। अपनी बड़ी माता के पुत्र अग्रज भ्राता को व्यायाम करते देख रामप्रवेश बचपन से ही व्यायाम के अभ्यासी हो गये।

ई सन् **1951** में सरौतीस्वामी जी के चरणाश्रित हो रामप्रवेश सरौती चले आये तथा श्रीस्वामी जी ने इनका वैष्णव नाम 'रामप्रपन्न' रखा जो बाद में कतरासिन के स्वामी श्री रामप्रपन्नाचार्य के नाम से जाने जाते हैं। कुछ परिस्थितिवश सरौतीस्वामी जी ने ई सन् **1953** मे श्रीश्यामसुन्दर जी के साथ श्रीरामप्रपन्न जी को बनारस भेज दिया। यहाँ नगमा मुहल्ले में रहकर ये पढ़ाई करने लगे। ई सन् **1965** तक बनारस रहते हुए इन्होंने बिहार के दरभंगा कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्याालय से 'व्याकरण' में आचार्य की शिक्षा पूरी की तथा साथ ही साथ हिन्दुविश्वविद्यालय से 'वेद' में शिक्षा

प्राप्तआचार्य की शिक्षा पूरी की तथा साथ ही साथ हिन्दुविश्वविद्यालय से 'वेद' में शिक्षा प्राप्त करते रहे। सबसे पहले इन्हें 'शुक्लयजुर्वेद' में आचार्य की पदवी मिली। इसके अतिरिक्त 'भारतीय दर्शन' का भी अध्ययन करते रहे। राष्ट्रीय स्तर की वादविवाद प्रतियोगिता में सम्मिलित होकर 'स्वर्णपदक' से पुरस्कृत हुए। बनारस से यदा कदा सरौती आकर सरौतीस्वामी जी की सेवा में ये विभिन्न गाँवों में भ्रमण पर जाते थे। श्रीस्वामी जी की सदसंगति से इन्हें 'आयुर्वेद' 'ज्योतिष' 'कर्मकाण्ड' एवं 'भागवत कथा' का ज्ञान प्राप्त हुआ।

7।2।2 कतरासिन ठाकुरवारी

सरौती तथा बनारस के विद्यार्थी काल में ये सरौतीस्वामी जी के साथ कतरासिन कई बार जा चुके थे। ई सन् **1970** में बराबर की पहाड़ियों पर जड़ी बूटी की खोज करते हुए पुनः कतरासिन पहुंचे। गाँव में पहले से ही अवस्थित राधाकृष्ण मंदिर पर ठहरे हुए थे। कतरासिन के श्रीरामयाद शर्मा ने इन्हें कतरासिन में नये ठाकुरवारी के लिये **22** विगहे जमीन दान की। फलस्वरूप गाँव से बाहर एक नये परिसर का निर्माण हुआ एवं श्रीरामानुज संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना के साथ शालग्राम भगवान की पूजा का शुभारंभ हुआ। बाद में ई सन् **2011** में एक मंदिर का निर्माण हुआ जहाँ प्रथम खंड पर वेङ्कटेश भगवान तथा द्वितीय खंड पर पदमावती जी की सन्निधि बनी। सबसे ऊपर सरौतीस्वामी जी की सन्निधि का प्रस्ताव है। इसके अतिरिक्त रंगनाथभगवान की एक पृथक एक मंजिला सन्निधि है।

7।2।3 पुस्तकों का प्रणयन

क। गुरूवर चालीसा। ख। ईश वन्दना। ग। जड़ी बूटी का चमत्कार ः एक संत का उपहार। घ। स्वस्थ जीवन का रहस्य तथा मौत की झांकी ह्ययोग एवं योगीह। च।ऋषियों एवं राजाओं की वंशावली। ज। जीवन की झाँकी (आत्मकथा)

पंडित आचार्य श्री श्यामसुन्दर शर्मा पीएचडी

7।3।1 श्री श्यामसुन्दर जी का प्रादुर्भाव एवं शिक्षा ः

श्रवणे श्रावणे जाते पूर्णेन्दुर्विभायथा।

गुरोः पराङ्कुशाश्रितः अर्चितव्यो श्यामसुन्दर ः।।

सावन माह के श्रवण नक्षत्र में पूर्णिमा को अवतार लेने वाले पूर्णचांदनी की प्रभा के समान दीप्त एवं श्रीपराङ्कुश गुरू से समाश्रित पूज्यपुरूष श्रीश्यामसुन्दर जी को नमन करता हूँ।

मेहन्दिया से 3 कि मी पर अवस्थित 'अकरौंजा' एक प्रसिद्ध गॉव है। इस गॉव में साकलद्वीपि एवं भूमिहार ब्राह्मणों की बहुतायत है। दोनों ब्राह्मणों की यहॉ उपाधि 'शर्मा ' है परंतु साकलद्वीपि लोग अपने नाम के शुरू मे 'पण्डित' लिखते हैं। 'अकरौंजा' गॉव की प्रशस्ति में 'गाम्य दर्पण' एक पुस्तक प्रकाशित है जिसमें निम्नांकित पद का उल्लेख है।

श्रीगंगा सम पुनपुना वाराणसी एक ग्राम ।

परम रम्य चहुँदिशि विदित अकरौंजा अस नाम।।

इसी गॉव के निवासी पुण्यात्मा श्रीरामदेव शर्मा जी के चार पुत्र एवं दो कन्या में सबसे छोटी संतान के रूप में **"श्याम सरोज दाम सम सुन्दर"** श्रीश्याम सुन्दर जी का प्रादुर्भाव 11 अगस्त ई सन् 1938 तदनुसार वि संवत् 1995 श्रावण पूर्णिमा गुरूवार को श्रवणा नक्षत्र में 'ज्ञानावतार हयग्रीव भगवान' के अंश से हुआ था।

सरौतीस्वामी जी प्रायः घोड़े से ही अपने भक्तों के गॉव में पधारते थे। एक बार उनके अकरौंजा आगमन पर चार पॉच वर्ष की अवस्था के श्यामसुन्दर जी स्वामीजी के घोड़ा का पीछा करने लगे। संयोग ऐसा हुआ कि दौड़ने के अन्तराल ये घोड़ा से टकरा कर गिर गये तथा इनकी जीभ कटकर दो भाग में बॅट गयी। श्रीस्वामी जी के संरक्षण में गहन उपचार हुआ एवं चमत्कार स्वरूप 'हयग्रीव पदांकित' पूर्ण जिह्वा को प्राप्त कर ये 'कवि कालिदास' की तरह ज्ञानवैभव से सम्पन्न हो गये।

श्रीस्वामी जी ने इनके पिता से इनको मांग लिया तथा इन्हें सरौती लाकर श्रीवैष्णव संस्कार से समाश्रित करते हुए इनका श्रीवैष्णव नाम 'सुदर्शनाचार्य' रखा। तत्पश्चात् सरौती में ही शुभ मुहुर्त में इनका विद्यारम्भ हुआ। मेधासंपन्न ज्ञानावतार श्रीश्याम सुन्दर जी शीघ्र ही सरौती की पढ़ाई पूरी कर बनारस चले गये। 30 वर्ष की अवस्था होते होते पांच विषयों 'व्याकरण' 'न्याय' 'मीमांसा' 'धर्मशास्त्र' एवं 'साहित्य' में आचार्य की शिक्षा पूरी करते हुए बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय से संस्कृत में 'एम ए' करने के वाद 'पीएचडी' से सम्मानित हुए। ई सन् 1968 से संपूर्णानन्द विश्वद्यिालय वाराणसी में ये मीमांसा के विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे।

7।3।2 कीर्तिमान

बनारस की विद्वतमंडली में ये अतिसम्मानित पुरूष थे। इनकी पीएचडी की 'थीसिस' 'मीमांसा श्लोक संस्कृत वार्तिक ः कुमारिलभट्ट का हिन्दी रूपान्तरण' अपने आप में एक कीर्तिमान है जिसे बाद में शारदा प्रकाशन

वालों ने प्रकाशित भी किया। वकतृत्व कला से सम्पन्न श्रीश्यामसुन्दर जी अपने भाषण से श्रोताओं को मुग्ध किये रहते थे। न्याय व्याकरण तथा मीमांसा के विषयों पर सरौती बनारस तथा अन्यत्र ऐसे अनेको अवसर पर भाषा एवं विषय से बिना स्खलित हुए लगातार तीन चार घंटे बालते सुने गये थे। अनेको स्वर्णपदक से विभूषित इन्हें बनारस के गौरव के रूप में देखा जाता था। श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज की ओर से स्वामी रूपदेव जी द्वारा रचित 'ऊर्ध्वपुण्ड्र विकास' पुस्तक को श्रीश्यामसुन्दर जी ने बनारस से उचित संपादनोपरान्त व्याख्यात्मक भूमिका के साथ प्रकाशित कराया। श्रीवैष्णवों के लिये नित्यपूजा की विधि की यह एक सरल मार्गदर्शिका है।

एक बार पंडित श्री श्यामसुन्दर जी सरौती आये हुए थे। गुरू जी के नाम से विख्यात श्रीरामदेव झा ने इनके साथ न्याय का एक प्रकरण छेड़

दिया। श्रीश्यामसुन्दर जी ने धाराप्रवाह न्याय के प्रकरण को ऐसा प्रस्तुत किया कि गुरू जी ने कहा ' श्यामसुन्दर का न्याय में बहुत विस्तृत ज्ञान है और मैं इसके वक्तव्य से आंधी पानी की तरह तोपा गया।'

पंडित जी प्रखर विद्वान के अतिरिक्त एक कुशल वक्ता भी थे और सरल शब्दों से श्रोता को मुग्ध कर देते थे। एक बार महमतपुर में प्रवचन का दौर चल रहा था। पंडित श्यामसुन्दर जी ने भगवान की स्थिति को इतना सरल उदाहरण से समझाया कि श्रोता भावविभोर हो गये। आपने कहा 'एक वस्तु ऑख से बहुत दूर जब चली जाती है तब नहीं दिखती है। जब वही वस्तु ऑख के बहुत ही समीप आ जाती है जैसे पलकों के भीतर तब भी नहीं दिखती है। ईश्वर इसी तरह से हैं या तो बहुत दूर हैं या बहुत ही पास हैं कि हम उन्हें देख नहीं पाते हैं।

7।3।3 परमपद गमन

संपूर्णानन्दविश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के पद को सुशोभित करते हुए ये गृहस्थ धर्म में प्रवेश कर गये तथा दो पुत्र एवं दो पुत्री के पिता हुए। बनारस में इन्होनें अपना एक निजी आवास का निर्माण किया था परन्तु दुर्भाग्यवश उसके गृहप्रवेश के पूर्व ही असमाजिक तत्वों ने **10** दिसम्बर **1976** को जब ये 'श्रीवेङ्कटेश पराङ्कुश महाविद्यालय' के आवास में पूजा पर बैठे थे कि गोली मारकर इनकी हत्या कर दी। इनके बड़े पुत्र श्रीनारायण जी 'इतिहास' में स्नातक तथा 'साहित्य' में आचार्य की शिक्षा पूरी कर अकरौंजा गॉव में ही 'श्यामसुन्दर ऊच्चविद्यालय' का संचालन कर रहे हैं।

श्रीपराङ्कुशाचार्यस्य दिव्यगुण वर्णनम् (श्रीरामानन्द शर्मा कृत)

कौण्डिन्यवंश जनिताय विभाकराय श्रीरङ्गदेशिक पदाम्बुज संरताय।
राजेन्द्रसूरि चरणौ परिचारकाय नमोऽस्तु सततं मुनि पराङ्कुशाय।।1
शुक्लाम्बरेण भूषितं तनू दिव्यपुण्ड्रं शिक्षादिधर्मविषये कृतयत्नशीलम्।
संस्कृतपाठसदनान् कृतस्थापनं च श्रीमत्पराङ्कुश मुनिं प्रणमामि नित्यम्।।2
विद्याप्रचार निरतं हरिभक्त निष्ठम् ग्रामं प्रगम्य प्रतिजनं वचसोपदिष्टम्।
सौख्यं विहाय जीवने जनहितचिन्तकम् श्रीमत्पराङ्कुश मुनिं प्रणमामि नित्यम्।।3
त्यागे दधीचि सदृशो विदुरश्च प्रेम्णि ज्ञाने वशिष्ठइव सत्यव्रते युधिष्ठरः।
श्रीवेङ्टेशचरणौ विमलं मतिस्थं श्रीमत्पराङ्कुश गुरूं प्रणमामि नित्यम्।।4
गीतादिशास्त्र वचनै जनशिक्षयन्तम् चक्रादितापसहितमनु दीक्षयन्तम्।
भगवतस्वरूपगुणनाम सदाजपन्तम् श्रीमत्पराङ्कुश मुनिं प्रणमामि नित्यम्।।5

डा राजदेव शर्मा कृत 'श्री पराङ्कुश पदावली' से साभार उद्धृत

हे करूणामय देव पराङ्कुश ! धर्मशील गुणनिधि ज्ञानी।
वन्दन निशि-दिन करूँ तुम्हारा, चाह यही है वरदानी।1
सरस्वती के वरदपुत्र तुम, निगम-पंथ के अनुगामी।
ज्योतिपुंज हे पुण्य-विधायक ! मंगलमय भव-हितकामी।2
भक्तों के आनन्द-निकेतन धरती के वरदान तुम्हीं।
प्रज्ञा के उज्वल प्रकाश में करते प्रतिदिन गान तुम्हीं।3
कर्मयज्ञ के सामिधेन्य तुम ज्ञानयज्ञ की होम-शिखा।
ज्योतिष के अतिगूढ़ मर्म का दृश्य सभी को गये दिखा।4
दर्शन के अति अगम तत्व को लोकलुभावन बना दिया।
संस्कृत के दुर्लभ मंत्रों को सरल सुहावन बना दिया।5
विघ्ननिवारक ! हर संकट में दृढ़ता का जयघोष किया।
द्वन्दों में समता के पोषक गुरू-गरिमा उदघोष किया।6
काल-व्याल के फन पर चढ़कर मुरली मधुर बजाई थी।
बाधाओं से नहीं डरे हम यही बात बतलाई थी।7
चलते रहे सदा जीवन भर बाधाओं पर पद रखकर।
न्याय-नीति पर डटे रहे तुम शीत-घाम सबकुछ सहकर।8
नर-तन ही है द्वारमोक्ष का और धर्म का शुभ साधन ।
यही सुनाने आये थे तुम गीत बनाकर मनभावन।9
अतिपावन पुरूषार्थ तुम्हारा और तुम्हारा चरित ललाम।
पुलकित तन, अवरूद्ध कंठ है, राजदेव का लो प्रणाम।10

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः

आठवां अध्याय ः प्रज्ञावान प्रशिष्य स्वामी श्रीहरेराम जी

राजेन्द्र नाम्नि विमले प्रपाते
तटस्थिते पराङ्कुश पारिजाते।
तत्रस्थितं रंगरामानुजार्यम्
तत् किंकरं हरेराम गुरूं नमामि।।

सर्वदा जनहित के लिये समर्पित निर्मल जल वाले झरना स्वरूपी परमहंस स्वामी श्रीराजेन्द्र सूरि जी के सुदृढ़ समाश्रय रूपी तट पर सुन्दर पारिजात वृक्ष स्वरूपी स्वामी श्री पराङ्कुश जी के पादमूल में स्थित स्वामी रंगरामानुज जी के निरन्तर सेवक गुरूस्वरूप श्री हरेराम जी को नमन करता हूँ।

श्रीनिवास करूणानिवासे रमनीयरूपे श्रीरंगवासे।
करिशैलनाथ वरदानिवासे उडयवर वन्दे सर्ववासवासे।
राजेन्द्रसूरि गुणवृन्दवासे परं पराङ्कुश कृपा निवासे।
रङ्गरामानुज ज्ञानवासे हरेराम वन्दे हृत्पद्म वासे।

भगवान श्रीनिवास करूणामय हैं एवं श्रीरंगम में श्रीरंगनाथ भगवान सुन्दरस्वरूप में वसते हैं तथा कांचीपुरम के हस्तिगिरि पर वरदराज भगवान वरददायी हैं। इनसवों के अतिशयप्रिय सर्वत्र व्याप्त श्रीरामानुज स्वामी की वन्दना करता हूँ। परमहंस स्वामी राजेन्द्रसूरि जी गुणसमूह के खान हैं। श्रेष्ठ स्वामी श्री पराङ्कुश जी कृपा के आगार हैं। श्रीरूपदेव स्वामी जी ज्ञान के खान हैं। इनसवों के प्रियदास हृदयकमल में वसने वाले स्वामी श्री हरेराम की वन्दना करता हूँ।

8।1 प्रादुर्भाव

पटना जिलान्तर्गत तरेत क्षेत्र के समीपस्थ मसौढ़ी पितमास रोडपर सर्वानीचक गॉव हैं जहॉ श्री रामावतार शर्मा श्री प्रवीण शर्मा श्रीउपाध्याय शर्मा श्रीरामचन्द्र शर्मा एवं श्रीरामदहिन शर्मा नामके पॉच भाई के संयुक्त परिवार के चौथे भाई श्रीरामचन्द्र शर्मा जी चार पुत्र बलराम विश्राम हरेराम

एवं रामसुजान तथा दो छोटी सुपुत्री के पिता हुए हैं। श्रीरामचन्द्र शर्मा के चारो पुत्रों में तीसरे सुपुत्र विरक्त होकर 'स्वामी श्री हरेराम जी' के नाम से विख्यात हुए। इनका प्रादुर्भाव वि संवत् **2016** श्रावण शुक्ल प्रतिपदा बुधवार तदनुसार **5** अगस्त ई सन् **1959** को कर्क में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा तथा अश्लेषा नक्षत्र में हुआ। **'मूरति मधुर मनोहर देखी'** नयनाभिरामम बालक के जन्म से प्रसन्न होकर पिता ने गौरवर्ण लक्ष्मण स्वरूपी बालक को भगवान के भजन **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'** में रत रहने वाला ''हरेराम'' कह कर पुकारा।

''सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ'' श्रीमद्वाल्मीकि रामायण 1।18।15

माता सुमित्रा के दोनों राजकुमार लक्ष्मण एवं शत्रुध्न का प्रार्दुभाव सूर्य की उपस्थिति में कर्क लग्न के आश्लेषा नक्षत्र में ही हुआ था। 'अश्लेषा' की विशेषता ही है त्याग का जीवन। घरवार छोड़कर लक्ष्मण जी भी ने अपना जीवन भगवान राम के सेवार्थ सौंप दिया था।

पूज्य आचार्यो के श्रीमुख से सुना गया है कि एक बार त्रेता में शेष जी ने लक्ष्मण के स्वरूप में भगवान राम की ऐसी उत्कृष्ट सेवा की कि बाद के सभी युगों में भक्त वत्सल भगवान ने 'शेष जी' के अंश से अवतरित सभी स्वरूपों की स्वयं सेवा की। उदाहरणस्वरूप त्रेता के बलराम कृष्ण एवं कलि के स्वामी रामानुज तथा उनके शिष्य दाशरथि।

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितोयो लक्ष्मणस्तथा।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः।।

श्री शेष जी की सेवाभावना की प्रशंसा में श्रीयामुनाचार्य ने 'स्तोत्र रत्न' में कहा है ः

निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधान वर्षातपवारणादिभि ः ।
शरीर भेदैस्तव शेषतां गतैः यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः ।। 40।।

शेषनाग जी अपने शरीर के विभिन्न अंगों से 'निवास' 'शय्या' 'आसन' 'पादुका' 'वस्त्र' 'तकिया' 'धूपवर्षा में सुखदेने वाला छत्र' आदि के स्वरूप में भगवान की अनेकों प्रकार से सेवा करते हैं। इसीलिये लोगों ने इन्हें 'शेष' की

संज्ञा दी है यानी जो सेवा भाव से कभी संतुष्ट नहीं होते तथा सेवा में रत रहने की निरन्तर इच्छा 'शेष' ही रहती है। स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य जी ने भी 'अर्चा गुणगान' में कहा है ः

शुभ मन्दिर कभी आसन सिंहासन बन रहेंगे ही।
सुछत्रक वाद्य वादक हो कभी नर्तक बनेंगे ही।।
व्यजन चॉवर पगन पनही बिताने तन रहेंगे ही।
अहो मैं दिव्य चरणन पादुका बनके रहेंगे ही।।

8।2 समाश्रयम एवं शिक्षा

एक बार गॉव के बाहर बटवृक्ष के नीचे खेलते हुए बालक हरेराम अपने पिता के गुरू 'सरौती स्वामी जी' को सुन्दर घोड़ा पर सवार देख मुग्ध होकर स्वामी जी के घोड़ा के पीछे दौड़ पड़े। बालक ने उस 'भव्य दौड़' को छोड़ा नहीं और आज भी अध्यात्म के राजपथ पर उत्तरोत्तर गतिशील ही है ...... "**मोर दरसु अमोघ जगमाहीं**"। 'सरौती स्वामी जी' के प्रवर शिष्य 'रूपदेव स्वामी जी' भी घोड़े पर सवार हो एकबार सर्वानीचक पधारे और पिता जी ने बालक को श्रीवैष्णव संस्कार में समाश्रित कराते हुए स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी रचना 'धुव चरित' के पद को चरितार्थ कर दिया "**है जननी जनक सो जो भगवत में लगा दे .... जल्लाद है वही जो इस जग में फंसा दे।**" अब तो बालक हरेराम के जीवन का मंत्र हो गया ः

नमामि नारायण पादपंकजम्। वदामि नारायण नाम निर्मलम्।।

स्मरामि नारायण दिव्य विग्रहम्। करोमि नारायण दास दासताम्।

गॉव के ही पाठशाला में चौथी कक्षा में पढ़ाई चल रही थी। पिता जी छः महीने के लिये 'श्रीवद्रिकाश्रम' की यात्रा पर चले गये। परिवार में कुछ कलह हुआ और ई सन् 1968 में बालक हरेराम गॉव छोड़कर सरौती स्थान आ गये और घर वापस पुनः कभी नहीं लौटे। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने अपने 'धुव चरित' में कहा है कि

ईश्वर जिसको अपनाता है। सो तुरत दीन बनजाता है।।
सब सम्बन्धी हट जाते हैं। या सबसे वह टल जाता है।।
जिसके सम्मुख वह जाता है। तिसके भारी हो जाता है।।
जिसके वह जगत भगाता है। तिसको भगवत अपनाता है।।

सरौती में ही रामनवमी के अवसर पर हरेराम जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। उसी के एक महीने बाद वैशाख में सरौती में भगवान वेङ्कटेश जी के दर्शनीय पूजा विग्रह की प्राण प्रतिष्ठा के उत्सव ने हरेराम जी के मन में अपने घर में पिता जी के द्वारा टांगे गये 'श्रीवेङ्कटेश भगवान' के चार सुन्दर फोटो की स्मृति को जाग्रत कर दिया। यह स्मृति अमिट हो गयी तथा हरेराम जी 'भगवान श्रीनिवास' के शाश्वत भक्त बन गये।

सरौती के पास अवस्थित 'रामपुर चौरम' से इन्होंने मिड्ल की शिक्षा पूरी की। तत्पश्चात् सरौती ठाकुरवारी से संचालित संस्कृत विद्यालय से प्रथमा मध्यमा तथा 'न्याय' एवं 'व्याकरण' मे शास्त्री की शिक्षा पूरी की। ज्ञान से संपन्न होने की भूख मिटी नहीं एवं ई सन् 1979 में दरभंगा से 'व्याकरण' में आचार्य की शिक्षा पूरी करते हुए क्रमशः दरभंगा से ही ई सन् 1980 में 'न्याय', 1982 में 'वेदान्त' एवं 1983 में 'मीमांसा' में आचार्य की भी शिक्षा पूरी कर ली।

अपनी प्रखर प्रज्ञा से श्रीहरेराम जी कामेश्वरसिंह संस्कृत विश्वविद्यालय दरभंगा के तत्कालीन उपकुलपति श्रीरामकरण शर्मा जी के स्नेहभाजन बनगये थे। एक बार श्रीरामकरण शर्मा जी ने अपनी गाड़ी पर बैठाया और इन्हें खगड़िया के पास अवस्थित 'अवधबिहारी संस्कृत महाविद्यालय' रहीमपुर में ले जाकर वहाँ अध्यापन के पुनीत कार्य में लगा दिया। इस महाविद्यालय के संस्थापक श्रीअवधबिहारी सिंह ने संस्कृत के समुत्थान के लिये अपनी दोहजार एकड़ जमीन इस महाविद्यालय के लिये दान कर दी थी। बिहार का यह सबसे धनी संस्कृत महाविद्यालय है। पूर्व में तरेत में अध्यापन करने वाले न्याय के ख्यातिलब्ध विद्वान श्री प्रसिद्ध नारायण शर्मा जी भी उस समय वहीं कार्यरत थे। श्रीशर्मा जी का जन्म किंजर के पास इमामगंज के निकतवर्ती रूकुनपुरा गॉव में हुआ था। तरेत से प्रारम्भिक शिक्षा के बाद बनारस से न्याय में आचार्य की शिक्षा प्राप्त किये हुए थे। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री हरेराम जी ने कालक्षेप के माध्यम से इनसे न्याय के गूढ़ तत्वों का अध्ययन किया।

कुशाग्र मेधा से संपन्न हरेराम जी अनेको राष्ट्रीय स्तर की संस्कृत वाद विवाद प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक से सम्मानित होते रहे।

8।3 शिक्षण संस्थान

जबसे स्वामी रूपदेव जी ने सरौती छोड़कर हुलासगंज को कर्मक्षेत्र का मुख्यकेन्द्र बनाया हरेराम जी ने भी गुरू की पदछाया का अनुसरण करते हुए 'लक्ष्मणजी की' तरह गुरू के हर कैंकर्य में पूरी तरह जिम्मेदारी का निर्वाह किया। हुलासगंज में संस्कृत शिक्षण संस्थान प्रेस एवं औषधालय आदि की स्थापना में मुख्यरूप से सक्रिय रहे। फरवरी **25** ई सन् **1980** में 'पराङ्कुशाचार्य महाविद्यालय' की स्थापना हुई जिसकी राज्य सरकार से मान्यता ई सन् **1986** में मिली तथा आदर्श महाविद्यालय के रूप में **1990** ई में इसे भारत सरकार से मान्यता मिली। तत्पश्चात् ई सन् **2002** में इन्होंने महाविद्यालय को संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कराया और तब से आचार्य तक की परीक्षा का केन्द्र हुलासगंज में ही रहता है। परीक्षा में शुचिता के लिये महाविद्यालय की साख इतनी अच्छी है कि तीन चार अन्य महाविद्यालयों का भी परीक्षा केन्द्र हुलासगंज ही रहता है। समयानुसार वित्तसंवर्द्धन हेतु महाविद्यालय को भारत सरकार के 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' से जोड़ दिया गया तथा यहाँ 'व्याकरण' 'साहित्य' 'वेद' 'ज्योतिष' एवं 'वेदान्त' में नियमित रूप से आचार्य तक की शिक्षा दी जाती है।

मेहन्दिया में ई सन् **1981** में 'वेदान्तदेशिक संस्कृत महाविद्यालय' की स्थापना में अग्रणी रहकर श्री हरेराम जी ने पूर्वाचार्यो से समादृत संस्कृत शिक्षा के प्रसार को संवर्द्धित किया।

8।4 तिरूमला की झाँकी

अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन में भाग लेने हेतु दक्षिण भारत की यात्रा के अन्तराल रेणीगुन्टा के समीप रेलगाड़ी से ही तिरूमला पर्वत का प्रथम बार दर्शन मिला। रात्रि का समय होने के कारण दूर से ही पर्वत शिखर पर प्रकाशपुन्ज स्वरूप मे 'शंख चक्र एवं तिलक' के दर्शन से ये अभिभूत हो गये। बाद में **1986** में प्रयाग कुंभ से ही अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन में

सम्मिलित होने के लिये महाराष्ट्र के पंढरपुर की यात्रा पर गये थे। वहाँ से लौटते समय तिरूपति तिरूमला में भगवान श्रीनिवास के दर्शन का पहली बार अवसर मिला। इसके बाद प्रतिवर्ष नियमित रूप से भगवान के दर्शन हेतु तिरूमला के तीर्थयात्री बन गये।

8।5 तृष्णारहित त्याग स्वरूप

ई सन् **1983** में प्रयागराज में कुंभ का आयोजन था। श्रीहरेराम जी के विरक्त स्वरूप से प्रभावित हो स्वामी श्री रूपदेव जी ने इन्हें 'शंख चक्र' देते हुए श्रीवैष्णव मत के प्रसार हेतु गुरू स्वरूप में भ्रमण करने को कहा। श्री हरेराम जी के त्याग की प्रशंसा अन्य श्रीवैष्णव जन भी करते थे तथा आदरस्वरूप इन्हें 'छोटे स्वामी जी' कहकर सम्बोधित करने लगे थे। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी ने 'ध्रुव चरित' में ठीक ही कहा है ः

जिसको भगवत अपनाता है उसको जग शीश चढ़ाता है।
जिनको कछु बात न पूछा है अगवानी कर ले जाता है।।

………………

यस्य प्रसन्न भगवान् गुण मैत्री आदिभिर्हरिः।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमापद् वस्वयम्।।

इसके पूर्व ई सन् **1976** में सरौती स्वामी जी के प्रतिभासंपन्न शिष्य एवं काशी विद्वत्मंडली के प्रकाशपुरूष श्री श्यामसुन्दर जी की असामाजिक तत्वों ने बनारस में हत्या कर दी थी। श्री श्यामसुन्दर जी संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय वनारस में ही मीमांसा के विभागाध्यक्ष थे। सरौती स्थान में उस समय श्री स्वामी जी के सुयोग्य उत्तराधिकारी के लिये विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। सर्वाधिक श्रीवैष्णवों की तरह श्रीश्यामसुन्दर जी भी स्वामी रूपदेव जी को परमसुयोग्य उत्तराधिकारी समझते थे और इनको वहाँ गुरूरूप में स्थापित करने के लिये सबसे ज्यादा सक्रिय थे।

गुरूपरम्परा में 'प्रज्ञा' 'प्रतिभा' 'शास्त्रीय ज्ञान' तथा 'सहिष्णुता' से संपन्न उत्तराधिकारी आचार्य स्वयं ही उभर कर सामने आते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण श्रीवैष्णवों का मुख्यालय श्रीरंगम ही है। श्रीयामुनाचार्य कम ही अवस्था में अपनी मेधा से यहाँ के प्रधान आचार्य हुए थे। वयोवृद्ध श्री

यामुनाचार्य के परमपद के बाद उनके वरीय शिष्य श्री महापूर्ण स्वामी तथा अन्य श्रीवैष्णवों ने सर्वसम्मति से **30** वर्ष की अवस्था में ही कांचीपुरम के श्रीरामानुज स्वामी को श्रीरंगम का प्रधान आचार्य बना दिया था। श्रीश्यामसुन्दर जी ने भी जनतांत्रिक पद्धति से सरौती में पंडित श्री माधवशर्मा जी की सहायता लेते हुए अनेकों गॉव से निमन्त्रित कर श्रीवैष्णवों की महती सभा बुलाई जिसकी अध्यक्षता मिर्जापुर के श्री ठाकुर बाबू ने की थी। इस सभा ने सबों की सहमति से 'विरक्त' 'त्यागी' 'सहिष्णु' 'कर्मठ' एवं 'विद्वान' संतस्वरूप श्री रूपदेव जी यानी श्री रंगरामानुजाचार्य को सरौती के संरक्षक के रूप में चुना। फलस्वरूप सभी तरह के दस्तावेज चौकीदारी मालगुजारी आदि के रसीद श्री रूपदेव जी के नाम पर हो गये। श्री श्यामसुन्दर जी ने **"श्रीराजेन्द्रयतीन्द्रपादयुगले .... श्रीमत्काश्यपवंशजं गुरूवरं भक्त्या सदासंश्रये"** गुरू तनियन का निर्माण कर इसको ठाकुरवारी की पूजापद्धति में लागू करा दिया।

सरौती श्रीस्वामी जी के जीवनकाल में ही ई सन् **1965** में श्रीश्यामसुन्दर जी एवं स्वामी श्री रामप्रपन्नाचार्य जी ने मिलकर श्रीस्वामी जी की सहमति से बनारस में 'श्रीवेङ्कटेश पराङ्कुश संस्कृत महाविद्यालय' की स्थापना की थी। बनारस में संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहते हुए अनुशासनप्रिय श्री श्यामसुन्दर जी इसी विद्यालय परिसर में अपना आवास रखे हुए थे। इससे उदण्ड विद्यार्थियों पर अनुशासन का दवाव बना रहता था। इनकी परिसर में उपस्थिति के कारण असमाजिक तत्वों की वहॉ दाल नहीं गल पा रही थी। ये वही लोग थे जो सरौती में उत्तराधिकार सम्वन्धि विवाद उत्पन्न किये हुए थे। इनसब कारणों से उनलोगों ने श्री श्यामसुन्दर जी को मार्ग का कॉटा समझ इनकी जीवनलीला ही समाप्त करने की योजना बना ली और जब ये एकदिन पूजा पर बैठे थे तो गोली मारकर इनकी हत्या कर दी गयी।

गुरूरूप में उत्तराधिकार के विवाद के कारण होने वाली इस अप्रिय घटना से श्री हरेराम जी अत्यंत दुःखी थे तथा ऐसा समझा जाता है कि इन्होंने

आश्रम जीवन में अपने गुरू के जीवनकाल में ही स्वयं को गुरूरूप में उभारने से दूर रहने का ध्रुव संकल्प ले लिया। स्वामी श्रीरूपदेव जी द्वारा प्रदत्त 'शंख चक' को इन्होंने अपने पास शांत भाव से मात्र गुरू के आशीर्वाद की तरह रख लिया और गुरूचरणों में विनीत भाव से निवेदन कर अपने को गुरू रूप में शिष्य बनाने के उत्तरदायित्व से दूर रखा।

8 I 6 मेहन्दिया ठाकुरवारी

इस क्षेत्र में ई सन् **1850** के आसपास **श्री वसुरिया बाबा** नामके एक सन्त की बड़ी ख्याति थी। उस समय आवादी कम रहने के कारण यह स्थान वन प्रान्तर जैसा था जहॉ स्वाभाविक रूप से जंगली पशुपक्षी की बहुतायत थी। श्री वसुरिया बाबा भगवान राम के अनुरागी एक वैरागी सन्त थे। 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' से ओतप्रोत श्री वसुरिया बाबा यदा कदा पार्श्व वर्ती गॉवों का भ्रमण करते थे और एक बार उनकी उपस्थिति में एक गॉव में भीषण आग लग गयी। एक कटोरा घी मंगाकर जैसे ही इन्होंने अग्नि में आहुति दी कि अग्नि देव शांत हो गये **'जाकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारण गिरिजा'**। श्रीवसुरिया बाबा के शरीर छोड़ने के बाद उनके शिष्य **श्री रामसेवक दास जी** यहॉ रहा करते थे। श्री रामसेवक दास के परमपद के बाद स्थानीय लोगों ने सरौतीस्वामी जी से इस ठाकुरवारी को संरक्षण प्रदान करने का अनुरोध किया। श्रीस्वामी जी जब यहॉ पधारे तो उन्हें भी यह लगा कि यह एक जाग्रत स्थल है। बाद में स्थानीय भक्तों के अनुरोध पर ई सन् **1973** में श्रीरूपदेव स्वामी जी ने यहॉ पूर्व से स्थापित राघवेन्द्र सरकार की विधिवत पूजा की व्यवस्था कर दी।

1990 के दशक के अंतिम वर्षो में स्थानीय भक्तों ने श्रीरूपदेव स्वामी जी से पुराने ठाकुरवारी के जीर्णोद्धार का अनुरोध किया। भक्तों के आग्रह को स्वीकारते हुए नूतन ठाकुरवारी के निर्माण कार्य के लिये श्रीरूपदेव स्वामी जी ने छोटे स्वामी श्रीहरेराम जी को प्रभारी बना दिया। फलस्वरूप दक्षिण भारत के शिल्पकारों की सहायता से नये ठाकुरवारी का निर्माण शुरू हुआ एवं **4** मार्च ई सन् **2012** तदनुसार वि संवत **2068** फाल्गुन शुक्लपक्ष

एकादशी पुनर्वसु नक्षत्र में नवनिर्मित ठाकुरवारी के ऊपरी मंजिल पर श्री वेङ्कटेश भगवान का ज्ञानयज्ञोत्सव के उल्लास के साथ प्राणप्रतिष्ठा संपन्न हुआ तथा आळवार एवं पूर्वाचार्यों की आकर्षक दीर्घा से समावेष्टित भूखंड में वसुरिया बावा के समय से वर्तमान श्रीराघवेन्द्र सरकार अपने नवीन गर्भ गृह में पधारे।

दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश के तिरूमला के सदृश 'श्रीवेङ्कटेश भगवान' के पधारने से इस स्थान की महिमा और बढ़ गयी है एवं इसे श्रद्धालु भक्तगण अब **'श्रीबालाजी वेङ्कटेश्वर धाम मेंहन्दिया'** कहकर सम्बोधित करने लगे हैं।

8।7 मेहन्दिया में भगवान के विभिन्न कैंकर्य ः

'वृक्षारोपण' 'शालग्राम की माला' 'दूध से अभिषेक'

भगवान वेङ्कटेश को वृक्षों एवं वन्यपशुपक्षियों से भरा हुआ पुष्पाच्छादित वनस्थल अति प्रिय है। तिरूमला को **'पुष्प मण्डप'** कहा जाता है। 'अर्चा गुणगान' में श्रीस्वामी जी ने कहा है ''**वनमाल औ मणिमाल अगनित पुष्पमोतिन्ह लर रहे ......**'' । भगवान को निरंतर विभिन्न प्रकारों के सुगन्धित पुष्पों से अर्चना की जाती है। श्रीवैष्णवों की बस्ती में डेढ़सईया का अपना विशिष्ट स्थान है। यहीं के निवासी श्रीकृष्णमुरारी जी ने सघन रूप से वृक्षारोपण अभियान चला रखा है जिससे भगवान को स्थायी रूप से सालो भर फल एवं फूल की सेवा चलती रहे। अनेकों प्रकार के फल एवं विभिन्न तरह के फूल के पौधे यहाँ नियमित से लगाये जा रहे हैं जिससे कि भगवान मेहन्दिया में लोककल्याणार्थ प्रसन्नता पूर्वक निवास करें।

केवड़ी निवासी श्री गोपाल जी एवं हुलासगंज ठाकुरवारी से श्रीराजेन्द्र जी ने 'अर्चागुणगान' की पंक्ति ''**... पुनि तैसेहु भगवान के भगवान माला बन रहे''** को चरितार्थ करते हुए भगवान वेङ्कटेश को चाँदी के तार में मढ़ा हुआ शालग्राम भगवान की दो माला अर्पित की है और प्रत्येक माला **54** शालग्राम भगवान से बनी है।

भगवान वेङ्कटेश को नित्य दूध दही आदि से तिरूमंजन अभिषेक होता है तथा तिरूमला की भाँति प्रत्येक दिन उस दिन की विशिष्टिता के अनुसार विभिन्न प्रकार के नैवेद्य अर्पित किये जाते हैं। भगवान के अभिषेक हेतु गाय के दूध एवं दही की नित्य व्यवस्था का श्रेय स्थानीय मेहन्दिया के श्रीश्याम जी को है। भगवान वेङ्कटेश के परमस्नेहपात्र 'अनन्ताळवार' की तरह मेहन्दिया के श्रीभृगुनन्दन जी भगवान को सुगंधित गुलाब फूल से हर रोज सेवा कर रहे हैं।

रूपाईच ग्राम के श्रीमुकुटधारी शर्मा जी श्रीस्वामी जी महाराज के अनन्य शिष्य थे। इनके पुत्रद्वय श्रीवैद्यनाथ शर्मा जी तथा श्रीरामनाथ शर्मा जी श्रीस्वामी जी महाराज के विद्यालय निर्माण और मंदिर निर्माण एवं यज्ञादि तथा कुंभ के बाड़ा में सदा ही तन मन धन से सहयोगी बने रहे। श्रीवैद्यनाथ शर्मा जी **82** वर्ष की अवस्था में **2011** ई में परमपद कर गये तथा श्री रामनाथ शर्मा जी **79** वर्ष में **2014** में वैकुण्ठवासी हो गये।

श्रीवैद्यनाथ शर्मा
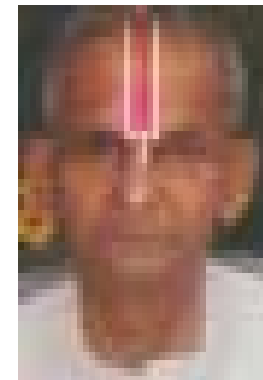
श्रीरामनाथ शर्मा

सरपंच साहब के नाम से जाने जाते हैं कटाहिं के श्री वासुदेव शर्मा जी। आप यज्ञादि एवं बाड़ा में श्रीस्वामी जी के परम सहयोगियों में से एक हैं। **82** वर्ष की अवस्था में भी आप साईकिल से घूमकर वैदिक वाणी पत्रिका बाँटने में तत्पर रहते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः
श्रीमतेपराङ्कुश गुरवे नमः

दसवां अध्याय ः अर्चागुणगान

(स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी की भगवद्संवाद की अभ्वियक्ति)

श्रीवेङ्कटेशस्तुतिल्धकीर्ति राजेन्द्रपादाश्रितप्राप्तबोधम्।
लोकेशदेवेशसमानमूर्ति तं पराङ्कुशगुरूं प्रणतोस्मिनित्यम्।।
श्रीरंगवरदयशो सर्वदालसन्तं संगीतवादनविधौ च विशेषविज्ञम्।
आळवारीयचरितं परिकीर्तयन्तं श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणमामि नित्यम्।।

भगवान के लीलाचीरत के स्मरण में निमग्न रहते हुए सन्त सदा भगवान को ही जीव के एकमात्र उद्धार का उपाय मानते हैं। शवरी को नवधाभक्ति समझाते हुए रामचरितमानस अरण्यकाण्ड में भगवान राम कहते हैं 'भक्ति के नौ मार्ग हैं एवं इसमें से किसी एक का भी सहारा लेकर हमको प्राप्त किया जा सकता है।

नव मँहु जिनके एकउ होई। नारि पुरूष सचराचर सोई।।
सोई अतिशय प्रिय भामिनी मोरे।'
प्रथम भगति संतन कर संगा। द्वितीय रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरू पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करई कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नवम सरल सबसन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।

सतसंगति करना, भगवत कथा में आनन्द लेना, गुरू की सेवा करना, भगवतलीला का गान करना, मंत्र जपना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, संत को भगवान से भी बढ़कर मानना, संतोष से जीवनयापन करते हुए किसी अन्य के दोष को

भूलकर उसके गुण को देखना तथा भगवान पर ही एकमात्र भरोसा रखना यही नवधा भक्ति है। नौ में से तीन बार भगवान, गुरू, एवं संत पर भरोसा रखने को कहते हैं, दो बार अपनी लीला कथा में आनन्द लेने को बताते हैं, तथा तीन बार सदाचरण से जीवन यापन करने को कहते हैं, और भगवान पर भरोसा रखना एक ही बार बताते हैं। इन सबों से संत की महिमा का ज्ञान मिलता है।

पुनः रामचरितमानस अरण्यकाण्ड में नारद जी के पूछने पर भगवान साधुसंत को परिभाषित करते हैं। संत वे हैं जो मेरी लीला के गान तथा श्रवण में लीन रहते हुए अकारण ही दूसरों की भलाई करते है।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि नहिं सकहिं सारद श्रुति तेते।।

सरौती स्वामी जी महाराज ऐसे ही संत थे जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की भलाई करते हुए सदा भगवान की लीला के गुणानुवाद में निमग्न रहते थे। संत तुलसीदास, सूरदास, मीरा आदि भक्तों की श्रृंखला में श्रीस्वामी जी एक जीवंत कड़ी थे। इनका 'अर्चागुणगान' एक ऐसी रचना है जिसमें ये सदा भगवान से अंतःसंवाद की स्थिति में देखे जाते हैं। भगवान से वार्तालाप करना संत की अनोखी रीति है। संत तुलसीदास सूरदास एवं मीरा आदि भक्तों के अनेकों पदों के अतिरिक्त आळवार संत के प्रवन्ध स्वामी यामुनाचार्य जी का 'स्तोत्ररत्न' एवं भगवद रामानुज का 'गद्यत्रयम्' इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। 'शरणागति गद्यम्' 'श्रीरंग गद्यम्' एवं 'श्रीवैकुंठ गद्यम्' को ही समेकित रूप से 'गद्यत्रयम्' कहते हैं। 'तिरूवायमोळी' नम्माळवार की 'पराङ्कुश नायकी' तथा 'पेरियातिरूमोळी' के परकाल स्वामी जी की 'परकाल नायकी' के भाव भगवान से नोंक झोंक करते हुए उनसे हुई वार्तालाप का चित्रण करते हैं। 'शरणागति गद्यम्' में भगवद रामानुज अंतःवार्तालाप के माध्यम से श्रीरंगम में लक्ष्मी माता रंगनायकी की वन्दना करते हुए भगवान रंगनाथ के चरणारविन्द में भक्ति मांगते हैं। **"अखिलजगन्मातरम् अस्मन्मातरम् अशरण्यशरण्याम् अनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये .... भगवच्चरणारविन्द शरणागतिर्य**

थावस्थिताऽविरताऽस्तु मे। परमार्थिकभगवच्चरणारविन्द .... परभक्तिपरज्ञान परमभक्तिकृतपरिपूर्णा .... अविरताऽस्तु मे।" इसपर माता जी आश्वासन देती हैंः " **अस्तु ते। तयैव सर्व संपत्स्यते।**" यानी 'जैसा चाहते हो वैसा ही होगा। शरणागति से ही सबकुछ प्राप्त हो जायेगा।' माता जी से आश्वासन मिलते ही रामानुज स्वामी अब भगवान की ओर मुड़ते हैं तथा उनसे जन्मजन्मान्तर की अपनी स्थिति बताते हुए अपनी भक्ति के साथ चरणारविन्द का आश्रय मांगते हैं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जनः।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता 7।16
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।गीता 7।17
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।।गीता 7।18
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। गीता 7।19

भगवद् रामानुज उपर्युक्त गीता के चार श्लोक में से **7।17** से **7।19** तक के तीन श्लोक को उद्धृत करते हुए श्रीमन्नारायण से प्रार्थना करते हैं "**इतिश्लोकत्रयोदित ज्ञानिनं मां कुरूष्व**"। तत्पश्चात् वे गीता **8।22** तथा **11।54** एवं **18।54** के उद्धरण से भगवान को स्मरण कराते हैं।

पुरूषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।गीता 8।22
भक्त्या त्वनन्यया शक्य ....। गीता 11।54
........................मद्भक्तिं लभते पराम्।। गीता **18।54**

भगवद् रामानुज प्रार्थना करते हैं "**इतिस्थानत्रयोदित परभक्तियुक्तं मां कुरूष्व**"। भगवान आश्वासन देते हैं **"एवम्भूतोऽसि। ...... यावत् शरीरपातम अत्र एव श्रीरंगे सुखमास्व।"** 'ऐसा ही होगा एवं तुम शरीर छोड़ने तक श्रीरंगम में ही रहो।' भगवान को ऐसा प्रतीत हुआ कि रामानुज को अभी भी मेरे आश्वासन में सन्देह है तो **'मा ते भूदत्र संशयः'** कहते हुए इन्हें श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में विभीषण शरणागति के समय के अपने कथन का स्मरण कराते हैं।

अनृतं नोक्तपूर्व मे न च वक्ष्ये कदाचन।
.... रामो द्विर्नाभिभाषते।।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि एतत् व्रतं मम्।।

इसके साथ ही गीता **18।66** के अपने कथन का भी स्मरण कराते हैं **"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।"** अब पूर्णतया आश्वस्त हो श्रीरामामुज स्वामी ने भगवान से निवेदन किया 'आपके कैंकर्य में लगेरहने के फलस्वरूप जो स्मृति मृत्युकाल में मिलती है उसे आज से ही प्रदान करने की कृपा करें।'

अन्त्यकाले स्मृतिर्या तु तव कैङ्कर्यकारिता।
तामेनां भगवन्नद्य कियमाणां कुरूष्व मे।।

भगवान का आदेश था कि श्रीरंगम ही जीवनपर्यन्त सुख से रहो। अतः भगवद्रामानुज ने 'श्रीरंग गद्यम्' की रचना कर दी एवं भगवान रंगनाथ का गुणानुवाद करते हुए उनसे द्वयमन्त्र की सिद्धिस्वरूप चरणाश्रय मांगा। जैसे युद्धक्षेत्र में सखा अर्जुन को भगवान ने अपने विराटस्वरूप का दर्शन कराया था उसी तरह से भगवान ने इन्हें वैकुण्ठ का दर्शन कराया और तब श्रीरामानुज स्वामी ने आंतरिक वार्ता से प्राप्त अनुभव को 'श्रीवैकुण्ठगद्यम्' में चित्रित कर दिया तथा श्रीवैष्णवों को यह संदेश भी दिया 'अपने नित्यानुसंधान में परमधाम वैकुण्ठ के सम्पूर्ण वैभव के साथ वहाँ विराजमान श्रीमन्नारायण का ध्यान करना चाहिए।'

श्रीयामुनाचार्य स्वामी 'स्तोत्र रत्न' के पहले **3** पद में अपने गुरू स्वरूपी पितामह श्रीनाथमुनि की वन्दना करते हैं। चौथे पद में श्रीविष्णुपराण के रचयिता 'चेतन जीव' 'जड़ जगत' तथा 'जीव एवं जगत जिसके शरीर के अंग हैं उस परम नियन्ता भगवान' के स्वरूप को बताने वाले श्रीपराशर मुनि की वन्दना करते हैं। पाचवें पद में नम्माळवार की वन्दना करने के उपरान्त छठे पद में भगवतवन्दन करने की अपनी मनसा के बारे में बताते हैं।

यन्मूर्ध्नि मे शुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्
अस्मन्मनोरथपथः सकलः समेति।

स्तोष्यामि नः कुलधनं कुलदैवतं तत्
पादारविन्दमरविन्द विलोचनस्य। स्तोत्र रत्न **6**।

जो समस्त शास्त्रों के मुकुट उपनिषदों में विराजते हैं तथा मेरे कुलदेवता एवं वंशपरम्परा से प्राप्त धन हैं एवं मेरी सभी कामनाओं का जहाँ अंत होता है उसी कमलनयन प्रभु के चरणारविंद की स्तुति करूँगा। सातवें पद में श्री यामुनाचार्य अपने अर्न्तद्वंद का उल्लेख करते हैं 'मेरे जैसा नीच प्राणी परमनिमायक की स्तुति करने की धृष्टता कैसे कर सकता है।' आठवें पद में भगवान हस्तक्षेप करते हैं तथा अन्तःवार्ता से उन्हें स्मरण कराते हैं 'सागर में जैसे एक विशाल पर्वत हो या एक छोटा धूल कण दोनों समान रूप से डूब जाते हैं। हमारी महिमा तो शिव ब्रह्मादि के लिये भी अगम्य है। अतः तुम अपनी स्तुति की रचना करो।' इसतरह से श्रीयामुनाचार्य भगवान से अंतरंग वार्ता में रत रहते हुए आगे के पदों की रचना करते हैं तथा भगवान उन्हें वैकुण्ठ के परिकरादि वैभव का दर्शन कराते हुए अपने स्वरूप दर्शन से उन्हें लाभान्वित करते हैं। कांचीपुरम के वरदराज भगवान के मन्दिर में विराजमान 'वरदवल्लभा तायर' की चार श्लोकों से वन्दना 'चतुःश्लोकी' के नाम से प्रसिद्ध है जो श्रीयामुनाचर्य की तब की रचना है जब वे वयोवृद्धावस्था में कांचीपुरम वरदराज भगवान के दर्शनार्थ गये थे तथा वहाँ विद्याथी के रूप में किशोरावस्था के श्रीरामानुज को देखकर आत्मविभोर हो गये थे। वरदवल्लभा लक्ष्मी माता को 'चतुःश्लोकी' समर्पित कर इन्होंने श्रीरामानुज को श्रीवैष्णव मतावलम्बी बनने की हार्दिक ईच्छा प्रकट की थी तथा इसकी पूर्ति हेतु वरदवल्लभा से वर मांगी थी।

मीरा का मन श्याममय हो गया था तथा वे सदा श्याम पिया के साथ ही रहती थीं। जगत के समस्त प्राणी को मीरा नारीवर्ग का मानती थीं तथा कृष्ण ही सवके एकमात्र पति थे। सोते जागते हमेशा भगवान से अंतरंग वार्ता में निमग्न रहने वाली मीरा अंतःमन में ही पूजा अर्चना करती रहती थीं। एक वार पलंग पर मीरा को पड़ते ही आंख लगी और श्यामपिया पलकों के भीतर आकर कर विराज गये। उनका सम्मान करने के लिये दौड़

पड़ीं और पलकें खुल गयीं। श्याम पिया पलायन कर गये।

पलका पर सोवत कामिनी रे ! ज्ञान ध्यान सब पी संग लागे।
पल में लग गयी पलकत मोरी मीचत ही पल में पिया आयो।
मैं जो उठी पिया आदर देने जाग पड़ी पिया हाथ न आयो।
और सखी पिया सोकर खोयी मैं अपना पिया जागी गंवायो।

श्याम पिया को मीरा ने प्रेम के तराजू पर तौल कर खरीदीं। सस्ता महंगा, गोरा काला, चोरी छुपे को भूल कर श्याम पिया को प्रेम के मुद्रा से खरीदीं। मुद्रा एवं तराजू दोनों 'श्यामपिया का प्रेम' ही है।

मैने लीनो गोविंद मोल माई री
कोई कहे सस्ता कोई कहे महंगा
मैंने लीनो तराजू तौल। माई री मैने लीनो...
कोई कहे चोरी कोई कहे सानी
मैंने लीनो वजन का ढ़ोल।
माई री मैने लीनो...
कोई कहे गोरा कोई कहे काला
मैंने लीनो अमोलक मोल। माई री ! मैने लीनो...
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर
ये तो आते प्रेम के मोल। माई री ! मैने लीनो...

'वैकुण्ठ में पर रूप' 'क्षीरसागर में व्यूह रूप' 'धराधाम पर अवतार ग्रहण करने वाले वराह वामन श्रीराम कृष्ण नरसिंह आदि विभव रूप' 'सर्वव्याप्त अर्न्तयामी रूप' एवं 'धराधाम पर दिव्यदेश के मन्दिरों में पूजा मूर्ति में विराजने वाले अर्चारूप' यही भगवान के पांच रूप हैं। कलियुग में पूजाविग्रह यानी अर्चाविग्रह ही सर्वसुलभ एवं उपादेय माने गये हैं।

मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहु वेदान्तपारगाः।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम्।।
अर्चावतारश्च तथा दयालु पुरूषाकृति।
इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मा रहस्य विदोजनाः।।

नारद जी द्वारा विरचित पाञ्चरात्र शास्त्र के दो सौ आठ संहिताओं में विष्वकसेन संहिता में अर्चाविग्रह की महिमा बतलायी गयी है। मन्दिरों में 'स्वयं व्यक्त'

या 'प्राणप्रतिष्ठापित' दो प्रकार की प्रतिमायें विदित हैं। स्वयं व्यक्त विग्रह से सुशोभित मन्दिर हैं 'श्रीरंगम रंगनाथ' 'तिरूमला वेङ्कटेश' 'पुरी जगन्नाथ' 'वदरीनाथ नर नारायण' 'मुक्तिनारायण नेपाल' एवं 'गण्डकी नदी के शालग्राम'। **108** श्रीवैष्णव दिव्यदेश के मन्दिरों में विराजमाने वाले अर्चाविग्रह के गुणानुवाद में ही आळवार संत निमग्न रहा करते थे। नम्माळवार यानी शठकोप स्वामी ने **39** दिव्यदेश के अर्चाविग्रह का गुणानुवाद किया है। परकाल स्वामी यानी तिरूमंगै आळवार ने **85** दिव्यदेश के विग्रहों की वन्दना की है। मुनिवाहन स्वामी ने मात्र दो दिव्यदेश तिरूमला एवं श्रीरंगम के भगवान की वन्दना की है। भक्तांघ्रिरेणु स्वामी ने मात्र श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान की ही वन्दना की है। इसीतरह से अन्य आळवार भी कुछ ही दिव्यदेश के अर्चाविग्रहों की वन्दना कर सके हैं। सबों को मिला देने पर **108** दिव्यदेश हो जाते हैं।

सरौती के श्रीस्वामी जी महाराज ने 'तिरूमला के वेङ्कटेश भगवान' 'कांची के वरदराज भगवान' 'श्रीरंगम के रंगनाथ भगवान' 'अयोध्या के भगवान राम' तथा 'वैकुण्ठ के परमपादनाथ' का गुणानुवाद किया है। जैसे आळवार संत की वन्दना एवं भगवान से संवाद 'दिव्यप्रबन्धम' में संग्रहित है उसी तरह श्रीस्वामी जी महाराज की वन्दना एवं भगवत वार्तालाप भी 'अर्चा गुणगान' में संग्रहित है।

'अर्चागुणगान' के **61** पदों में श्रीस्वामीजी के भगवत प्रेम का एक अनुपम प्रवाह है जो पद **1** से शुरू होकर पद **61** पर ही जाकर ठहरता है। श्रीस्वामी जी सदा ही अंतरंग वार्तालाप में निमग्न रहते हैं। कभी स्वयं भगवान से तो कभी माता लक्ष्मी जी के पास जाते हैं। कभी तो गुरू के पास जाते हैं परन्तु सब तरफ से भगवान की शरणागति लेने का संदेश मिलता है। अंत में भगवान प्रसन्न होते हैं और परमधाम वैकुण्ठ में विराजते प्रभु के दर्श न से श्रीस्वामी जी को अतिशय आनन्द आता है। गानविद्या तथा वाद्ययंत्रों के कुशल ज्ञाता होने का लाभ उठाते हुए श्रीस्वामी जी परमपदनाथ के समक्ष अभिनय पूर्ण भजन की प्रस्तुति करते हैं। प्रस्तुति के अंत में भगवान की आरती उतारते हैं। समय एवं स्थिति के अनुसार 'शब्द' 'स्वर' 'राग' एवं 'लय'

का अनोखा प्रयोग 'अर्चागुणगान' के पदों की अपनी विशिष्टता है। श्रीस्वामी जी ने 'अर्चागुणगान' के पदों का शीर्षक नहीं दिया था। पदों को पहचानने के निमित्त ही यहाँ प्रत्येक पद की प्रथम पंक्ति के प्रारम्भ के तीन शब्दों का प्रयोग कर उसका शीर्षक बना दिया गया है। इस तरह की परम्परा नम्माळवार द्वार विरचित 'तिरूवायमोळी यानी सहस्रगीति' में भी देखी जाती है। उनके भी दशकों एवं शतकों के शीर्षक नहीं है। पदों के प्रारम्भिक अक्षरों को प्रयोग कर भक्तगण दशकों की पहचान करने की परम्परा बना लिये हैं।

अर्चागुणगान पद 1 ः श्रीनिवास प्रताप दिनकर

श्रीनिवास प्रताप दिनकर भ्राजता सब लोक मे
सो दीन जन के तारने प्रभु आवते भूलोक में ।
वह कृपा चितवन नाथ की जन को सनाथ बनावता ।
वारीश करूण ऊमड़ घुमड़ अघ सकल दूर दहावता ।
प्रभु दिव्य दक्षिण हस्त में ज्यों अस्त्रराज विराजहीं ।
त्यों तेजमय अतिपॉञ्चजन्यसु वामकर वर गाजहीं ।
है कान्तिमत सुन्दर पीताम्बर अति विचित्र किनारियॉ ।
सो काछनी कटि में सुहावनी सबन के मन हारियॉ ।
वनमाल औ मनिमाल अगनित पुष्प मोतिन लर रहे ।
पुनि तैसेहीं भगवान के भगवान माला बन रहे।
औ श्रवण कुण्डल मुकुट भूषण गणन मे बहु मणिगणा ।
ज्यों श्याम घन में दामिनी बहु चन्द्र रवि तारे गना ।
प्रभु दिव्य दक्षिण हस्त से निज चरण शरण बतावहीं ।
ना भव तुम्हारे जानु लो सो बाम से दिखलावहीं ।
वह ज्योति जगमग जासु दस दिसि विदिसहु छायी महा ।
सो देखते दर्शक गनो के भागते अघतम महा ।
फणिराज पंकज रूप धर कर दिव्य आसन सोहहीं ।
हो दल अनेको पादतल सो लखित मुनि मन मोहहीं ।
व्यूह पर वैभवन व्यापेहुँ कौन पाते यत्न से।
भगवान अर्चा रूप धरकर जनन से मिल सुगम से ।
पर्ण फल जल पुष्प से सेवा सुलभ अति प्रेम से ।
इसके लिये यह तन मिला लख व्यास के उपदेश से ।

भूधर समान न और भूधर भूमि पर पाते कहीं ।
सदग्रंथ में जब देखते इनके सुयश सर्वत्र हीं ।
है धन्य कुधर शिखर अहो त्रैलोक नायक को धरे ।
ले साथ में आकाश गंगा धार झरझर झरझरे ।
औ अनंता अलवार के पावन सरोवर हैं जहॉ ।
है मुक्ति की ईच्छा जिसे वैकुंठ में रहते तहां ।
भाष्यकार स्वयं जिन्हें बन ससुर गुरू सेवा किये ।
सब दास को शिक्षा दिये अरू आप पावन यश लिये ।
हैं धन्य नर जो देखते पल स्वप्न में उस ठाम को ।
सो देव हैं नर नर नहीं हैं नरन में भगवान को ।
भव भीति का न डर कभी जो मन बसे हरि गीतिका ।
आशा बड़ी युग चरण की है है कृपा परिपालिका ।
है प्रणतपाल कृपालु हरि के चरण धर जीवन लहो ।
सो दीन बंधु कृपालुता बश द्रवित होंगे ही अहो ।

यह पद समस्त अर्चागुणगान का केन्द्रीय स्तंभ है। बाकी सभी पद इसी के चतुर्दिक **'गुंजत चंचरीक मधुलोभा'** की तरह घूमते रहते हैं। भगवान की **'कृपा चितवन'** प्राप्त करना और उनके **'चरणारविंद'** की सेवा ही भक्त का परमलक्ष्य होता है। श्रीस्वामी जी तिरूमला के वेङ्कटेश श्रीनिवास भगवान के समक्ष खड़ा होते ही उनकी 'कृपा चितवन' की वंदना करते हैं। अब चक एवं शंख के दर्शन करते हैं। तत्पश्चात् भगवान के पीताम्बर तथा गले में विभूषित विभिन्न प्रकार की माला का दर्शन करते हैं। इसमें एक विशेष माला **'पुनि तैसेहीं भगवान के भगवान माला बन रहे'** अनेकों शालिग्राम भगवान से वनी है। इनका दर्शन कर पुनः भगवान के मुखारविन्द का दर्शन करते हुए कान के कुंडल एवं शिर पर विराजमान मुकुट का दर्शन करते हें।

'प्रभु दिव्य दक्षिण हस्त से निज चरण शरण बतावहीं ' भगवान के वर देते हुए तथा अपने चरण को ही एकमात्र आश्रय का संदेश देने वाले दायें हाथ का दर्शन करते हैं। **'ना भव तुम्हारे जानु लो सो बाम से दिखलावहीं '** संसार सागर में उबता ' डूवता जीव जब भगवान के समक्ष जाता है तो भगवान अथाह सागर में उसे एक टापू की तरह मिल जाते हैं। **"निमज्जतोऽनन्त**

भवार्णवान्तः चिराय मे कूलामिवासि लब्ध ः। स्तोत्ररत्न " श्रीनिवास भगवान का बायॉ हाथ उनकी जंघा पर टिका है जो भक्त को अपनी ओर बुलाता है तथा भगवान यह आश्वासन देते हैं 'हमारे पास रहने वाले के लिये संसार सागर डुबाऊ नहीं है। इसमें तो मात्र जांघ भर ही पानी है।'

भगवान के नित्यकिंकर शेष जी ही स्वयं भगवान के चरणाविन्द के नीचे आसन के रूप में कमलासन बन विराजते हैं **'फणिराज पंकज रूप धर कर दिव्य आसन सोहहीं ।'** भगवान के चरणाविन्द के दर्शन के पश्चात् इस पद में उनके पांच स्वरूप 'व्यूह' 'पर' 'विभव' 'सर्वव्याप्त अन्तर्यामी' तथा 'अर्चा' का उल्लेख करते हुए 'अर्चा' स्वरूप की सुगमता को बताया गया है। **'व्यूह पर वैभवन व्यापेहुँ कौन पाते यत्न से। भगवान अर्चा रूप धरकर जनन से मिल सुगम से ।'** भगवान जिस पर्वत पर विराजमान है उसके दर्शन लाभ के वर्णन के साथ इनकी सेवा में विराजमान 'आकाशगंगा' प्रपात के दर्शन का उल्लेख है।

'औ अनंता अलवार के पावन सरोवर हैं जहॉ' श्रीरामानुज स्वामी के आदेश पर उनके शिष्य श्री अनन्ताचार्य श्रीरंगम छोड़कर तिरूमला में भगवान का पुष्पकैंकर्य करने आये थे। उनके द्वारा निर्मित सरोवर दर्शनीय है। इसके निर्माण में भगवान श्रीनिवास ने स्वयं ही मिट्टी ढ़ोयी थी। इस परमपुनीत कार्य के फलस्वरूप अनन्ताचार्य को आदरपूर्वक 'अनन्ता आळवार' कहा जाने लगा और आज भी उनके वंशज अपने नाम के आगे 'तिरू अनन्ताळवान' तमिल उपाधि का प्रयोग करते हैं।

ग्यारहवीं शताब्दि में तिरूमला भगवान की सेवा में कुछ व्यवधान उत्पन्न हो गया। शैवमतावलम्वी भगवान के स्वरूप को नारायण का स्वरूप नहीं मानने लगे। इसका मुख्य कारण था भगवान के विग्रह से चक एवं शंख का अनुपस्थित रहना। पुराणों में ऐसी कथा है कि भगवान के एक परमभक्त पर शत्रुओं का आकमण हुआ। भक्तराज सामना करने में असमर्थ हो रहे थे। भगवान श्रीनिवास ने अपना चक एवं शंख दोनों उनके साथ कर दिया। वे शत्रुओं को परास्त करने में सफल हो गये परन्तु भगवान के दोनों आयुध

उनकी रक्षा में विराजमान रहने लगे। कांचीपुरम से 15 कि मी पूरब चेंगलपट के रास्ते पालार नदी के उत्तरी तट पर पहाड़ी के शिखर पर श्रीलक्ष्मीनरसिंह पेरूमाल का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसी पहाड़ी के ठीक सामने पालार नदी के दक्षिणी तट की ओर तीन नदियों का संगम है एवं संगमस्थल पर ही भारत सरकार के पुरातत्वविभाग से संरक्षित भगवान वेङ्कटेश का भव्यमन्दिर है। भगवान के गर्भगृह में आज भी तिरूमला के भगवान द्वारा भक्तराज को दिये गये 'शंख चक' एक पृथक सिंहासन पर विराजमान होकर दर्शन देते हैं। इसी अनुपस्थिति का लाभ लेकर शैवों ने तिरूपति के तत्कालीन शासक को अपने पक्ष में करने का प्रयास करने लगे परन्तु श्रीरामानुज स्वामी के हस्तक्षेप से तिरूमला मन्दिर के गर्भगृह में शंख चक तथा त्रिसूल रखकर रात में भगवान के शयन के समय पट बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन प्रातः पट खुलने पर भगवान शंख चक धारण किये दिखे। शैव परास्त हो गये एवं उस दिन से भगवान अपने दोनों आयुधों के साथ विराजते हैं।

'भाष्यकार स्वयं जिन्हें बन ससुर गुरू सेवा किये' श्रीवैष्णव संस्कार करते समय गुरू शिष्य के दोनों वाहोंमूल में अग्नि में तप्त शंख चक स्पर्श कराते हैं। इसका भाव है कि शिष्य भगवान के 'सारूप्य' मोक्षाधिकारी हो गया। चूँकि भगवान ने श्रीरामानुज स्वामी के प्रयास पर शंख चक धारण किया इसलिये श्रीरामानुज स्वामी भगवान के 'गुरू' के समान हो गये।

तिरूमला में लक्ष्मी जी की सन्निधि नहीं है। पद्मावती जी का मंदिर नीचे तिरूपति में है। अतः लक्ष्मी जी के साथ एक स्वर्ण माला वनवाकर श्रीरामानुज स्वामी ने तिरूमला भगवान के गले में समर्पित कर दिया। उस माला में विराजमान लक्ष्मीजी आज भी भगवान के वक्षस्थल पर विराजती दर्शन देती हैं। भगवान को लक्ष्मीजी का उपहार देने के फलस्वरूप श्रीरामानुज स्वामी उनके 'ससुर' के समान हुए।

श्रीरामानुज स्वामी जी के जीवनकाल के परमप्रिय शिष्य श्री आंध्रपूर्ण स्वामी द्वारा विरचित **'श्रीरामानुजाष्टोत्तर शतनामस्तोत्रम्'** में भी श्रीरामानुज को वेङ्कटाचलपति का 'गुरू' एवं 'ससुर' कहते हुए उनकी वन्दना की गयी

है।

श्रीवेङ्कटाचलाधीश शंखचकप्रदायकः ।

श्रीवेङ्कटेशश्वसुरः श्रीरमासखदेशिकः ।

अव श्रीस्वामी जी भगवान के चरणकमल का दर्शन करते हुए वहीं टिक गये तथा इसे ही परमआश्रय मानते हुए श्रीनिवास भगवान को 'प्रणतपाल' से सम्बोधित करते हुए उन्हें शरणागति रक्षक होने का स्मरण कराते हैं। **'आशा बड़ी युग चरण की है है कृपा परिपालिका । है प्रणतपाल कृपालु हरि के चरण धर जीवन लहो । सो दीन बंधु कृपालुता बश द्रवित होंगे ही अहो ।'** साथ ही साथ यह विश्वास भी प्रकट करते हैं कि भगवान अवश्य ही कृपाभाजन बनायेगें।

अर्चागुणगान पद 2 ः श्रीनिवास भगवान हमहि

'श्रीनिवास भगवान हमहि अपने अपनाये जी' कहते हुए श्रीस्वामी जी श्रीनिवास भगवान में अपना आत्मविश्वास प्रकट करते हैं 'भगवान ने हमें अपना बना लिया है।' श्रीवैष्णव बनना ही इसका सबसे बड़ा साक्ष्य है ः **'नरतन सुर दुर्लभ भारत में देकर के भगवान हमहि वैष्णव बनवाये जी ।'** भगवान जिसको अपना बनाते हैं उसे ही श्रीवैष्णव बनने का अवसर देते हैं। श्रीरामानुज स्वामी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए 'द्वय मंत्र' का सार बताते हैं 'यह सर्वत्र सिद्ध हो चुका है कि भगवान का चरणारविन्द ही एक मात्र उपाय है।'

अर्चागुणगान पद 3 ः श्रीनिवास आश्रित हित

'श्रीनिवास आश्रित हित अपना अर्चा रूप बनाते हैं। द्रवित हृदय से आये गिरि पर वेङ्कटनाथ कहाते हैं।' पंक्ति से भगवान का तिरूमला में विराजने का उद्देश्य बताते हैं 'मात्र भक्तों के कल्याण के लिये ही वेङ्कटेश भगवान इस पर्वत की चोटी पर विराज रहे हैं।' भगवान शंख चक आयुध धारण कर भक्त को अभय प्रदान करते हैं जिसका तात्पर्य है कि इनके इन दोनों आयुधों की उपस्थिति में कोई भी इनके भक्त का वालवांका भी नहीं कर सकता। ऊंचे मुकुट को धारण कर भगवान यह प्रमाणित करते हैं **'मैं ही समस्त लोकों का एकमात्र अधिनायक हूँ।'**

अर्चागुणगान पद 4 ः वेङ्कट गिरि पर

'वेङ्कट गिरि पर स्वामी वैकुण्ठ से ही आये। श्री श्रीनिवास जन को यह भाव हैं बताये।।' इस पद में श्री स्वामी जी श्रीनिवास भगवान की महिमा गान करते हुए यह बताते हैं 'साक्षात वैकुण्ठ से भगवान यहाँ आये हैं। भक्तों को वैकुण्ठ ले जाने के लिये ही स्वयं परमपद नाथ ने इस स्वरूप को स्वीकार किया है।' **'हैं दास को यहॉ से वैकुण्ठ को ले जाते।'**

अर्चागुणगान पद 5 ः भू योगीश्वर महत

भू योगीश्वर महत भट्टवर भक्तिसार अगवान जी। कुलशेखर श्रीयोगी वाहन भक्तचरण रजमान जी । जामातृ परकाल वीरवर जिनसे लुटाये भगवान जी। इन पंक्तियों में आळवार संत की वंदना करते हुए बताते हैं कि इस धराधाम पर इनका पदापर्ण भगवान को सम्मान देने के लिये हुआ है। परकाल स्वामी को श्रीरंगम मन्दिर निर्माण में धन की कमी हो गयी थी। भक्त के मन को पूरा करने के लिये भगवान स्वयं लक्ष्मी जी के साथ एक नवविवाहित दम्पति के रूप में पधारे। परकाल स्वामी जी ने नवविवाहित को जंगल के रास्ते जाते मनुष्य मात्र समझ कर लूट लिया। अन्य पंक्तियों में शठकोप स्वामी तथा नाथमुनि एवं उनके शिष्य पुण्डरीकाक्ष की वंदना करते हैं। आळवार एवं आचार्य की वंदना के बाद माता लक्ष्मी की वन्दना करते हैं और इनकी 'दया की भीख मांगते हैं'। इस तरह से इस पद में श्रीस्वामी जी 'भगवान की कृपा प्राप्ति हेतु' आळवार तथा आचार्य एवं माता जी की विनती करते देखे जाते हैं।

अर्चागुणगान पद 6 ः मन श्रीनिवास भज

मन श्रीनिवास भज रे। होय परम कल्याण तुम्हारे चरणन जाय परे। लक्ष्मीमाता पास खड़ी हैं तब तुम काह डरे। युगल चरणहिं उपाय तुम्हारे सब दुःख दूर करे। इन पंक्तियो से श्रीस्वामी जी अपने को सांत्वना देते हैं कि जब माता लक्ष्मी जी भगवान के साथ हैं तब निश्चित ही कल्याण होगा। हे मन श्रीनिवास का भजन किया कर।

अर्चागुणगान पद 7 ः मोहि रङ्गनाथ अपनाये

'श्रीनिवास भगवान' 'आळवार' 'पूर्वाचार्य' एवं 'माता लक्ष्मी' से निवेदन का

कोई शीघ्र परिणाम न देख श्रीस्वामी जी अब रङ्गनाथ भगवान की ओर मुड़कर अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। **'मोहि रङ्गनाथ अपनाये' ......'मन्त्रराज द्वय चरम मन्त्र को सब विधि से सुनवाये। सुन्दर चरण उपाय बताकर अरचि राह दिखलाये।'**

मंत्रराज मूल मंत्र यानी अष्टाक्षर मंत्र है एवं द्वय मंत्र को मंत्ररत्न कहते हैं। तीनो मंत्र मूल द्वय एवं चरम को रहस्य मंत्र कहा जाता है एवं सबसे पहली बार इनके तात्पर्य श्रीपराशर भट्ट ने 'अष्टश्लोकी' की रचना कर समझाया। इसके पूर्व रहस्यार्थ के लिये गुरू एवं शिष्य का मौखिक कालक्षेप की परम्परा रही है। श्रीरामानुज स्वामी को भी श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने 18 बार के प्रयास के बाद इनके रहस्यार्थ मौखिक ही बताये थे। रहस्यार्थ सार्वजनिक रूप से नहीं बताये जाते थे। श्रीपराशर भट्ट के बाद श्री पिल्लैलोकाचार्य तथा श्री वेदान्तदेशिक स्वामी ने रहस्यार्थ के कई ग्रंथ लिखे तथा इन्हें पूर्णतया सार्व जनिक कर दिया।

अर्चागुणगान पद 8 ः कृपालो हे कृपा

भगवान रङ्नाथ से निवेदन करते हैं कि आपने 'मूल' 'द्वय' एवं 'चरम' मंत्रों का उपदेश दिलवाकर मुझे अपना तो बना लिया परन्तु आपकी कृपाचितवन में अभी भी देर हो रही है **'कृपालो हे कृपा करके प्रभो क्यों ना चिताते हो।' हम मानते हैं कि 'बहुत अपराध जन्मों से किया है मोह के वश हो' परन्तु 'करूणाकर करूण वश हो क्षमा कर दे तु सकते हो।'** अगर आपको अनेको नरक और बनाने हैं तो हमारे कर्मो की गिनती करें **'हमारा कर्म तब देखो नरक बाइस बनाना हो।'** अच्छा तो यही होगा कि आप अपने ही कल्याण गुणों का स्मरण करें '**निजी गुण को लखें भगवन** '। नरक बनाने के परिश्रम से अगर बचना चाहते हैं तो मुझे '**हटा दो ही क्षमा करके**'। अनन्तगुणों से युक्त होने के कारण ही आपको '**अविज्ञाता**' कहा गया है यानी '**जिनके समस्त कल्याणगुण किसी भी विशेष ज्ञान से नहीं जाने जा सकते वही अविज्ञाता कहे जाते हैं 'गुणन गन में वही है जो अविज्ञाता कहाते हो'**। श्रीविष्णुसहस्रनाम में आपको **'धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्। अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः'** से सम्बोधित किया गया है।

अर्चागुणगान पद 9 : वरद रइया सब

रङ्गनाथ भगवान को भी शीघ्र कुछ करते नहीं देख अब श्रीस्वामी जी वरदराज भगवान की ओर मुड़ते हैं और अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। चौरासी लाख योनि में भटकते देख आपने ही कृपा करके मानव शरीर दिया तथा अपने चरणों का दर्शन करने का अवसर दिया **'वरद रइया सब देले बनाय'**।

अर्चागुणगान पद 10 : वरद रइया मग

कांचीपुरम में स्थित हस्तिगिरि पर बसने वाले बरदराज भगवान ने सही मार्ग दिखाया है **'वरद रइया मग देले दिखाय'**। श्रीवैष्णव बनाकर रामानुज स्वामी से नाता जोड़ दिया है तथा संसार के जंजाल के भय से निश्चिन्त कर दिया। संसार सागर से उबरने के लिये भगवान के चरण का एकमात्र सहारा ही सबसे प्रमाणित उपाय बताया है। **'मा शुच' यानी 'चिन्ता नहीं करो'** कहकर आपने अभय कर दिया है।

अर्चागुणगान पद 11 : बना है विश्व

'बना है विश्व में सबको वरद के वरद हस्तों से' शुकदेव बामदेव ध्रुव विभीषण विदुर एवं जटायु आदि को कल्याण करने वाले वरदराज प्रभु इस दीन का भी सबकुछ ठीक कर देंगे **'बनेगा दीन को वैसे वरद के वरद हस्तों से'**। वरदराज पेरूमाल पर विश्वास करते हुए रंङ्नाथ भगवान को भी अपने पक्ष में करने के लिये श्रीस्वामी जी आगे के **7 पदों से रङ्नाथ भगवान** की बन्दना करते हैं।

अर्चागुणगान पद 12 : रङ्ग रइया ये

बड़े ही आर्तस्वर में श्रीस्वामी जी रङ्गनाथ भगवान की स्तुति करते हुए उनको निष्ठुर होने की उलाहना भी देते हैं **'हो के करूणाकर जी ठाने निठुरइया। रङ्ग रइया ये हमनि के कवन उपाय '**। वैकुण्ठ से पहले अयोध्या जी में पधारे और वहाँ से दक्षिण भारत में श्रीरंगम आकर बस गये **'छोड़ दिव्य लोक अरू अवधि नगरिया । रङ्ग रइया ये रहले दक्षिण दिशि जाय।'** यद्यपि आप अर्न्तयामी बनकर प्राणियों की रक्षा करते हैं परन्तु ऐसा लगता है

दास को भूल गये हैं। हम आपके अकिंचन दास हैं और आपके चरण के अतिरिक्त इसका कोई सहारा भी नहीं है **'दीन हीन दास तोर तुहीं मोर स्वामी. रङ्ग रइया ये कहु पग धरन उपाय।'**

अर्चागुणगान पद 13 : अर्चारूप बनाकर अपनी

ऊपर के पद की उलाहना के बाद इस पद में श्रीस्वामी जी भगवान रङ्नाथ का यशोगान करते हुए इन्हें राजा ईक्ष्वाकु माता कौशल्या विभीषण एवं 'पन' नामक वाद्ययंत्र पर गाथा गाने वाले मुनिवाहन स्वामी को अपनाने वाले बताते हैं। भगवान जनवत्सल होकर सबों की रक्षा करते हैं **'ईक्ष्वाकु पर कृपा किये' 'कौसल्या जब पाक बनाई ...' 'रघुपति से लङ्कापति पाये' 'पान लिये योगीवाहन को......'**। त्रिविक्रम अवतार में भगवान का स्वरूप इतना बड़ा हो गया था कि एक ही चरण के नीचे समस्त धरा आ गयी थी और मुकुट तो ब्रह्माण्ड की छत को पार कर चुका था। उस समय भगवान के चरण के नीचे ही समस्त जगत एवं प्राणी गोवर्द्धन स्वरूपी छाता के नीचे आ गये थे। इसी भाव का स्मरण करते हुए श्रीस्वामी जी ने इस पद में कहा है **'दीनन पर चरणों की छाया...।'**

अर्चागुणगान पद 14 : दया दरसाये रङ्गरईया

अब इस पद में माता रङ्गनायकी के साथ भगवान रङ्नाथ के यश का बखान कर रहे हैं **'दया दरसाये रङ्ग रइया रङ्गनायकी के सङ्ग आके ।'** श्रीरामानुज स्वामी के साथ समस्त श्रीवैष्णवों को अपने चरणों में स्वीकार करना तथा श्रीकुरेश स्वामी को वर देना आदि इनकी जनवत्सलता के गुण का बखान करते हैं।

अर्चागुणगान पद 15 : देखन चलिये रङ्गवर

जनवत्सलता का बखान करते हुए श्रीस्वामी जी भगवान के 'उत्सव सवारी' का दृष्टान्त देते हैं। विभिन्न उत्सवों में भगवान पृथक पृथक सवारी पर मन्दिर से बाहर आकर श्रीरंगम की वीथियों में भ्रमण करते हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य भक्तों को दर्शन देना ही है। श्रीरंगम में ऐसी ही एक सवारी की तैयारी में लगे भक्तों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं **'देखन चलिये रङ्गवर की सवारी .... सुरतरू वाहन अधिक सुहावन ...... आगे चतुर वेद**

पाठक गण पाछे प्रबन्ध सुरस ध्वनि न्यारी .... आलवार आचारिन वीथिन सबकी सन्निधियों में अधिक तैयारी। सब भक्तन के घरनिन विविध भाँति नैवेद्य संवारी। द्वार द्वार सब चौके पूरी नीराजन लिये हाथ में थारी। ...... प्रति वीथिन में करूणाकर हरि दर्शन देहि दीनन हितकारी।'

अर्चागुणगान पद 16 ः रङ्ग न लगा

भक्तों को उत्साहित करते हुए श्रीस्वामी जी कहते हैं कि श्रीरङ्गनाथ भगवान की भक्ति के रंग में डूबने की आवश्यकता है। श्रीरंगम धाम के दर्शन पर बल देते हुए पुनः कहते हैं **'दशो दिशा में व्यर्थ ही धाया रङ्गपुरी में कबहु न आया। मिथ्या चाल कुरंग का। कावेरी गङ्गा न नहाया वह पवित्र जल तनिक न पाया । भूला यम के दण्ड का। रङ्गनाथ पगतर न गिरा जो चरणामृत नहि पान किया सो लगहिं लात बजरङ्ग का । त्रिगुणों के घेरा में पड़कर त्रिविध ताप ज्वाला में जलकर । जैसा हाल पतङ्ग का । श्री रङ्गेश चरण मन धर कर दीनबन्धु के नाम सुमिरकर महिमा लहत सतसङ्ग का। तुम नाहक बना वेढंग का ...।**

अर्चागुणगान पद 17 ः रङ्गनाथ मम नाथ

इस पद में पुनः आर्त होकर रङ्गनाथ भगवान से प्रार्थना के साथ उलाहना भी देते हैं कि पूर्व के नाता को मत तोड़िये प्रभु। आप ने एकबार श्रीवैष्णव बनाकर अपना लिया है तो आगे निष्ठुर क्यों बन रहे हैं ? आपसे शेष-शेषी, सेवक-सेव्य आदि नाते हैं। आप अपने कल्याण गुणों की सूची में अब 'निठुरता' नामक गुण को क्यों जोड़ना चाहते हैं ? **'दीन दयाल दया से मुख मत मोड़ो जी ...... शुभ गुण में अब आन निठुरता मत तुम जोड़ो जी।'**

अर्चागुणगान पद 18 ः यही वर भावै

अति आतुर होकर श्रीस्वामी जी इस पद में भगवान से श्रीरंगम में ही रखने का वर मांगते हैं। कहते हैं **'श्रीरङ्ग पुर के भीतर हमको कुकुर्वा वनावै। खाने को मोहि भक्तन के जूठन पत्तल ही चटावै। प्यासे में कावेरी के पानी पीलाबैं। चतुरानन गोपुर के आगे रेती पर सुतावैं। जब प्रभु परिकरमा में आवैं पीछे से लगावैं। मङ्गल गिरि पर आप विराजैं आगे में बैठावैं।'**

इस पद में श्रीस्वामी जी श्रीरंगम के मन्दिर की संरचना की विशेषता बताते हैं। सात घेरों की बाहर से गिनती करने पर चौथा घेरा से मन्दिर प्रांगन

प्रारम्भ होता है। उत्तर दक्षिण तथा पूरब से चौथे घेरे में प्रवेश के गोपुर के शिखर चार मुँह वाले होने के कारण **'चतुरानन गोपुर'** कहे जाते हैं। भगवान नररसिंह के तीन स्थल 'अहोविलम' 'मंगलगिरि' 'सिंहाचलम' प्रसिद्ध हैं एवं तीनों आंध्रप्रदेश में हैं। मंगलगिरि पर्वत के ऊपर भगवान नरसिंह का खुला हुआ मुखड़ा मात्र का ही दर्शन होता है। इसी मुखड़े में गुड़ का शरबत अर्पित किया जाता है। श्रीस्वामी जी यहाँ यह बता रहे हैं कि मंगलगिरि पर मात्र मुखड़ा के अनोखे रूप में विराजमान भी आप ही हैं प्रभु। अंत में श्रीस्वामी जी श्रीरंगम में शरीर छूटने का लाभ बताते हैं 'भगवान सीधे वैकुण्ठ में बुलाकर नित्य मुक्त श्रीवैष्णवों की सत्संगति प्रदान करते हुए अपने चरण की सेवा में लगाते हैं।'

अर्चागुणगान पद 19 ः लक्ष्मीनाथ के आसन

भगवान को मौन देख श्रीस्वामी जी आतुर हो जाते हैं। 19, 20, तथा 21 के तीन पदों से स्वयं को अपने गुरू परमहंस स्वामी, भाष्यकार रामानुज स्वामी, वरवर मुनि, तथा रंगदेशिक स्वामी के कुल परम्परा का होने का परिचय देते हैं। पद 19 में परमहंस स्वामी जी को शेषजी का अवतार बताते हैं। शेषजी भगवान के आसन भवन आदि सभी स्वरूपों में रहकर भगवान की सेवा करते हैं। शेषजी ही भगवान राम एवं माता सीता जी के सेवक बनकर लक्ष्मण के स्वरूप में तथा भगवान कृष्ण के साथ बलदाउ बनकर आये। आचार्यो की परम्परा में श्रीरामानुज स्वामी सुजामाता यानी श्रीवरवरमुनि स्वामी तथा बाद में वृन्दावन में बास करते हुए मगध क्षेत्र के कल्याणार्थ श्रीराजेन्द्र सूरि बनकर तरेत में आये।

अर्चागुणगान पद 20 ः हरि के नित

इस पद में आळवार तिरूनगरी में शठकोप स्वामी को छाया प्रदान करने के लिये शेष जी का इस धरा पर इमली वृक्ष के रूप में आने का उल्लेख है **'हरि के नित शेष रहैं जो वहाँ पयसागर से चले आये यहाँ । इमली वन के वन छाये यहाँ नर देह ते कोटर आय महाँ।'** श्रीशेषजी ही पुनः श्रीपेरेम्बुदुर में अपनी माता कांतिमती देवी के लाड़ले पुत्र रामानुज बनकर आये 'जन के हित

ले अधिकार वहॉ पुनि कान्तिमती के कुमार यहॉ। सोई भाष्य किये भव सेतु महॉ किन्ह जीवन के उपकार यहॉ।'

श्रीस्वामी जी अब भगवद् रामानुज से सम्बन्ध बनने की दुहाई देते हैं **'तिनके चरणों धर के गिर के चलिहौं भवसागर पार वहॉ। सोई आस भरोस यही मन में भगवान अहैं रहिहौं तहवॉ। सब दीनन के जिनके वनके तिनके वनके अब जाउॅ वहॉ।'**

अर्चागुणगान पद 21 ः अबहुॅ हॅसि हेरो

अपने गुरूपरम्परा की दुहाई देते हुए इस पद में पुनः रङ्गनाथ भगवान से प्रार्थना करते हैं कि अब तो विहंसते हए प्रभु इस दास को देखिये। '**अबहुॅ हॅसि हेरो रङ्ग राया**' में 'हेरो' शव्द के 'देखना' तथा 'भूला जाना या खो देना या भूले हुए को खोजना' भी अर्थ हो सकते हैं। रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड **238।5** चौपाई में गुसाई जी ने कहा है ः **"कर कमलनि धनुसायक फेरत । जिय की जरनि हरत हॅसि हेरत।"** भगवान राम जिसके तरफ एकवार हॅसते हए देख लेते हैं उसकी अन्तर्व्यथा का अंत हो जाता है। यहॉ श्रीस्वामी जी भी रङ्गनाथ भगवान से हॅसते हुए देखने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। मानस मर्मज्ञ होने के कारण श्रीस्वामी जी ने एक ही शव्द के दो दो सटीक अर्थ होने का तात्पर्य रखते हैं। भूले हुए के अर्थ में गुसाई जी ने बालकाण्ड **111।2** में कहा है **"जेहि जानें जगजाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।" "बहुप्रकार गिरि कानन हेरहिं।"** भूले हुए को खोजना अर्थ भी सटीक है क्योंकि भगवान अभी तक श्रीस्वामी जी को भूले हुए हैं। इसीलिये गुरूपरम्परा से सम्बन्ध बताकर भगवान से विनती करते हैं कि अब तो प्रभु इस अकिंचन को खोजिये। इस पद में पुनः स्वयं को वरवरमुनि रामानुज स्वामी यामुनाचार्य महापूर्ण स्वामी विष्वकसेन जी लक्ष्मीजी तथा भगवान के परम्परा का होने का बताते हुए वृन्दावन रंगदेशिक स्वामी के शिष्य अपने गुरू परमहंस राजेन्द्रसूरि जी से सम्बन्ध वताते हैं। इसतरह से भगवान को अपने को उन्हीं के कुलपरम्परा से जुड़े होने का स्मरण कराते हैं।

क। श्री वृन्दावन श्रीरङ्गाचार्य ः ।

ख। श्रीरङ्गाचार्य चरणः श्रीराजेन्द्र देशिका ः ।

घ। तस्याश्रित ः शरणगतोऽस्मि।

तद्धेतो ः विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय ।

यथा ः

रामानुजांघ्रि शरणोऽस्मि कुल प्रदीप ः ।

त्वासीत् सयामुन मुने ः स च नाथ वंश्या ।।

वंश्य ः पराङ्कुश मुने ः स च सोऽपि देव्या ः।

दासस्तवेति वरदोऽस्मि तवेक्षणीय ः ।।

स्तोत्र रत्न का प्रारंभ **'नमोऽचिन्त्याद्भुताऽक्लिष्टवैराग्यराशये......'** एवं अंत **'पितामहं नाथमुनिं विलोक्य ....'** से श्री यामुनाचार्य ने नाथ मुनि स्वामी के आश्रय का सहारा लिया है। इसीतरह से श्रीकुरेश स्वामी ने 'वैकुण्ठस्तव' का प्रारम्भ **'यो नित्यमच्युत ...'** एवं स्तवचतुष्टय 'वरदराजस्तव' का अंत **'रामानुजाघ्रिंशरणोऽस्मि ... वरदाऽस्मि तवेक्षणीय'** से की है। श्रीरामानुज स्वामी नाथमुनि के विद्यावंश के तथा नाथमुनि नम्माळवार के 'विद्यावंश' के हुए। और वे लक्ष्मी माता के तथा वरदराज भगवान के दास हुए। श्रीस्वामी जी महाराज ने अर्चागुणगान के इस पद **21** में **'अबहुॅ हॅसि हेरो रङ्गराया'** का अंत 'वरदराज स्तव' के अंतिम उपर्युक्त पद का उदाहरण देते हुए अपने आचार्य एवं परमाचार्य परमहंस स्वामी एवं रंगदेशिक स्वामी की शरणागति पर आधारित **'विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय' से की है।** यह है अनुपम प्रपत्ति एवं आचार्याभिमान।

अर्चागुणगान पद 22 ः अपने दयालु स्वामी

इस पद में श्रीवैष्णव मंत्रराज मूल मंत्र, मंत्ररत्न द्वय मंत्र, एवं शरणगति मंत्र चरम मंत्र के अतिरिक्त अर्थपञ्चक के रहस्य पर भी श्रीस्वामी जी प्रकाश डालते हैं।

स्वस्वरूप पर रूप तेहि में बताय हरि करूणा वश होके।
एक कह चरण उपाय हरि करूणा वश होके।।3।।
साधन विरोधी फल सिद्धहुॅ उपाय एक हरि करूणा वश होके।
अरू सब दुर विलगाय हरि करूणा वश होके।।4।।

अर्थपञ्चक श्रीवैष्णवदर्शन का मेरूस्तम्भ है। इसके पॉच तत्व हैं 'स्वस्वरूप'

'परस्वरूप' 'पुरूषार्थस्वरूप' 'उपायस्वरूप' एवं 'विरोधीस्वरूप'। हरेक तत्व के पुनः पॉच पॉच विभेद हैं। 'स्वस्वरूप' से तात्पर्य है कि जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। जीव शाश्वत है तथा भगवान के शरीर का एक अंग है। इसके पॉच विभेद हैं 'नित्य' 'मुक्त' 'बद्ध' 'केवल' एवं 'मुमुक्षु'।

परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान को 'परस्वरूप' कहते हैं। परमात्मा के पॉच स्वरूप बताये गये हैं 'पर स्वरूप वैकुण्ठ में' 'व्यूहस्वरूप वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध रूप से क्षीरसागर में' 'विभवस्वरूप श्रीराम कृष्णादि के अवतार में' 'अर्न्तयामीस्वरूप सर्वत्र व्याप्त' तथा 'अर्चास्वरूप वेङ्कटाद्रि कांची श्रीरंगम शालग्राम के पूजाविग्रह में'।

पॉच पुरूषार्थ हैं 'धर्म' 'अर्थ' 'काम' 'आत्मानुभव मोक्ष' एवं 'भगवतानुभव मोक्ष'।

पॉच उपाय हैं 'कर्म' 'ज्ञान' 'भक्ति' 'प्रपत्ति' एवं 'आचार्याभिमान'।

विरोधीस्वरूप के पॉच भेद हैं 'स्वविरोधी' 'परत्वविरोधी' 'पुरूषार्थ विरोधी' 'उपायविरोधी' एवं 'प्रपत्तिविरोधी'।

सबका सार है ः

तन से कर्म करहु विधिनाना। मन राखहु जहँ कृपानिधाना।।

मन से सकल वासना भागी। केवल रामचरन लय लागी।।

जब भगवान से साक्षात्कार होता है तो वात्सल्यमूर्ति प्रभु करूणा से अभिभूत हो भोजन का कौर देते हैं तथा ऑख से प्रवाहित ऑसू पोछने लगते हैं 'कोरवा धरत प्रभु लोरवा पोछत कर करूणा वश होके । मा शुच पद समुझाय हरि करूणा वश होके' ।

अर्चागुणगान पद 23 ः गिरा हूँ आ

ऊपर के विभिन्न पदों से श्रीस्वामी जी भगवान से अपना सम्बन्ध बताते हुए भगवान के पास हठपूर्वक कहते हैं **'गिरा हूँ आ चरण में तो पड़ेगा राखना तुमहीं। ...... सुने हो द्रौपदी रोदन ...... पड़ेगा तारना तुमही ।**

विभीषण की शरणागति के समय **'सकृदप्रपन्नाय ... अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम'** दिये गये वचन का स्मरण कराते हुए कहते हैं '...... **अभय वरदान दीन्हों है सुसाक्षी भाल बन्दर हैं।'**

गीता के वचन को दुहराते हुए कहते हैं **'तथा माशुच वचन को भी पड़ेगा राखना तुमहीं '** इस तरह से भगवान के समक्ष भगवान पर पूरी आशा के साथ अपने अधिकार की दुहाई देते हैं **'हमारी आपकी सब विधि अनेको नातेदारी है। इसे ही दावदारी है पड़ेगा मानना तुमहीं।'** मानस में भी कहा है **'मोरे मन प्रभु अस विस्वासा।राम ते अधिक राम कर दासा'**।उ का 119 दो।चौ 16

अर्चागुणगान पद 24 ः श्रुति सत्य वचन

'श्रुति सत्य वचन हरि चाहेंगे तो निर्हेतुक अपनावेंगे' से प्रारम्भ कर भगवान को विभिन्न उलाहनायें देते हैं ... अशरण शरण कहावेंगे ... औ अधम उधारण हैं प्रभु जो पहले हमें उधारेंगे ...... हमरे नाम उचारेंगे ... चरण को हमें धरावेंगे ... तो प्रणतपाल कहलावेंगे ... हमरे से दीन निवाहेंगे हरि दीनबन्धु कहलावेंगे।'

अर्चागुणगान पद 25 ः करके कृपा कृपानिधान

श्रीस्वामी जी की उलाहनाओं को सुनकर भगवान द्रवित हो गये एवं इनकी शरणागति स्वीकार करने हेतु अपने चरणारविन्द के पास स्थान दे दिये **'करके कृपा कृपानिधान कृपासिन्धु यों किये। श्रीचरण के समीप ही बल से बुला लिये .... भली भॉति कृपा करके अपना बना लिये।'** जब शरणागति स्वीकार के संकेत मिल गये तब शरणागत भक्त की अवस्था के लक्षण बताते हुए श्रीस्वामी जी कहते हैं **'हृदय निवास करके मन को मना लिये। छिन छिनहि आप चिन्तन करा लिये। ... करतूति कालिमा को मन से मिटा दिये।'**

अर्चागुणगान पद 26 ः श्रीवेङ्कट गिरि पर

शरणागति स्वीकार होते ही श्रीस्वामी जी सर्वप्रथम अपने गुरू परमहंस स्वामी की कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इसी कम में वेङ्कटेश भगवान एवं श्रीरामानुज स्वामी के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं। **'श्रीराजेन्द्रसूरी चरणन एक देख लेहुँ नयन पसार। ग्राम तरेत ठाम एक सुन्दर हो तहँ जीवन के उद्धार ।** श्रीवेङ्कट पर्वत से ही संसार के तारने की नदी बहती है **'श्रीवेङ्कट गिरि पर से तारने को बहती है संसार'**। इसी के कारण भाष्यकार रामानुज स्वामी ने जगतकल्याण के लिये श्रीवैष्णव मत का प्रचार किया तथा उसी धारा से गोवर्द्धन पर्वत को उत्पलावित करते हुए मगध क्षेत्र के उद्धार के लिये श्रीराजेन्द्रसूरि जी पधारे।

अर्चागुणगान पद 27 ः हे आरत हरन

पूर्व के पद 25 में शरणागति के संकेत मिल गये परन्तु इसकी स्वीकृति की पूर्णता माता लक्ष्मी की संस्तुति के बिना नहीं होती है। आचार्य परमहंस स्वामी ने शरणागति स्वीकृति के संकेत उपलब्ध करा दिये परन्तु इसकी पूर्णता माता जी से ही होगी। जब भगवान को माता जीव के पूर्वकर्मो की अनदेखी करने को कहती हैं तब ही भगवान द्रवित होकर क्षमा प्रदान करते हुए कर्मो का क्षय करते हैं तथा जीव वैकुण्ठ में मुक्त जीव का अधिकारी बनता है। इस पद में श्रीस्वामी जी पहले भगवान को उलाहनापूर्ण स्मरण कराते हैं **'हे आरत हरन मैं शरण में गिरा हूँ । दिये हो वचन की उबारेंगे भव से।उसी से तुम्हारे भरोसे रहा हूँ । उबारो नहीं नाथ झूठे बनोगे । अयश हो न तुम्हरे इसी से डरा हूँ...... मैं सफरी तड़पते तलफते रहा हूँ।'**

तदुपरान्त माता लक्ष्मी को भी उलाहना देते हुए उन्हें स्मरण कराते हैं **'करूणामयी माता खबर क्यों न लेती। ढनकते लुढ़कते चरण में गिरा हूँ।**

अर्चागुणगान पद 28 ः हे अम्ब तेरी

यहाँ से लेकर अगले 5 पदों तक श्रीस्वामी जी माता लक्ष्मी जी को हस्तक्षेप करने हेतु उनकी वंदना करते हैं। भगवान को सृष्टि कार्य में माता जी कैसे सहायक होती हैं इसका सजीव चित्रण प्रस्तुत है **'हे अम्ब तेरी करूणा जग को जगा रही है। जिसके अभाव से ही जग उनमुनी नहीं थी। सीकर सुपात होते शाखा निकल रही है ... कोना कटाक्ष केरी पल पल बदल बदल कर । भगवान के ही सारी सृष्टि बना रही है।'** गुसाई तुलसीदास जी के मानस में भी श्रीवाल्मीकि जी ने चित्रकूट के पास कहा है ' **श्रुतिसेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी। जो सृजति जगु पालति हरति रूख पाई कृपानिधान की।'**

माता जी के गुणानुवाद में कहा गया है कि जीव के अवगुणों को छिपाकर लक्ष्मी जी भगवान से जीव पर दया करने को कहती हैं **'तुम करूण वचन सुनकर निज नाथ को सुनाती । गुण को बढ़ा बढ़ा कर अवगुण जला रही है। सब काल निकट रहकर भगवत पदों को सेवै। वैसे ही जनगणों से सेवा करा रही है।** क्षीरसागर में भगवान का साथ छोड़कर इस पृथ्वी पर माता जी जीव के कल्याणार्थ हीं आती हैं **'छोड़ी कमल व्योमन पयनिधि प्रभु हृदय**

को। यह दीन के लिये ही धरनी से अवतरी है।'

धरा पर मार्गदर्शन करते हुए जीव को उस्के स्वरूप का ज्ञान कराती हैं 'जीव भगवान का भोग्य है जीव भगवान पर आश्रित है तथा भगवान का शेष है। इसका तात्पर्य है कि जीव भगवान का शरीर बनकर सर्वदा के लिये उनका भोग पदार्थ बना रहता है। भगवान सर्वदा स्वतंत्र हैं तथा जीव परतन्त्र है। भगवान पूर्ण हैं यानी शेषी हैं एवं जीव उनका ही अवशिष्ट शेष है 'तीन बार अम्वे भगवान से विलग हो । भोगत्व पारतन्त्रता शेषत्वता कही है।'

जीव का उद्धार कैसे करती हैं **'अनायास कभी करूणा जिस जीव पर परे जो । उसको ही हरि चरण में धर के लगा रही है।'** लक्ष्मी जी के पृथ्वी पर तीन अवतार प्रसिद्ध हैं जिसमें वे भगवान से अलग होकर आयीं हैं। 1। श्रीविल्लीपुत्तुर में गोदा जी बनकर आना तथा रंगनाथ भगवान से परिणय करना । 2।जनकपुर में सीता जी बनकर आना और भगवान राम से परिणय करना। 3।तिरूपति में पद्मावती बनकर आना और वेङ्कट गिरि के श्रीनिवास भगवान से परिणय करना।

अर्चागुणगान पद 29 ः बड़ी मातु की

इस पद में श्रीसीता जी का गुणानुवाद है **'रघुनन्दन गये वन में लग संग ही सिधाई।'** चित्रकूट में इन्द्र के पुत्र जयन्त जैसे दुष्ट का कल्याण करने वाली हैं **... तृण वान के लहर से वह प्राण विकल होकर । चरणों में आ गिरा तो शिर काक को बचाई।'** भगवान राम ने दण्डकारण्य में मुनियों की हड्डियों की ढ़ेर देखकर पृथ्वी को राक्षसविहीन करने का प्रण किय **'श्रीराम की प्रतिज्ञा सुन मन में अकुलाई। रावण को सिखाने वह लङ्क में सिधाई।'** वहाँ अशोकवाटिका में जब हनुमान जी पहुँचे एवं राक्षसियों का दुर्व्यहार देखा तो गुस्से से सब का अंत करना चाहा **'जब चाहे बजरंगी सब निश्चरी संहारन । तब करूणा बस में होकर सबको लई बचाई।'** श्रीमद्वाल्मीकि रामायण युद्ध 113।45 '**.... न कश्चिन्नापराधयति' 'कौन ऐसा है जो अपराध नहीं करता।'** इसतरह से श्रीसीता जी सदा ही जीव पर दयालु बनी रही हैं।

अर्चागुणगान पद 30 ः नेक करूण नजरिया

कांचीपुरम के वरदराज भगवान के मन्दिर की **'तायर' यानी लक्ष्मी माता का एक नाम 'वरदवल्लभा' भी है।** श्रीयामुनाचार्य ने एक बार अपनी कांची यात्रा के अन्तराल जब वचपन में श्रीरामानुज को अद्वैती गुरू से पढ़ते देखा था तो इनकी आभा से आकर्षित हो इनको श्रीवैष्णव मत में लाने के लिये 'चतुश्लोकी वरदवल्लभा स्तोत्र' लिखकर तायर को समर्पित किया। तायर सदा सर्वदा भगवान के भक्तों पर द्रवित होकर उनके उद्धार के लिये भगवान से संस्तुति करती रहती हैं **'नेक करूण नजरिया बरद बल्लभे ।'** 'तायर' मन्दिर परिसर से कभी भी बाहर नहीं जातीं। जबकभी भगवान श्रीदेवी एवं भूदेवी के साथ परिसर के भीतर ही बागीचा में जाते हैं तो तायर की सवारी अलग अलग भगवान के साथ चलती हैं। इसी का चित्रण यहाँ है **'दुहू देविन के अग्रभाग रह । भक्त जनन के अधिक सुलभे।** अपने को आग में गिरते फतिंगा की तरह संसारज्वाला से बचाने के लिये श्रीस्वामी जी वरदवल्लभा से दया करने की प्रार्थना करते हैं **'तव चरण में धाय गिरा हूँ। जरत जगत में नगन सलभे । एक बार टुक मोहि निहारो । दीन के ओर तनक पलभे ।**

अर्चागुणगान पद 31 ः माता की कृपादृष्टि

'माता की कृपा दृष्टि नवजात पर पड़ी। नहीं पलकहुँ गिराकर टक से चिता रही। धर कोमल सब अंग संभार कर रही।जनु लेके नवजात को उपजीव्य दे रही।' इस पद की इन प्रारम्भिक पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि वरदवल्लभा माता जी श्रीस्वामी जी पर द्रवित हो गयीं।

अर्चागुणगान पद 32 ः लेन खबरिया मेरी

लेन खबरिया मेरी मातु जानकी । लंकहि दहन करन जब लागे । शीतल आग करो हुनमान की । ... दोनों चरण धरो भगवान की ।' इस पद की इन पंक्तियों में श्रीसीता माता के गुणों का वर्णन है। श्रीस्वामी जी आत्मविश्वास के साथ कहते हें कि **'शीतो भव हनूमतः'** कह अग्नि से इन्होंने हनुमान जी के लिये शीतल रहने को कहा और उनकी पूँछ नहीं जली उसी तरह से इन्होंने मेरी भी कुशलक्षेम पूछीं हैं। साथ में श्रीसीता जी ने यह भी कहा कि जयन्त की तरह भगवान के दोनों चरणों को ही पकड़ो तुम्हारा उद्धार होगा **'इन्द्रिय तनय**

का अघ नहीं मानी । दोनों चरण धरो भगवान की । इस तरह से श्रीसीता जी की ओर से भगवान के ही चरण पकड़े रहने का संकेत मिल गया। लंका में हनुमान जी भूख लगने पर जब श्रीसीता जी से फल खाने की अनुमति मांगते हैं तो हृदय में भगवान को रखकर फल खाने को कहती हैं **'रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।'** श्रीसीता जी सीधे इसी तरह से भगवान से ही सानिध्य लगा देती हैं। **आगे के पदों से यह स्पष्ट होता है कि श्रीवरदवल्लभा एवं श्रीसीता जी से आश्वस्त होने के बाद श्रीस्वामी जी यहाँ के बाद पुनः भगवान की ही ओर मुड़ते हैं।**

अर्चागुणगान पद 33 ः प्रभो हमसे अधम

'प्रभो हमसे अधम को जो उवारो तो सुयश होगा । गिरा हूँ आ चरण में जो न तारो तो अयश होगा। महालक्ष्मी वचावेंगी चाहौं जो कर्म भोगाने। यही लेकर हरे अपने परस्पर में बहस होगा।' इस पद के इन प्रारम्भिक पंक्तियों में श्रीस्वामी जी भगवान को उलाहना पूर्वक कहते हैं 'हमारा उद्धार नहीं करने पर आपको ही अपयश का भागी बनना पड़ेगा। माता लक्ष्मी जी तो मेरे पक्ष से बोलेंगी और आप अगर ध्यान नहीं देगे तो आपका अनावश्यक ही लक्ष्मी जी से आपस में ही कलह हो जायेगा।'

अर्चागुणगान पद 34 ः प्रभु दीनबन्धु दीन

यहाँ से लेकर आगे के तीन पदों में श्रीस्वामी जी भगवान को उनके कल्याणगुणों का स्मरण कराते हुए अपनी उद्धार की प्रार्थना करते हैं **'तेरे एक आस औ भरोसा नहीं दूसरे को। चरण धरे से कहो कैसे के हटाओगे।'**

पद 25 के अनुसार प्रभु के चरण में शरण मिल चुकी थी इसीलिये इस पद में कहते हैं कि चरण धरवा कर अब आप कैसे हटा दीजियेगा।

अर्चागुणगान पद 35 ः प्रभु पापियों को

इस पद का प्रारम्भ उलाहना से है कि पहले से ही पापियों को सुधारते रहने के कारण आपको सुयश मिला है **'प्रभो पापियों को बनाते न आते । तो पावन सुयश तुम कभी भी न पाते।'** शिशुपाल, गणिका, अजामिल, कंस, अहिल्या, जटायु आदि का उदाहरण देकर भगवान से अपने चरणों में बनाये रखने की विनती दुहराते हैं **'यही चाल की एक आशा हमारी । न जायेंगे कभी भी**

किसी के दुवारी। औ तुमसे तरेंगे ही चरणों में आते।'

अर्चागुणगान पद 36 ः हे प्रभो नेक

इस पद में आर्त निवेदन के साथ उलाहना भी है कि पतितों के उद्धार के ही कारण ही तो आप पतितपावन बने हैं तो बताइये यह आपको याद है कि नहीं **'हे प्रभो नेक मन में विचारो नहीं । पतित जन के लिये पतित पावन बने।हौं कहो नाथ सो याद है या नहीं।'** अहिल्या गणिका सदना आदि का पुनः उदाहरण देते हुए विश्वास के साथ कहते हैं **'नाथ वह नियम से आप टलते नहीं। है भरोसा कि मैं भी तरेंगे सही।'**

अर्चागुणगान पद 37 ः दर्शन दिन्यो भगवान

पद 25 के बाद पुनः इस पद में भगवान की कृपा मिलने का बखान है। विश्वास के अनुरूप माता लक्ष्मी के हस्तक्षेप से भगवान का ध्यान आकर्षित हुआ और श्रीस्वामी जी को अपनाते हुए हरि ने इनको चरणशरण में ले लिया **'दर्शन दिन्यो भगवान जन जान के।अपने अपना मान के हरि । लक्ष्मी माता मोहि चितायो। यह कह भगवत को समुझायो। प्रभु शरण में आया लेके।। सन्मुख में करूणानिधि देखे । अपने दासन में करि लेखै। दोनों चरणों बतावैं जन जान के ।। माशुच कहते हैं सुरनायक । अब तुम हौ हमरे निज पायक। रखिहौं करके मैं अपने विधान के ।। चरणन देखत नयन जुड़ायो।मन के तीनों ताप मिटायो। धर कर चरण हृदय में भगवान के।**

अर्चागुणगान पद 38 ः अपना दयालु प्रभु

हरि चरण की झाँकी मिलने के तुरत बाद कृतज्ञतावश उत्साहित हृदय से वेङ्कटेश भगवान से मिलने की आतुरता प्रकट करते हैं। **'अपना दयालु प्रभु के दरसन करबई कब वेंकट में जाके। कैसे दोनों नयन जुड़ायब कब वेंकट में जाके ।'**

अर्चागुणगान पद 39 ः श्रीनिवास मोरे प्रभु

श्रीनिवास भगवान भी द्रवित होकर श्रीस्वामी जी को अपना लिये। कैसे श्रीनिवास भगवान इनको अपना लिये हैं इस पद में इसी बात का विस्तार से वर्णन है। भगवान ने स्वयं इनका हाथ पकड़ा है, संतों की संगति प्रदान की है , तथा घोर संसार के अंधकार को मिटा दिया है। भगवान का चरण ही एकमात्र उपाय है। **'अपने दयालु प्रभु जी कर धर लेलन ...... निज जन**

संग में लगाय ये करूणावश होके ...... अपने दयालु प्रभु जी जोतिया देखवथी ... घोर घन तिमिर हटाय ये करूणावश होके ।। अपने दयालु प्रभु जी कटलन बन्धनवॉ ... सब विध लेके अपनाय ये करूणावश होके ।। अपने दयावस होके चरण बतावैं जी करूणानिधि मोरे। एही एक कह के उपाय करूणानिधि मोरे ।।

अर्चागुणगान पद 40 ः नित हीं दयालु

कृतज्ञतावश श्रीस्वामी जी सर्वदा के लिये वेङ्कट पर्वत पर ही रह कर श्रीनिवास भगवान की सेवा में लगे रहने की लालासा प्रकट करते हैं **'नित ही दयालु प्रभु के टहल बजायेब कब वेंकट गिरि रह के। साम और सबेरे दोनों साम ... श्रीनिवास श्रीनिवास रटन लगायेब ...... नित नित आठो जाम ...... दिन प्रति झारू ले के गलिया बहारब ...... साम और सबेरे दोनो साम ...... भोरे ही सनिधि जाके दरसन करबो ...... साम और सबेरे दोनो साम ......तुलसी कुसुम लेके नित पहुँचायब ...... तीरथ परसादी मॉगी नित नित पायब ... साम और सबेरे दोनो साम कब वेंकट गिरि रह के।'**

अर्चागुणगान पद 41 ः अपनेसे नाथ बनाना

श्रीस्वामी जी महाराज वर्ष मे एक बार तो अवश्य तथा इससे ज्यादा भी नियमित रूप से तिरूमला की यात्रा अवश्य करते थे। भगवान ने सेवा करने की इनकी सारी लालसा पूरी कर दी। यद्यपि ई सन् 1968 में अपने अर्चा विग्रह की प्रतिष्ठा कराके स्वयं भी श्रीनिवास भगवान सरौती पधार गये परन्तु इसके पहले से ही उत्साहित श्रीस्वामी जी वैकुण्ठ में 'गरूड जी' 'विष्वकसेन जी' एवं 'शेष जी' नित्य सूरि मुक्तजीव एवं तीनों लक्ष्मी 'श्रीदेवी' 'भूदेवी' तथा 'नीला देवी' की तरह भगवान की सेवा करने को लालायित होते रहे हैं तथा भगवान से आत्मविश्वास के साथ वहाँ जाने के सब रास्ते सुगम करने की प्रार्थना करते हैं। श्रीमन्नारायण के संकेत से श्रीदेवी यश ऐश्वर्य, भूदेवी अचल सम्पत्ति, तथा नीला देवी सरस प्रेम प्रदान करने के कार्य में लगी रहती हैं। जब जीव वैकुण्ठ गमन करता है तब भगवान के 'अतिवाहिक' कहे जाने वाले दूत इसे वहाँ ले जाते हैं **'अपने से नाथ बनाना पड़ेगा। समय सुहावन सोई जब चाहो धमनी हमें धराना पड़ेगा। तुमरी कृपा मिलन की आशा अतिवाहिक भेजवाना पड़ेगा ...... माया कृत को दूर भगाकर सब विधि से**

अपनाना पड़ेगा। नित्य मुक्त जन संग जहाँ प्रभु अपने से नाथ बनाना पड़ेगा। श्री भू नीला मिल जस सेवैं । तस सेवा हरि लेना पड़ेगा।'

अर्चागुणगान पद 42 ः अय भगवन यह

यहाँ से लेकर आगे के तीन पदों में भगवान की निर्हेतुकी कृपा की विलक्षणता का वर्णन है। भगवान किसे कब कैसे अपनाते हैं यह कहना कठिन है। समर्थन में अनेकों उदाहरण देते हैं। **'अय भगवन यह कोई न जाने कब कैसे अपनाये हो । गणिका सदन अजामिल ऐसे को वैकुण्ठ बसाये हो।'** ऊधव और गोप के रोदन पर ध्यान नहीं दिये परन्तु वनवासियों के घर जा उनपर कृपा किये हैं। राजा दशरथ को स्वर्ग भेज दिये परन्तु मारीच जटायु आदि को अपने धाम भेज दिये। अयोध्या में माताओं को रूलाये परन्तु शबरी भिलनी के उद्धार में कोई देर नहीं की। ज्ञानियों एवं मुनियों को छोड़कर वनवासियों की सेवा स्वीकार किये तथा उन्हें अपना धाम दिया **'दशरथ राम करूण रट लायो सुर पुर माह टिकाये हो। दशरथ से परिचय नहि था क्या यवन कवन उपकारी हो। दरसन दे सबरी को तार्यो मातन भले रूलाये हो ... मुनि गण सब तुम्हरे नहीं हैं तुम दीन बन्धु कहलाये हो। ज्ञानीजन को ठुकराकर तुम अधमन धाम बुलाये हो।**

अर्चागुणगान पद 43 ः पहुनाई मनमाना प्रभु जी

पुनः भगवान की निर्हेतुकी कृपा की विलक्षणता बताते हुए कहते हैं कि भगवान किसे कब कैसे अपनाते हैं यह कहना कठिन है । जंगल के कोल किरात का सौभाग्य कि श्रीरामावतार में भगवान उनके पहुना हुए। **'पहुनाई मनमाना प्रभु जी पहुनाई । जंगलिन कोल किरात भील गण तिनके घर पहचाना प्रभु जी ...... पाहुन हो दीन ही के सवन यह रहस्य कोउ जाना।**

अर्चागुणगान पद 44 ः कवन जाने कैसे

भगवान की निर्हेतुकी कृपा की विलक्षणता को पुनः बताते हैं। भगवान किससे कब कैसे रीझ जाते हैं प्रसन्न हो जाते हैं यह कहना कठिन है। इस पद में श्रीकृष्णावतार एवं श्रीरामावतार से अनेकों उदाहरण देते हैं। जैसे ः कंस बध के पूर्व मथुरा में जोलहा दर्जी का संदर्भ एवं श्रृंगवेरपुर के निषादराज का प्रसंग । सुदामा जी के नहीं भी चाहने पर सांसारिक सुख समृद्धि देना एवं

पिता के निधन से जितना दुःखी नहीं हुए उससे ज्यादा जटायुराज के निधन पर शोक मनाये तथा अपने हाथ से अन्त्येष्टि क्रिया संपन्न की। साकेत धाम अयोध्या छोड़कर जंगल में शबरी की कुटिया में विराजे **'कवन जाने कैसे रीझे गोपाल। ज्ञानी ध्यानी को चाहत नाहीं काहे जोलहवा पर कइले खयाल। ...... सो कैसे मलहवा के मिलले कृपाल ...... चारों पदारथ को नहीं चाहे तइयो सुदामा के कइले नेहाल ...... पितुहि मरण सुनि जस दुःख पायो। जादे जटायु ला कइले मलाल ...... श्रीसाकेत अवधपुर झाड़यो।शबरी मड़इया में दशरथ के लाल।'**

अर्चागुणगान पद 45 ः श्रीराम चरणों में

त्रिपाद विभूति की लालसा पूर्ति में विलम्ब होते देख भगवान श्रीराम चरणों की आशा एवं सभी सांसारिक जंजाल से दूर एकाकी रहने की मनसा प्रकट करते हैं **'रामचरणों में जाके लगेंगे। देह जहि के भार राम पद दै निर्द्वन्द रहेंगे। दुर्जन संग से दूर भागकर एक अकेले रहेंगे। कबहुँक मठ कबहुँ मन मठ में बैठे मौन रहेंगे। कंठ में ठाकुर हाथ सुमिरनी संतन संग चलेंगे। बोलूं तो संतन संग बोलूं ना तो मौन रहेंगे। माशुच पद के भाव हृदय धर मन में मगन रहेंगे। सब विध सिद्ध उपाय हमारे अब का पच पच मरेंगे।**

अर्चागुणगान पद 46 ः है बड़ी भगवतजन

त्रिपाद विभूति की लालसा पूर्ति में विलम्ब होते देख भगवान श्रीराम चरणों की आशा एवं सभी सांसारिक जंजाल से दूर एकाकी रहने की मनसा प्रकट करने के बाद भागवत जनों की चरणवंदना की जा रही है।आशा है भगवान शीघ्र द्रवित होंगे। **है बड़ी भगवत जन की आशा। इनके पद तीरथ के तीरथ कहत धर्म इतिहासा। इनके पद पावन के पावन करत फिरैं सब आशा। इनके पद सरोज के पीछे धावत रमा निवासा। इन पद की महिमॉ वह सबविध जानतु हैं दुर्वासा .... हरिजन विमुख लहि न काहु गति इन्हें सदा यम त्रासा।**

अर्चागुणगान पद 47 ः हमारे दीन जन

इस पद में भगवान से पुनः चरण दर्शन के लिये गुहार लगाते हैं। त्रिपाद विभूति की लालसा पूर्ति में विलम्ब होते देख भगवान श्रीराम चरणों की आशा एवं सभी सांसारिक जंजाल से दूर एकाकी रहने की मनसा को व्यक्त

करने के बाद भक्तों की चरणवंदना इस आशा से की गयी कि भगवान शीघ्र द्रवित होंगे। परन्तु विलम्ब देख पुनः आतुरतावश भगवान की ही गुहार उलाहने के साथ लगाई जा रही है **'हमारे दीन जन पर कब कृपा करके चितावोगे। अपने दिव्य चरणों में प्रभो अब कब लगावोगे ...... सो पावन पाद कमलों को तू मछुओं से धुलाये हो ...... प्रभु वह दिव्य को कब तो तु आकर के दिखावोगे। अकिञ्चन दीन ही तुम्हरे सदा से प्यारे लगते हैं। हमारे अस जगत में ही कहीं ढूंढे न पावोगे। कहाते दीनबन्धु हो प्रणत जन पाल औ तैसे। कहो यह नाथ अपने से सुयश कैसे नशावोगे।'**

अर्चागुणगान पद 48 ः अपनेसे नाथ बुलाना

आत्मविश्वास की पुनः अभिव्यक्ति करते हुए त्रिपाद विभूति ले जाने के लिये 'पद 41' **'अपने से नाथ बनाना पड़ेगा'** के बाद यानी जब मार्ग सभी आप सुगम कर देंगे तो **'अपने से नाथ बुलाना पड़ेगा'** से आत्मविश्वास के साथ भगवान से प्रार्थना करते हैं **'अपने से नाथ बुलाना पड़ेगा .... नित्य मुक्त जन संग जहाँ प्रभो परिजन तहवां बनाना पड़ेगा। श्री भू नीला जेहि विधि सेवैं । सोई सेवा हरि लेना पड़ेगा।'**

अर्चागुणगान पद 49 ः यह दीन के लिये

आत्मविश्वास की पुनः अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं भगवान अवश्य यहाँ दूत भेजकर त्रिपाद विभूति में बुलवायेंगे तथा माता लक्ष्मी भगवान के पास न रहने देकर अपने पास हीं रखेंगी । दिव्य सरोवर में स्नानादि के उपचार से तथा दिव्यदम्पती श्रीमन्नारायण के चितवन से धर्मभूत ज्ञान तथा आठ कल्याण दिव्यगुण जागृत हो जायेंगे। द्रष्टव्य श्रीभाष्य 4।4।1 ः **संपद्याविर्भावः स्वेनशब्दात्।** ये आठ गुण हैं 1। अपहतपाप्मा यानी पाप रहित निर्मल 2। विजर यानी बुढ़ापा मुक्त 3।विमृत्यु यानी मृत्यु रहित। 4। विशोक यानी शोक रहित। 5। विजिघत्सा यानी भूख रहित। 6। अपिपासा यानी प्यास रहित। 7। सत्यकाम यानी सब इच्छाओं से परिपूर्ण। 8। सत्यसंकल्प यानी सभी संकल्प को पूरा करने वाले। परमपद धाम में आगमन का नित्य मुक्त सूरी गण अवश्य स्वागत करेंगे **' यह दीन के लिए दिन भगवान लायेंगे । हरि दीन बन्धु दीनहि तुरते बुलायेंगे। वह भेजेंगे दूत को लिवाय जायेंगे । करूणानिधान पास दीन को टिकायेंगे ...... वह परिषद में हमरी चरचा**

चलायेंगे । कर प्रेम बार बार दीन को चितायेंगे ...... अरू करूणामयी अति प्यार करेगी ...... बाबू कहि लाला कहि के बुलायेंगी ...... मोहि देखि बार बार ही विचार करेगी। पाया हूँ बहुत काल पै स्वामी न मॉग लैं। नहि दूँगि तो अपने से आप ले न लैं। व्यामोह को सम्हार कर सुधार करेगी। दे जीवन पद सेवन स्वीकार करेगी। तहँ नित्य मुक्तगण सब उपचार करेंगे। सब बाजन संग स्तुति जैकार करेंगे। अरू गुण गण सम्भोग से सम तुल्य करेंगे। पुनि नव विध सम्बन्ध को चरितार्थ करेंगे।

अर्चागुणगान पद 50 ः अब हम जायेब

आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति करते हुए त्रिपाद विभूति में जाने की प्रसन्नता एवं मार्ग के विवरणों का सजीव चित्रण करते हैं। **'अब हम जायेब हो राम। हरि हङ्कार तुरत अब आवत । सुन के बहुत अगरायेब हो राम ...... राम नाम के साथ कलेवा। प्रेम से पावत गायेब हो राम। वेद बीज के रथ पर बैठव मगन से हरि गुण गायेब हो राम। बाबा लोक देन जब लगिहैं । तबहुं कबहुँ न ठगायेब हो राम। सातों घेर तुरत हम लांघव । वेदशीर्षहुँ नद देखव हो राम। डुब डुब के मल के हम धोअब पुनि प्रभु माथ नवायेब राम । अतिशय ब्रह्म गन्ध हु सुन्दर ब्रह्म प्रभा लख पायेब राम । साम गान के तान विविध विधि ... तिरमाली वीथिन के बाहर भीतर चौका पुरायत राम। छत्र चौर उपचार अनेकों कलस द्वार सजायत राम।तहँ सब दिव्य सूरि गृह जाके बहु विधि हम पुजायेब राम । प्रभु से मिलन सुरस रस पाके ब्रह्म हमहुँ तहँ बोलब राम। दिव्य अनेक देह ताना विध मन माना जहँ पायव राम। सर्व काल औ सर्वअवस्था श्रीसंग हरि पद सेवब राम।**

अर्चागुणगान पद 51 ः दया किन्ह भगवान

त्रिपाद विभूति प्राप्त कराने का श्रेय अपने संत गुरू को देते हुए संतमिलन के सौभाग्य की महिमा के साथ अर्चिरादि मार्ग तथा वैकुण्ठ का सजीव चित्रण करते हैं **'दया किन्ह भगवान सन्त मोहि मिललन ये। तब सन्त किये उपदेश शरण हरि के भये ये। दीन्ह ज्ञान भगवान हृदयतम भागल ये। तब तन धन से मन भगवत के चरण लगाये। .... ब्रह्मानन्द अघा के परम रस पायेब ये। श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेब ये।**

अर्चागुणगान पद 52 ः शुभ मन्दिर कभी

त्रिपाद विभूति में आसन सिंहासन पादुका बनना, गायन बाजन करना, पुष्प

लता बनना, भौंरा मधुमक्खी बनना, विभिन्न तरह की सेवा करके तीनो लक्ष्मीमाता समेत लक्ष्मीनाथ को प्रसन्न रखने की अपनी लालसा की अभिव्यकि बड़े आत्मविश्वास से की गयी है। जीव का 'भोगत्व' 'पारतंत्रत्व' एवं 'शेषत्व' को बताने वाले श्रीवैष्णव दर्शन को स्पष्ट तरीके से समझाया गया है। **'शुभ मन्दिर कभी आसन सिंहासन बन रहेंगे ही। सुछत्रक वाद्य वादक हो कभी नर्त क बनेंगे ही। व्यजन चॉवर पगन पनही बिताने तन रहेंगे ही। अहो मैं दिव्य चरणन पादुका बनके रहेंगे ही .... सुस्वामी दीन बन्धुहीं सभी अनुभव करेंगे ही।दयालु प्रभु दया करके बड़ी अंगी करेंगे ही। सब विध सब प्रकारो से सुभोगादिक बनेंगे ही। भगवत श्रीपति प्रभु जी सुभोक्ता बन रहेंगे ही।'**

अर्चागुणगान पद 53 ः देवन किन्ह पुकार

श्रीस्वामी जी एक अच्छे गवैया थे तथा ढ़ोल आदि वाद्ययंत्रों के वादन में कुसलता प्राप्त किये हुए थे। त्रिपाद विभूति में वे अब भगवान के समक्ष पहुॅच गये हैं। वहॉ उनके विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुना रहे हैं। **'देवन किन्ह पुकार जगत पति सुनलन ये। ललना भक्तन बस भगवान कृपा प्रभु कएलन ये । कश्यप अदिति अवधपुर नरतन धएलन ये। ललना तिनकर घर भगवान चतुर्भूज अएलन ये। ......ललना भए परि पूरन काम कहत सब जै जै ये।।9**

अर्चागुणगान पद 54 ः मनु जी बनाये

इस पद में त्रिपाद विभूति में भगवान के समक्ष विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुनाने का कम चल रहा है **'मनुजी बनाये एक नगर अवध जहॉ सरयू वहे। तहॅ नृप दशरथ गृह प्रभु त्रिभुवन नाथ अवतरे। श्रीनिवास शेष शंख चक संग दिव्य नरतन धरे। कौशिल्या सुअन भगवान भये आप सब भाई में बड़े। कैकेई कुमार शंख दिव्य तनु सोई भये भरत भलें। लखन अहीश चक रिपुहन जमल सुमित्रा सुत ये।वाजत वधाई घर घर सुरनर पुर अवध छये। आनन्द मॅगन नरनारी सबलोग जहॅ तहॅ सुन ये। समय विचारी गुरूदेवजी वशिष्ठ नाम करण किये ये।**

अर्चागुणगान पद 55 ः नृपति तव चार

इस पद में त्रिपाद विभूति में भगवान के समक्ष विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुनाने का कम चल रहा है **'नृपति तव चार लाला ये मुवारक हो मुवारक हो। कौशिल्या कैकेई धन्य हैं सुमित्रा धन्य है जननी। जनी ये चार लालन ये मुवारक हो मुवारक हो। अयोध्या धन्य धामों में जनन सब धन्य जो बसते ...... धन्य**

इच्छवाकु नगर जो अराधे रंगवर प्रभु को। सो आये चार तन धर के मुवारक हो मुवारक हो। दीनन के हो लिए प्रभुजी धरे हैं आप नरतन को। तिन्हूॅ यह चार लालन को मुवारक हो मुवारक हो।'

अर्चागुणगान पद 56 ः लालन को लेकर

इस पद में त्रिपाद विभूति में भगवान के समक्ष विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुनाने का कम चल रहा है **'लालन को लेकर कनीयॉ के कनीयॉ। वाजन वाजत मंगल गावत मिली मिली । घर घर के जनियॉ के जनियॉ। दो श्यामल दो गौर मनोहर । शोभा अति भावनियॉ भावनियॉ ...... सुत सुख पाकर जगत भुलाकर । सकल ब्रह्म स रनियॉ रनियॉ।'**

अर्चागुणगान पद 57 ः आज उछाह अवधपुर

इस पद में त्रिपाद विभूति में भगवान के समक्ष विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुनाने का कम चल रहा है **'आज उछाह अवधपुर ये मनरजना लाल। होत नेहाल ये मनरजना लाल ...... नैहर के धन तोहरा से लैहों राजा से और अपार ये मन ... कोशलपुर कौशिल्या से लैहों सुन्दर सरयू के पार ये मन... काश्मिर कैकेई से सरबस यही है अरज हमार ये मन... खोंइछा की भूमि सुमित्रा से लैहों गया के देश विहार ये मन... जाति के चमइन वसूं अयोध्या परसो के सेवा हमार ये मन...'**

अर्चागुणगान पद 58 ः चलु चलु चलु

इस पद में त्रिपाद विभूति में भगवान के समक्ष विभिन्न अवतारों के सुयश गाथा को गा कर सुनाने का कम चल रहा है **'चलु चलु चलु सब दइया राजाघर बधइया भये। चार भइया के लेके बलइया कहब मिली जै जै जै। राजाजी बैठे दुआरी जुरे नर नारी करै नेगचारी ...... सकल अवध नर नारी चहत अवगारी महा भीड़ भारी राजा के दुआरी बोलत मिली जै जै जै।'**

अर्चागुणगान पद 59 ः मा शुच पद

चरम तथा द्वय एवं मूल मंत्र को जपते हुए दिव्यदम्पति श्रीमन्नारायण का ध्यान करते रहने से भव रोग से छुटकारा अवश्य मिलता है इसमें कुछ सोचना नहीं है। भगवान ही साधन हैं। भक्तवत्सल श्रीस्वामी जी त्रिपाद विभूति से यह संदेश समस्त श्रीवैष्णव जनों को दे रहे हैं। स्मरण रहे कि पूर्वोक्त 48 से लेकर 58 तक के पदों में श्रीस्वामी जी साक्षात त्रिपाद विभूति में भगवान से मिलने के आनन्द में हैं। **'मा शुच पद जेही जान लिया तेही शोचब का भगवत भयउ उपाय भला तब शोचब का। मंत्र युगल माला युग जाके युगल भावना मन वस ताके युगल चरण के ध्यान धरे तेहि शोचब का। उर्ध्वपुण्ड्र जाके शिर शोभत तेहि लखि के भगवत मनमोहत । आये**

हृदय चतुर्भुज हृदय बसे तेहि शोचब का। मन्त्र रत्न जेहि जपत निरन्तर तेहि भगवान से नहीं कुछ अन्तर । यह श्रुति सन्त पुराण कहै तब सोचब का। लक्ष्मी माता के दृष्टि तल होकर के ना भुलव कबहु पल भरके। भये भगवान के प्रेम विषय तब सोचब का।'

अर्चागुणगान पद 60 ः भोग अर्थ वह

इस पद में त्रिपाद विभूति के भीतर से जहाँ भगवान विराजते हैं लेकर बाहर की ओर एक एक करके सातों परिक्रमा का वर्णन है । दूसरी परिक्रमा में केशव से दामोदर पर्यन्त स्वरूप में भगवान दर्शन देते हैं। तीसरे प्राकार में मत्स्य कच्छप वराह नरसिंह वामन आदि अवतारों के दर्शनीय स्वरूप में विराजते हैं। चौथे प्राकार में चारों वेद के स्वरूप में विराजते हैं। पाँचवें प्राकार में सेनापति विष्वकसेन आदि के स्थान हैं। छठे में भगवान के दिव्य आयुधों के स्थान हैं। सवसे बाहरी परिकमा में द्वारपाल एवं दिक्पाल विराजते हैं। भगवान एवं लक्ष्मी जी के आश्रय की कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए पुनः त्रिपाद विभूति के वैभव की ओर दृष्टिपात करते हैं तथा दिव्यदम्पति के स्वरूप के साथ संपूर्ण त्रिपाद विभूति की झाँकी दिखाते हैं। अंत में हरेक व्यक्ति को सोलह प्रकार की भक्ति करने का संदेश है ः **1**। गुरू से चक एवं शंख से चिह्नित होकर श्रीवैष्णव संस्कार लेना। **2**। ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करना। **3**। मंत्र जपना। **4**।परिग्रह यानी धन संग्रह के लोभ से मुक्त रहना। **5**।भगवान की पूजा करना। **6**।भगवान का ध्यान करना। **7**।भगवान के चरण की सेवा करना। **8**।भगवान की वन्दना करना। **9**।भगवान की लीला का कीर्तन करना। **10**।श्रीजयंति एवं एकादशी व्रत रखना। **11**।तुलसी का पौधा लगा कर उसकी सेवा पूजा करना। **12**।भगवान का नाम रटना। **13**। दिन रात भगवान के गुणानुवाद को सुनना। **14**। श्रीवैष्णवों की सेवा करना। **15**।भगवान का तीर्थ ग्रहण करना। **16**। भगवान का प्रसाद ग्रहण करना। **1**

भोग अर्थ वह परम व्योम लीलार्थ अखिल जग की रचना।
लीला भोग विभूति उभय सो सुन्दर सब श्रुति की रचना।।**1**
भोग नित्य लीला अनित्य हरि शक्तिमान धारक इसके।
तीन चरण में उर्ध्वव्योम यह एक चरण में सब प्रभुके।।**2**
युग विभूति के बीच सीमा विरजा कहिके जेहि श्रति गावैं।
सदा रहत वेदान्त स्वेद जल मुक्त जननको अन्हवावैं।।**3**
यथा सर्वगत विष्णु सदा तैसी लक्ष्मी माता रहती।
नारायणी जगन्माता यह लोक सदा धारण करती।।**4**
जस भूदेवी पृथ्वी वनती तस नीला लीला करती है।

श्रीदेवी प्रभु के दाहिने दिशि वक्षस्थल में नित वसती है।।**5**
इन्दीवर सम श्याममनोहर कोटि रविहुँ छिपते जिससे।
अति कोमल कुमार सुन्दर वपु ब्रह्मतेज छिटके जिससे।।**6**
फुल्ल रक्त अम्वुज सम सुन्दर अंघ्रि सरोज सुहावन है।
उनमें रेख कमलध्वज अंकुश छत्रक जन मनभावन है।।**7**।।
मत्सी यव अमृत घट स्वस्तिक भक्तन हृदय चुरावन है।
नयनन दो प्रवुद्ध पंकज सम भूलतिका मनभावन है।।**8**
नाशा शुक कपोल सुन्दर सस्मित मुख कंज सुहावन है।
मुक्ताफल सम दन्तपंक्ति अरू विद्रुम अधर लजावन है।।**9**
तरूण दिवाकर समकुण्डल युग कवरी कच मनभावन सी।
महावक्ष माला राजत अरू कौस्तुभ रविहुँ लजावन सी।।**10**
नाभि जलज विधि जन्मभूमि गो लख मुनिजनमन मोहत है।
वालातप निभ पीत वस्त्रों सो अति सुन्दर तन सोहत है।।**11**
दोउ चरण में कटक सुहावन नाना रत्न जड़े सव हैं।
नख पंक्तिन प्रकाश अति सुन्दर हिमकर कोटि छिपे सब हैं।।**12**
अति शीतल जन हृदय शीत करने को ध्यान लगावत हैं।
भक्त हृदय के अंध तिमिरको निमिष में दूर भगावत है।।**13**
दोउ कर शंख चक धारण कर मुद्रा अभय वतावत हैं।
सोलख चरणाश्रित विरोधि को चिन्ता सतत हटावत हैं।।**14**
औरो दोउ कर गदा पद्म धर दिव्य स्वरूप बने रहते।
उर्ध्वलोक में नित्यमुक्त को भोक्ता भोग्य बने रहते।।**15**

प्रथम परिकमा

पूर्व दिशा में वासुदेव श्रीरमा हुतासन दिशि शोभे।
श्रीसंकर्षण दक्षिण दिशि औ सारस्वती अस्त्रप शोभे।।**16**
पश्चिम में प्रद्युम्न विराजत वायुदिशा रति ही गाजै।
श्रीअनिरूद्ध उत्तरदिशि भ्राजैं ईश दिशहुँ शान्ति राजै।।**17**

दूसरी परिकमा

लक्ष्मीसह केशव विष्णु श्री श्रीधर दिशि पूर्व विराजत हैं।
दक्षिण नारायण मधुसूदन हृषिकेश तह भाजत हैं।।**18**
माधव और त्रिविकम पश्चिम पद्मनाभ अति शोभ रहे।
श्रीगोविन्द तहाँ दामोदर वामन उत्तर लोभ रहे।।**19**
भिन्न भिन्न सुन्दर तनु धरकर निज देविन सह रहते हैं।
दिव्यलोक में दिव्यमुक्तन घर सव दिन सब वसते हैं।।**20**
शक्ति विमला पूर्व दिशा में उत्कर्षिणी अगिन दिशि में।
ज्ञाता याम्यदिशा नैऋत में किया सुहावनि संमुख में।।**21**

योग पश्चिम में वायु दिशि प्रह्वो भली विराज रहे।
सत्या उत्तर दिशि ईशान में ईशाता निज भाज रहे।।22

तीसरी परिकमा

मत्सादिक अवतार सकल जेही वैभव कह श्रुति गावत है।
सो भगवान दिव्य वपु से तीसर में व्यूह बनावत हैं।।23

चौथी परिकमा

सत्यायुत अनन्त दुर्गा सेनप गजमुख तहँ भाजत हैं।
शंख चकनिधि पद्मलोक चौथे में साथ विराजत है।।24

पांचवीं परिकमा

ऋक् यजु साम अथर्व चारदिशि सावित्री संग सोहत हैं।
तन धरके विहगेंश धर्म तहँ पञ्चम मण्डल शोभत हैं।।25

छठी परिकमा

शंख चक धनु हल मूशल अरू पद्म गदा असि सब जो हैं।
सुन्दर दिव्य सुतमधुर करसो छट्टें व्यूह बने सो हैं।।26

सातवीं परिकमा

इन्द्र हुतासन समनक नैऋत नीर पवन विधु जो जो हैं।
सप्तम में सकल दिशाधिप दिव्य रूपधर सो सो हैं।।27

द्वारपाल

चण्ड प्रचण्ड पूर्वक पालक भद्र सुभद्र भरते ।
पश्चिम में जय विजय दिव्यतनु भातृविधातृ उत्तर रहते।।28

दिक्पाल

प्राची कुमुद अनल कुमुदाक्षहुं पुण्डरीक यमदिशि बसते।
श्रीवामन नैर्ऋत्य दिशाके शंकु कर्ण वारूण रहते।।29
वाम दिशा में सर्व नेत्र उत्तर दिशि सुमुख विराजतु हैं।
सुप्रनिषित ईशान में रहकर शोभा अधिक बढ़ावतु हैं।।30

भगवत्प्राप्ति के साधन

ताप पुण्ड्र जप मन्त्र परिग्रह अर्चन ध्यान सदा करना।
पद सेवन वन्दन कीर्तन व्रत अरू तुलसी रोपन करना।।31
नामरटन गुण श्रवण दिवस निशि वैष्णव की सेवा करना।
तीर्थप्रसाद सदा सेवन यह षोड़श भक्ति नहीं तजना।।32

<u>अर्चागुणगान पद 61 ः श्रीनिवास भगवान की</u>

अर्चागुण का प्रथम पद श्रीनिवास भगवान की कृपाचितवन एवं युगलचरणारविन्द के आश्रय से प्रारंभ होता है तथा अंतिम पद श्रीनिवास की भगवान की आरती है। त्रिपाद विभूति में श्रीस्वाामी जी पद 53 से 58 तक

आनन्दविभोर हो भगवान के अवतार की सुयश गाथा की नृत्यमयी गीत पस्तुति दिव्यदम्पति श्रीमन्नारायण परमपदनाथ के समक्ष अभिनय के साथ करते हैं। पूर्णान्त में 'धन्योस्मि' होकर श्रीनिवास भगवान की आरती उतारते हैं।

श्रीनिवास भगवान की भली आरती कीजै।टेक
जनहित निज पद छोड़के प्रभु भूतल आये।
ऐसे कृपा निधान की भली आरती कीजै।।1।।
दिव्य रूप विसराय के अर्चा बनि आये।
ऐसे दीन दयाल की भली आरती कीजै।।2।।
दूषण भूषण मान के जनको अपनाये।
ऐसे परम सुजान की भली आरती कीजै।।3।।
नित्य सूरी गण भूल के दीनन मन भाये।
ऐसे श्रीभगवान की भली आरती कीजै।।4।।
दीन दीन को बीन के सबहिं बुलवाये।
हरि भक्तन जन प्राण के मिलि आरती कीजै।।5।।

ஃஃஃ अर्चा गुणगान संपूर्णम् ஃஃஃ

श्रीमतेरामानुजायनमः
श्रीमत्पराङ्कुशगुरवेनमः

श्रीशं श्रीसैन्यनाथं वकुलधरमुनिं नाथपङ्केरूहाक्षौ श्रीरामं यामुनेयं वरमति च महापूर्णरामानुजार्यौ गोविन्दभट्टवेदान्त्यथ वरकलिजित वंशदासांश्च कृष्णं लोकार्यं शैलनाथं वरवरमुनिम् अत्यन्वहम् चिन्तयामि।

श्रीपराङ्कुशाचार्य स्वामी जी महाराज उपर्युक्त श्रृंखला की एक दिव्य कड़ी हैं। प्रस्तुत 'दिव्यचरितामृत' 'लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् । अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरूपरम्पराम' की उत्तरोत्तर श्रृंखला में विरचित है। श्रीवरवरमुनि के बाद गोवर्द्धनपीठ श्रीवृन्दावन श्रीगोदारङ्गमन्नार मन्दिर के प्रवलतम स्तंभ श्रीरंगदेशिक स्वामी अनन्तर उनके शिष्य श्रीराजेन्द्रसूरि परमहंस जी एवं तत्पश्चात् उनके शिष्य श्रीपराङ्कुशाचार्य के विशद दिव्यगाथा के अवगाहन से पाठक अवश्य आनन्दित होंगे।

संक्षेप में श्री पराङ्कुशाचार्य के शिष्य प्रशिष्य की झाँकी के साथ प्रस्तुत है श्रीस्वामीजी महाराज की सुन्दरतम कृति 'अर्चागुणगान' जो उनकी भगवद्संवाद की अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

आळवार एम्पेरूमानार जीयर तिरूवडिगळे चरणम्।
श्रीनम्माळवार श्रीरामानुज एवं श्रीवरवरमुनि के चरणारविन्द में कोटिशः साष्टांग प्रणाम।

श्रीमते रामानुजाय नमः

दिव्यचरितामृत

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी